दो शब्द !!

हिन्दी साहित्य में सूर और तुलसी का नाम एक साथ लिया जाता है। निर्विवाद रूप से ये दोनों हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं किन्तु पठन-पाठन का जहाँ तक सम्बन्ध है हिन्दी प्रेमियों को तुलसी काव्य के अध्ययन में कोई असुविधा नहीं होती क्योंकि उनकी प्रायः सभी कृतियों की टीका उपलब्ध है किन्तु अत्यन्त दुख का विषय है कि सूर-काव्य पर अब तक कोई टीका उपलब्ध नहीं है जिससे सूर काव्य प्रेमी अपनी काव्य तृषा शान्त कर सकें। इस दिशा में प्रथमतः पग उठाने का दुस्साहस हमने अपने काव्य-प्रेमी पाठकों के बल पर किया है और हमारी योजना हिन्दी के कतिपय काव्य ग्रन्थों की टीका प्रस्तुत करने की है। 'भ्रमर गीत' की आलोचना सहित टीका उसी माला का एक पुष्प है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखकों से हिन्दी पाठक जगत—विशेष रूप से विद्यार्थी वर्ग—सुपरिचित हैं। अतः टीका की उत्कृष्टता के विषय में कुछ कहना धृष्टता मात्र होगी। हिन्दी पाठक जगत उसका स्वयं निर्णय करेगा। यदि हिन्दी पाठकों का सहयोग बना रहा तो हम अन्य प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों की अधिकारी विद्वानों द्वारा कृत टीका लेकर हिन्दी जगत के समक्ष उपस्थित होंगे। किसी भी साहित्य में टीका साहित्य का अपना विशिष्ट महत्व है यह कहने की आवश्यकता नहीं। भ्रमरगीत हिन्दी की अनेक उच्च परीक्षाओं में विश्व विद्यालयों में स्वीकृत है इसलिये टीका में विद्यार्थियों की कठिनाइयों का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है और उनकी दृष्टि से ही प्रस्तुत टीका को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

विद्वान लेखकों के हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने टीका समय पर प्रस्तुत करने के कठिन कार्य में अपनी अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी हम से सहयोग किया है।

प्रकाशक—

विषय-सूची

विवेचन

[भ्रमर-गीतसार]

भूमिका

महाकवि सूरदास

जीवन और साहित्य

'भारत की यह विचित्र परम्परा रही है कि यहाँ कवि और दार्शनिक आदि कभी यश के लोभी नहीं रहे। यह प्रवृत्ति बहुत ही उच्च और प्रशंसनीय है किन्तु आज के विद्यार्थी को इस प्रवृत्ति के कारण कठिनाई भी कम नहीं होती। आज हम अपने बड़े से बड़े कवि तथा दार्शनिक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में अधिक नहीं जानते उसका यही कारण है।

सूरदास भी हमारी इस प्राचीन परम्परा के अपवाद नहीं है। उन्होंने अपने विषय में अधिक कुछ नहीं लिखा है। इसलिये निरन्तर उनके विषय में शोध होते रहने पर भी आज उनका जीवन वृत्त रहस्य के आवरण से ढका ही है।

सूरदास जी के जन्म स्थान के विषय में आज भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कोई तो उनका जन्म स्थान दिल्ली के निकट सीही ग्राम मानते हैं और कुछ रुनकता के पास गऊ घाट को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं। फिर भी लोक मत इसी पक्ष में अधिक प्रतीत होता है कि वे उत्पन्न कहीं भी हुए हों किन्तु कालांतर में वे रुनकता के पास गऊ घाट पर आकर ही बस गए थे।

कहते हैं आरम्भ में सूरदास जी गऊ घाट पर रह कर विनय के पद बनाया करते थे और दास्य भाव की भक्ति करते थे। एकबार महाप्रभु वल्लभाचार्य वहाँ आये और उन्होंने सूर से विनय के पद सुने। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी सखा-भाव की भक्ति के समर्थक थे। उन्होंने सूरदास से कहा :—

"सूर ह्वै कै ऐसौ घिघियात काहे को है। कछु भगवल्लीला वर्णन करि। तब सूरदास ने कह्यो जो महाराज हौं तो समझत नाहीं। तब श्री आचार्य जी महाप्रभून ने कह्यो जो जा स्नान करि आव हम तोको समझावेंगे। तब सूरदास

जी स्नान करि आये तब श्री महाप्रभून जी ने प्रथम सूरदास जी कों नाम सुनायो पाछे समर्पण करवायौ × × तब सूरदास जी ने भगवल्लीला वर्णन करी सो जैसो श्री आचार्य जी महाप्रभून ने मार्ग प्रकाश कियौ हो ताके अनुसार सूर जी ने पद किये।"

उपरोक्त उद्धरण *चौरासी वैष्णवों की वार्ता* से, जिसके लेखक *गोकुलनाथ* जी हैं, उद्धृत है।

इसी प्रकार नाभादास कृत 'भक्तमाल' एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है जिसमें सूरदास जी के विषय में निम्नोंकित पद मिलता है—

उक्ति चोज अनुप्रास वरन अस्थिति अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
प्रतिबिम्बित दिव दृष्टि हृदय हरिलीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी।
विमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन श्रवनन धरै।
सूर कवित सुन कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥

उपरोक्त पद से सूर काव्य की भाव और कलापक्ष की विशेषतायें बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती हैं।

कुछ लोग सूरदास को भाट वश का बताते हैं और उनका सम्बन्ध चन्द-वरदाई भाट की वश परम्परा से जोड़ते हैं। इस विश्वास का कारण सूर का ही एक कूट पद है। उसके अनुसार सूर जन्मांध थे तथा इनके छः और भाई थे जो सबके सब युद्ध में खेत रहे। एक बार अन्धे सूर एक कुंये में गिर पड़े। कहते हैं कि स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने इनको आकर निकाला। और जब सूर उनसे चिपट गए तो बड़ी मुश्किल से हाथ छुड़ाकर वे जा सके। इस विषय में सूर की निम्नोंकित पंक्तियाँ प्रमाणार्थ प्रस्तुत की जाती हैं—

बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोहि।
हृदय ते जब जाउगे तब मर्द बदेंगो तोहि॥

लेकिन कुछ विद्वान इस मान्यता को भ्रामक मानते हैं और सूर को सारस्वत ब्राह्मण मानते हैं। आज विद्वानों का बहुमत सूर के ब्राह्मण होने के पक्ष में है।

भक्तमाल और चौरासी वैष्णवों की वार्ता के अतिरिक्त कुछ और पुस्तकें मिलती हैं जिनमें सूरदास की चर्चा है जैसे—

१—आईने अकबरी

२—मुंशियात अबुल फजल

३—मुन्तखिबउल तवारीख

४—गोसाईं चरित्र

उपरोक्त पुस्तकों में से पहली और दूसरी के आधार पर यह कहा जाता है कि सूरदास जी के पिता बाबा रामदास ग्वालेरी गोमन्दा (गवैया) थे जो अकबर के दरबार में नौकर थे। उनकी मृत्यु के बाद सूरदास उसी स्थान पर नौकर हो गए। आईने अकबरी में चार गायकों के नाम दिये हुए हैं उनमें से एक नाम सूरदास जी का भी है। किन्तु हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक प० रामचन्द्र शुक्ल इससे सहमत नहीं हैं। उनके विचार में अकबर के दरबार का गवैया सूरदास कोई दूसरा ही व्यक्ति रहा होगा।

सूरदास कृत साहित्य लहरी का एक पद उसके रचना काल पर कुछ प्रकाश डालता है:—

पुनि मुनि रसन के रस लेख।
रसन गौरीनन्द का लिखि सुवन संवत पेख।

(मुनि=७, रसन=जिसमें रस नहीं = ०, रस=६, गौरीनन्द=१) चूंकि पद में अङ्क जोड़ने का क्रम बाँये से दाँये को रहता है इसलिये उक्त पद में से सम्वत् १६०७ निकलता है।

सूर-सारावली की निम्नोंकित पंक्तियाँ भी सूर के जीवन पर कुछ प्रकाश डालती हैं—

"गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव विधान तब करेउ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन॥"

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि सारावली की रचना करते समय सूरदास जी की आयु ६७ वर्ष की होगी। कुछ विद्वानों का कथन है कि यदि सूर-सारावली और साहित्य-लहरी का रचना काल एक ही है तो सूर का जन्म

सम्वत् १५४० या उसके आसपास ठहरता है। इस विषय में डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—

"यदि इस सूरसारावली और साहित्य लहरी का रचनाकाल एक ही मानें (जैसा कि बहुत सम्भव है क्योंकि दोनों पुस्तकें सूरसागर के बाद ही बनीं) तो सवत् १६०७ मे सूरदास की आयु ६७ वर्ष की रही होगी अर्थात् उनका जन्म सम्वत् १५४० या उसके आस पास ठहरता है।

सूरदास जी जन्मांध थे अथवा नहीं यह एक बड़ा विवादास्पद विषय है। कुछ लोग उन्हें जन्मांध मानते हैं और कुछ लोगों का विश्वास है कि वे जन्मांध नहीं थे, बाद में अन्धे हो गए थे और इसी प्रसग में विल्व मङ्गल की कथा जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की स्त्री पर मोहित हो जाता है और प्रायश्चित स्वरूप अपनी आँखें स्वय फोड़ लेता है—सूरदास के साथ जोड़ी जाती है। इतना तो निश्चित है कि सूरदास जी अन्धे थे किन्तु जन्मांध थे कि नहीं यह स्पष्ट नहीं होता। इनके अन्वेषन पर प्रकाश डालने वाली उनकी कुछ पक्तिया यहाँ उद्धृत करना अप्रासगिक न होगा—

भरोसौ दृढ़ इन चरन केरौ।
श्री वल्लभ नखचद्र छटा बिनु सब जग माँझ अधेरौ
माधव और नहीं या कलि म जासों होत निवेरौ ॥
सूर कहा कहि दुविध आधरौ बिना मोल को चेरौ।

तथा

सागर की लहरि छाड़ि, खार कत अन्हाऊ।
सूर कूर आधरौं हौं 'द्वार पर्यौ गाऊँ ॥

सूर के काव्य में रँगो के मिश्रण एवँ सुन्दर दृश्यों के जैसे विविध और मार्मिक वर्णन हैं उनको देखकर ऐसा नहीं लगता कि सूर जन्मांध थे।

'सूरदास', 'सूरजदास', 'सूरश्याम' आदि विविध नामों से सूरदास जी के पद अभिहित हैं। प्रश्न यह है कि क्या सूरदास ने अपने बहुत से उपनाम रख छोड़े थे ? या विभिन्न कवियों के पद नाम सादृश्य के कारण सूर के पदों में मिल गए हैं। वैसे निश्चय पूर्वक कुछ भी कहना इस विषय मे कठिन है किंतु इतना सत्य है कि सूर के पदों की लोक प्रसिद्धि देखकर अन्य कवियों ने भी

उनके नाम पर पद गढ़े होंगे जिससे उनके पद भी सूर के साथ अमर हो जाएँ। डा० सत्येन्द्र ने अपने एक निबन्ध में एक वार्ता की कुछ पँक्तियाँ उद्धृत की हैं जिनसे उपर्युक्त बात का समर्थन होता है—

"पाछे देशाधिपति ने आगरे में आयके सूरदास के पदन की तलास कीनी। जो कोऊ सूरदास जी के पद लावै तिनकूँ रुपैया और मोहर देय। सो वे पद पारसी में लिखवाइ कै बाँचै। सौ मोहर के लालच सौं पण्डित कवीश्वर हू सूरदास के पद बनाइ कै लाए।" सूर के विभिन्न नामों से लिखित पदों की एक एक पँक्ति उद्धृत करना अनावश्यक न होगा—

सूरदास ब्रजवासी हरसे गनत न राजा राइ।

× × ×

सूरस्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत।

× × ×

सूरजदास चिरजीवौ दोऊ भैया हरि हलधर की जोड़ी।

यद्यपि सूर द्वारा लिखित पदों की सँख्या के विषय में निश्चय के साथ कुछ भी नहीं कहा जा सकता किन्तु सूर सारावली का निम्नांकित पद यदि प्रामाणिक है तो सूर के शब्दों में ही उन्होंने सवालख पद रचे।

"श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ लीला भेद बतायौ।
ता दिन ते हरिलीला गाई एक लच्छ पद बन्द॥
ताको सार सूरसारावलि भावत अति आनँद।

सूर के विषय में शिवसिंह सरोज के लेखक शिवसिंह सेंगर का कथन है- "इनका बनाया सूरसागर ग्रन्थ विख्यात है। हमने इनके पद ६० हजार तक देखे हैं, समग्र ग्रन्थ कहीं नहीं देखा।"

डा० सत्येन्द्र के कथनानुसार अभी तक सूर के ८,१० हजार से अधिक पद उपलब्ध नहीं हैं। वे लिखते हैं—

"सूरदास के लाख सवा लाख पदों की गणना में सम्भवतः ऐसे भी अन्य कवियों द्वारा रचे जाली पद भी सम्मिलित हो गये होंगे। पर इतना होने पर भी अभी तक जो पद सूरदास कृत पाए गए हैं वे सब ८, १० हजार से अधिक नहीं।

सूरदास जी ने कितने काव्य ग्रंथों का प्रणयन किया इस विषय में भी विद्वानों का मतैक्य नहीं है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा तो निश्चित रूप से उनका एक ही ग्रन्थ 'सूरसागर' मानते हैं। सूर द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थों को सूर कृत मानने में उनका विश्वास नहीं है। किन्तु काशी नागरी प्रचारिणी सभा की शोध रिपोर्ट के अनुसार सूर प्रणीत ग्रन्थों की संख्या १६ तक है—

१—सूर सागर।
२—साहित्य लहरी।
३—सूरसारावली।
४—गोवर्धन लीला बड़ी।
५—दशम स्कन्ध टीका।
६—नागलीला।
७—पद संग्रह।
८—प्राण प्यारी।
६—व्याहलो।
१०—भागवत भाषा
११—सूर पच्चीसी।
१२—सूरदास के स्फुट पद।
१३—सूरसागर सार।
१४—एकादशी महात्म्य।
१५—राम जन्म।
१६—नलदमयन्ती।

वास्तव में उपर्युक्त सभी ग्रन्थ सूर के नहीं कहे जा सकते। सूर की भाषा, उनका अभिव्यक्ति कौशल तथा तन्मयता आदि विशिष्टतायें उन ग्रन्थों में नहीं है। अत. स्पष्ट स्तर भेद के कारण हम उपर्युक्त सभी ग्रन्थों को सूर काव्य में नहीं रख सकते। अधिकांश विद्वान सूर के तीन ग्रन्थ मानते हैं, १ सूर-सागर, २—सूरसारावली, ३—साहित्यलहरी। सच बात तो यह है कि ये तीनों ग्रन्थ भी अलग अलग नहीं है अपितु सूर सागर के अन्तर्गत आ जाते हैं।

सूरसागर :—सूरसागर का आधार भागवत है । सूर ने एक स्थान पर स्वय कहा है :—

व्यास कहे सुखदेव सौं द्वादस स्कंध बनाइ।
सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ॥

इसका अर्थ यह नहीं है कि सूरसागर भागवत का उल्था मात्र है। सूर भागवत से प्रभावित अवश्य हैं किन्तु उनकी पद योजना, भावाभिव्यक्ति का ढग एव विषय सयोजन मौलिकता से युक्त है।

विषय की दृष्टि से सूर सागर को निम्नाँकित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

१—विनय के पद।
२—पौराणिक कथाओं का वर्णन (भागवत के आधार पर)
३—कृष्ण लीला वर्णन।

सूर का 'सूरत्व' उनके लीला वर्णन में ही है। कृष्ण लीलाओं का उनका वर्णन हिन्दी साहित्य की अमूल्य और अद्वितीय निधि है। सूरसागर में लगभग १२ स्कध हैं जिनमें भागवत की लगभग सभी कथा आ जाती है। किन्तु जिन पदों ने सूर को कवियों का सम्राट और साहित्य प्रेमियों का हृदय देवता बना दिया है वे उनके भ्रमरगीत प्रसग के पद हैं। भ्रमरगीत का काव्य सोंदर्य, मार्मिकता एव प्रभविष्णुता हिन्दी में अन्यत्र दिखाई नहीं देती। सूरसागर के काव्य एवं रस के विषय में डा० सत्येन्द्र लिखते हैं—

"सूरसागर का समस्त काव्य वात्सल्य तथा शृङ्गार रस से युक्त है। इन रसों की क्रमशः स्थिति उपरोक्त विधि से ही है, वात्सल्य, उसके उपरान्त सयोग शृ गार, तदनन्तर वियोग। वात्सल्य में कृष्ण की बालक्रीड़ायें हैं जिनमें भक्ति की भाव सयोजना के साथ बालक के मानसिक विकास का सूत्र भी परिलक्षित होता है। इस वात्सल्य के यथार्थ में आरम्भ से ही गोपियों के प्रेम का अवलम्बन दृष्टिगत होता है। पहले यह गोपी कृष्ण प्रेम अत्यन्त साधारण धरातल पर है। गोपियाँ कृष्ण को चाहती हैं, कृष्ण गोपियों के घर में घुसकर उपद्रव करते हैं, माखन चुराते हैं। कृष्ण इस समय बालक ही हैं किन्तु कृष्ण पर उनका प्रेम यशोदा के प्रेम से भिन्न प्रतीत होता है। यह प्रेम कुछ निक-

थित होते ही राधा सामने आ जाती है और गोपियों के प्रेम की पृष्ठभूमि पर ही राधा कृष्ण के प्रेम की लीला होने लगती है। इसकी चरम परिणति रास में होती है। तभी वियोग हो जाता है। इस वियोग का चरमोत्कर्ष भ्रमर गीत मे होता है। वात्सल्य में भावतन्मयता है, कृष्ण की बाल-लीलाओं के अवलम्ब के साथ। सयोग मे भावमाधुर्य है। वय सधि और अकुरित यौवन के साथ मुरली और रास का इस सयोग में विशेष स्थान है। इन सब में भाव का ही अस्तित्व प्रधान है। इस काल की क्रीड़ाओं मे किसी का भी अवलम्बन यथार्थ नहीं, प्रत्येक यथार्थ के सकेत में शृङ्गारिक कल्पना से भावोद्रेक है जिसमें मधु और माधुर्य है—जिसमें गोपी कृष्ण और राधा कृष्ण दोनों ही महकते हैं—तब वियोग में यह भावमुग्धता तो कम हो जाती है बौद्धिक पक्ष प्रबल हो उठता है। बौद्धिक होकर गोपियाँ अपने प्रेम उन्माद के लिये युक्तियों तथा तर्कों का भी सहारा लेती है।"

सूरदास जी की मृत्यु सवत् १६४० के आसपास (सन् १५८३ ई० में) पारसोली ग्राम में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के समक्ष हुई। मरते समय गुसाई जी के सामने सूर ने निम्नांकित पद कहा :—

खजन नैन रूप रस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट श्रवनन के उलट पलट ताटँक फँदाते।
सूरदास अजन गुण अटके नतरु अबहिं उड़ि जाते॥

सूरदास पुष्टिमार्ग के जहाज के नाम से प्रसिद्ध थे और आज भी वे हिंदी साहित्याकाश के सूर ही माने जाते हैं।

वात्सल्य और शृङ्गार के अश्रुत पूर्व कवि

सूरदास कृष्ण भक्त कवि थे। वे कृष्ण को सखा मानकर पूजते थे। गोस्वामी तुलसीदास की भाँति वे दास्य भाव की भक्ति नहीं करते थे इसीलिए सूर के काव्य में चोज, खरापन, मार्मिकता एव स्वाभाविकता अधिक है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के आदेशानुसार ही सूर ने कृष्ण को सखा के रूप में ग्रहण किया था, आचार्य जी की भेंट के पूर्व सूर भी दास्य भाव की भक्ति करते थे और विनय के पद बनाया करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उनकी दास्यभाव पूर्ण

कवितायें सुनकर ही कहा था–"सूर है कै घिघियात काहि है कछु भगवल्लीला वर्णन करि।" और तभी से उस महान कवि के जीवन का नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ। सूर ने बालकृष्ण की लीलाओं का जो मार्मिक वर्णन किया है वह हिन्दी साहित्य में अद्वितीय एवं अश्रुतपूर्व तो है ही साथ ही हिन्दी साहित्य की अमर संपत्ति भी है। हिन्दी के महानतम कवि भक्त प्रवर तुलसी दास ने भी राम के बालरूप का वर्णन किया है और इतना सुन्दर किया है कि हिंदी में दो चार कवियों का नाम भी तुलना में उपस्थित नहीं किया जा सकता किंतु सूर के मार्मिक एवं स्वाभाविक बाल-वर्णन के आगे वह भी फीका सा लगता है। सूर का सूरत्व दिखाने के लिए उनके बाल-वर्णन की तुलसी के बाल-वर्णन से तुलना करना युक्ति युक्त ही होगा।

तुलसी के समक्ष राम का लोकरक्षक रूप प्रमुख था अतः उनके अन्य रूपों का वर्णन तुलसी ने गौण रूप से किया है किन्तु सूर के समक्ष तो बाल कृष्ण ही उनके आराध्य थे इसलिए इस महाकवि ने अपनी सारी प्रतिभा और आत्मा के सम्पूर्ण रस से बालकृष्ण के रूप को सजाया और सरस बनाया है।

दोनों के चरित्र में मौलिक अन्तर भी है। तुलसी के राम चक्रवर्ती राजा के पुत्र हैं जो वैभव की पृथ्वी पर ही चलते हैं और अधिकार की गम्भीरता के साथ ही क्रीड़ा करते हैं। उनकी मित्र मण्डली भी विशिष्ट है साधारण जनों का प्रवेश उसमें नहीं है। राम एक असाधारण बालक हैं इसीलिए उनकी सभी क्रियायें, और बातें असाधारण हैं। राम जनता की श्रद्धा के अधिक पात्र हैं प्रेम और सहानुभूति के कम। तुलसी के बालराम का वर्णन पढ़ते समय भी पाठक उन्हें बालक न समझ कर त्रैलोक्य विजयी, विश्वनियंता एवं विष्णु का अवतार समझता है। इसके विपरीत सूर के बालकृष्ण हैं जिनमें राजसी ठाठ बाट, अधिकार गंभीरता एवं असाधारणता का नाम भी नहीं है। उनकी मित्र मण्डली भी अत्यन्त साधारण जनों की है और ग्वालों के साथ खेलते हुए कभी वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि ग्वाल उनसे हीन हैं या वे उनसे उच्च हैं। बालक कृष्ण की सारी क्रीड़ायें उसी प्रकार स्वाभाविक और मनोमोहक हैं जैसी आज भी साधारणजनों की होती हैं। इसके अतिरिक्त

सूर के बाल मनोविज्ञान के गभीर निरीक्षण ने तो मानो उनके बाल-वर्णन में जान ही डालदी है, वह सजीव और अत्यन्त आकर्षक हो उठा है। बच्चों की क्रीड़ाओं और क्रीड़ाओं के अन्तर्गत ऐसी अनेक स्थितियों की कल्पना सूर ने की है जो उन्हें बाल वर्णन में भारत का ही नहीं विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित कर देती हैं। सूर का बाल-वर्णन उनकी उत्कट भक्ति, अदम्य एव नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा तथा हृदयरस का युगपत् निचोड़ है।

ऐसी बात नहीं है कि तुलसी के राम बच्चों के साथ खेलते ही न थे किंतु तुलसी उन्हें बच्चों के साथ खिलाकर भी बच्चों से अलग कर देते हैं। वे अन्य बच्चों के साथ अपने राम को मिलने नहीं देते। अलग रखकर उनकी असाधारणता एव अद्वितीय शोभा का वर्णन करते हैं। ऐसे स्थानों पर राम का वर्णन अन्य बालकों की तुलना में ही किया गया है :—

"ललित ललित लघु लघु धनुसर कर,
तैसी तरकसी कटि कसे, पट पियरे।
ललित पनही पाँय पैजनीं किंकिनि धुनि;
मुनि सुख लहै मनु रहै नित नियरे ॥ १ ॥
पहुँची अगद चारु हृदय पदिक हार,
कुण्डल तिलक छवि गड़ी कवि जियरे।
सिरिसि टिपारो लाल, नीरज नयन विसाल,
सुन्दर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे ॥ २ ॥
सुभग सकल अग, अनुज बालक सँग
देखि नरनारी रहै, ज्यों कुरँग दियरे।
खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चकडोरि;
मूरत मधुर बसैं तुलसी के हियरे ॥ ३ ॥

तुलसी के राम की अभिजात्यता उन्हें साधारण बच्चों से अलग कर देती है और पाठकों के लिए उनके बालकोचित सहज आकर्षण को कम कर देती है।

सूर के बालक कृष्ण की बात ही दूसरी है। वहाँ न दुराव है न अधिकार की सँकीर्ण सीमाएं हैं। बालकृष्ण का क्रीड़ा क्षेत्र राम से सहस्रों गुना बड़ा

है। बालकृष्ण विश्व बालकों का प्रतिनिधित्व करते हैं, महलों का नहीं इसलिए उनमें आकर्षण और स्वाभाविकता का लावण्य भी राम से उसी अनुपात में अधिक है। बच्चों में आपस में क्या भेद-भाव ? बच्चे बच्चे एक से। जहाँ बच्चे अपनेपन का अनुभव आपस में न कर सके वहाँ बालकोचित अबोधता का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। कृष्ण को तो अभिजात्यता की बू छूतक नहीं गई है। एक साधारण ग्वाला भी उन्हें फटकार सकता है। अगर कृष्ण हार गए हैं तो उन्हें दाँव चुकाना पड़ेगा। बालकों में जो बालक दाँव नहीं चुकाता उसका बड़ा अपमान होता है। बालक उसे नीच समझते हैं और अपनी मण्डली से ऐसे को 'बेईमान' कहकर निकाल देते हैं। सूर को इतना लोभ भी न था कि वे कृष्ण को ऐसे बहिष्कृत बालक की स्थिति में न रखते। वे तो कृष्ण को एक साधारण बालक के रूप में उसकी सभी स्वाभाविक कमियों के साथ रखते हैं जिससे वह जनसाधारण के हृदय का आलम्बन हो सके। इसमें सन्देह नहीं बालक कृष्ण की इन सहज कमोजोरियों ने उनके क्षेत्र को अधिकाधिक विस्तृत ही बनाया है और इस दृष्टि से वे बालक राम से कई गुने बड़े क्षेत्र के अधिकारी हैं। कृष्ण के साथ खेलने वाले ग्वाले तो स्पष्ट कहते हैं कि "खेलत में को काको गुसैयां।" ऐसा प्रतीत होता है कि सूर की बाललीला का यह वाक्य ही मूल-मन्त्र है। सूर के लिए सभी बालक समान हैं इसलिए कृष्ण को विशिष्ट बालक के रूप में चित्रित करने का उन्हें कभी लोभ नहीं रहा। वे जानते थे कि ऐसा करने से उनके चरित्र का प्रभाव क्षेत्र संकीर्ण और आभा अपेक्षाकृत मन्द पड़ जाएगी। सूर की निम्नांकित पंक्तियाँ बालकों के मनोविज्ञान एवँ उनके सहज अधिकार-ज्ञान की दृष्टि से सचमुच अद्वितीय हैं—

> खेलत में को काको गुसैयाँ।
> हरि हारे जीते श्री दामा, बरबस ही कत करत रिसैया॥
> जाति-पाँति हमते कछु नाहीं न बसत तुम्हारी छैंया।
> अति अधिकार जनावत यातें अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ

इसके विपरीत तुलसी के बाल-वर्णन में भी मर्यादा का अँकुश सर्वत्र लगा रहता है। खेल प्रारम्भ होता है। तुलसी के राम और लक्ष्मण एक ओर हैं,

भरत और शत्रुघ्न दूसरी ओर। खेल भी साधारण बच्चों का साधारण और नहीं है अपितु विशिष्ट बालकों का विशिष्ट खेल है—चौगान जो घोड़ों पर चढ़कर खेला जाता है। खेल में भी भरत राम का ध्यान रखते हैं, अपने जीतने पर उन्हें दुःख होता और राम के जीतने पर प्रसन्नता। आदर्श की दृष्टि से हो सकता है यह अच्छा हो पर स्वाभाविकता की कसौटी पर यह सब कुछ खरा नहीं उतरता। देखिए राम के क्रीड़ांगन में याचक और देवताओं की भी भीड़ है—

राम लखन इक ओर भरत रिपुसूदन लाल इक ओर भए।
सरजू तीर सम सुखद भूमिथल, गनिगनि गोइयाँ बाँटि लए
कन्दुक केलि कुसल हय चढ़ि २ मनकसिखसि ठोंकि २ खये
कर कमलनि बिचित्र चौगानि खेलन लगे खेल रिझए॥
व्योम बिमानन बिबुध बिलोकत, खेलत पेखत छाँह छुए।
सहित समाज सराहिं दसरथहिं बरसत निजतरु कुसुम चए॥
एक लै बढ़त एक फेरत सब, प्रेम प्रमोद, बिनोद गए।
एक कहत भइ हार रामजू की एक कहत भैया भरत गए॥
प्रभु बकसत गज बाजि, बसन मनि जयधुनि गगन निसान हए
पाइ सखा सेवक जाचक भरि, जनम न दूसर द्वार गए॥
नभपुर परति निछावर जहँ-तहँ, सुरसिद्धनि बरदान दुए।
भूरि भाग अनुराग उमगि जे गावत सुनत चरित्र नितए॥
हारे हरष होत हिय भरतहिं, जिते सकुच सिर नयन नए।
तुलसी सुमरि सुभाय सील सुकृती तेइ जे एहि रंग रए॥

जिस बालक को अपनी जीत अच्छी नहीं लगती जो इतने उदार हृदय और उच्च विचार वाला है कि आदर्श ही सदा जिसके समक्ष रहता है वह तो वृद्धों से भी अधिक वृद्ध है, उसे बालक कैसे कहें? बालक होने के लिए शैतानी ही नहीं बालकपन की भी आवश्यकता होती है जो अबोधता का घर है। तुलसी इसे विस्मृत कर गए हैं और राम को इस रूप में प्रस्तुत करते रहे हैं कि एक वृद्ध भी उनसे सीख ले सके। *यही बातें उनके बाल चरित्र की सीमायें*

बन कर रह गई हैं। इन बातों से बचकर ही सूर का चरित्र असीम क्षेत्र का अधिकारी हो गया है।

सूर के कृष्ण राम की भाँति आदर्शवादी और प्रौढ़ विचारों के नहीं हैं। ये तो अपने भाई बलराम की भी शिकायत यशोदा माँ से करते हैं। बलराम कृष्ण को चिढ़ाते हैं, कृष्ण क्रोध और अपमान से लाल हुए रुआँसे होकर माँ के पास जाकर अपने उद्‌गार प्रकट करते हैं, माँ बड़े ढङ्ग से उन्हें चुप करती हैं तथा सान्त्वना देती हैं। सूर के ये बाल कृष्ण अद्‌भुत हैं, अद्वितीय हैं और सूर इसी कारण निश्चित रूप से इस क्षेत्र के सम्राट हैं।—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मो सों कहत मोल को लीन्हो, तू जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं या रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तुमरो तात॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दे-दे हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै॥

× × ×

सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
सूर श्याम मो गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

तुलसी के राम की भाँति सूर के कृष्ण न किसी को उपदेश देते हैं और न उनसे कोई आतंकित ही रहता है। उनके बड़े भाई बलराम उन्हें चिढ़ाते हैं, बेचारे कृष्ण एक साधारण बालक की भाँति ही रोकर माँ के पास भागते हैं। सूर का यह बाल चित्रण इतना मार्मिक, स्वाभाविक और सप्राण है कि हजारों वर्ष बाद भी वह पुराना नहीं होगा, सैकड़ो वर्ष बीतने पर भी वह उतना ही ताजा और मार्मिक लगता है जैसे आज की परिस्थितियों में ही अभी ही लिखा गया हो। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण सूर हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषी जनता में आज भी एक जीवित शक्ति हैं।

सखा कहत है स्याम खिसाने।

× × ×

बीचहिं बोलि उठे तब हलधर, इनके माय न याप।
हारजीत कछु नेक न जानत, लरिकन लावत पाप॥
× × × ×
सूर स्याम उठि चले रोइकै जननी पूछति धाई।

तुलसी के राम तो पता नहीं कभी बालकों की भांति खेलते भी हैं या नहीं। जब देखिए वे आपको एक योद्धा के वेश में मार्च करते दिखाई देंगे। तुलसी बालक राम में भगवान राम या प्रबुद्ध राम का चित्र देखने को उत्सुक रहते हैं—

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं, रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुही कर तीर निषग कसे कटि पीत दुकूल नवीन फबै।
तुलसी तेहि औसर लावनिता दस चारि नौ तीन इकीस सबै।
मति भारत पगु भई जु निहारि बिचारि फिरी उपमा न पवै

इसकी तुलना में सूर के बालकृष्ण का एक चित्र देखिए। कृष्ण ने चोरी से मक्खन खाया है, लेकिन यह मुख पर लिपटा रह गया है। यशोदा अपराधी को रँगे हाथ पकड़ लेती है पर बालक कृष्ण का बहाना बड़ा अद्भुत है :–

मैया मैं नहिं माखन खायो।
बैर परे ये ग्वाल बाल सब मेरे मुँह लपटायौ॥
हौं बालक बहियनु को छोटो छींको केहि विधि पायौ।

बालक कृष्ण अधिक दूध नहीं पीते वैसे ही जैसे आज भी बच्चे अधिक दूध नहीं पीते और उनकी माता उन्हें यह कहकर मनाती हैं कि बेटा चुटिया बढ़ जायगी, पीले। यशोदा जी कृष्ण को चुटिया बढने का लोभ देकर दूध पिलाना चाहती हैं। बाल मनोविज्ञान के साथ साथ सूर को लोक परम्पराओं का कितना ज्ञान और ध्यान था वह भी इस पद से स्पष्ट हो जाता है।

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
। किती बार मोहि दूध पियत भयी यह अजहूँ है छोटी॥

कभी कभी बच्चा खीझ जाता है, वह कोई चीज नहीं लेता केवल रोता है। आखिर ऐसे बिगड़ैल बच्चे को कैसे मनाया जाय, हर सौभाग्यवती मा के जीवन में ऐसे अनेक सुअवसर आते हैं। आज कृष्ण ने भी ऐसी ही हठ पकड़ी है

यशोदा परेशान हैं, वे आँगन में लोटे-लोटे फिरते हैं, कुछ लेते भी नहीं केवल रोते हैं। देखिए माँ यशोदा के स्वर में कितना ममत्व, कितनी चिन्ता र कितनी पुत्र वत्सलता है। हिन्दी में तो प्रेम विह्वलता से भरे ऐसे मार्मिक ; केवल सूर ही लिख सके हैं :—

कत हो आरि करत मेरे मोहन यों तुम आंगन लोटी।
जो माँगहु सो देहुँ मनोहर यहै बात तेरी खोटी।

तुलसी के राम जैसे अयोध्या की गलियों में निकलते हैं सूर के कृष्ण भी से ही निकलते हैं पर उस ठाठ बाट और साज सज्जा तथा रौबदाब के साथ हीं अपितु एक नटखट बालक की भाँति जो इन सब को छोड़ कर चलता है ार परेशान होते हुये भी लोग ऐसे बच्चे को प्यार करते हैं, अधिक देर तक ना देखे नहीं रह सकते :—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विशाल भाल दियेरोरी
सूर स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगौरी।

कृष्ण और राधा के प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर भी सूर दोनों की ालकोचित्त भावना एवं अबोधता की रक्षा करने में पूर्ण सफल रहे हैं। ृष्ण को तो सभी प्रेम करते थे किन्तु आज कृष्ण को भी कोई ऐसा प्राणी ल गया जिसके सौन्दर्य ने उनके बाल हृदय को अभिभूत कर लिया। कृष्ण टखट ठहरे, बिना परिचय जाने वे भला राधा को कैसे जाने दें, पूछते हैं—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी,
देखी नाहिं कबहुँ ब्रजखोरी।

राधा का उत्तर भी बालकोचित स्पष्टता और अबोधता से युक्त है—

"काहे को हम ब्रजतन आवति।
खेलति रहति आपनी पौरी॥"

बालक कृष्ण चोर के रूप में दूर दूर प्रसिद्ध हो गया है। राधा शायद इस र से थोड़ा परहेज मानती है इसीलिए इधर नहीं आती—

सुनत रहत स्रवनन नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।"

कृष्ण ने देखा यह तो कोई अच्छी ख्याति नहीं है । मामला बिगड़ता देख बड़ी मुश्किल से सँभाला, बड़ी दीनता और अकिंचनता के साथ बोले–

"तुम्हरो कहा चोरि हम लैहै, खेलन चलौ सग मिलि जोरी ।"

इस प्रकार सूर केवल बालकों को ही नहीं बालिकाओ के भी मनोहर चित्र प्रस्तुत कर सके हैं—

वात्सल्य के दो पक्ष होते हैं—

१—बच्चो का पक्ष (इसके अन्तर्गत बाल क्रीड़ाएँ आती हैं ।

२—माता पिता का पक्ष (पुत्र या सतान के प्रति मातृ पितृ प्रेम की गरिमा, तीव्रता और मदुता इसके अन्तर्गत आती है ।

माता पिता के पक्ष का अधूरा ज्ञान कवि को पूर्ण वात्सल्य रस का अधि कारी नहीं बनने देता । सूर की पैनी दृष्टि अबोध बालकों के हृदय में जिस आसानी से पैठ सकी उसी आसानी से प्रेम सिक्त माता पिता के मानस रहस्यों का भी भेदन कर सकी।यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि जिस प्रकार सूर तुलसी से बाललीलाओं के वर्णन में बहुत आगे हैं उसी प्रकार माता पिता के हृदय में स्थित बच्चों के प्रति प्रेम की कोमल भावना की अनुभूति उन्हें तुलसी से अधिक है । यशादा की और नन्द की पुत्र प्रेम विह्वलता कौशल्या और दशरथ से कहीं अधिक है क्योंकि मर्यादा का अकुश तुलसी काव्य में वहाँ भी है ।

विश्वामित्र राम लक्ष्मण को लेने आए हैं। कौशिल्या इसी शोच में डूबी हुई हैं कि अब उनकी देख भाल कौन करेगा, इनको न जाने कितने कष्ट होंगे।" मेरी तरह उनकी देखभाल कोई नहीं कर सकता । तुलसी का इस स्थिति का एक चित्र देखिये—

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहेंगे ?
भूख प्यास सीत स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहेंगे ?
का भार ही उबटि अन्हवैहै, काढि क्लेऊ देहै ?
को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन सुख लैहैं ?
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु परिजन महतारी ।
ते पाए ऋषि साथ निशाचर मारन मख रखबारी ॥

सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल, काक पक्ष धर दोई।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं, विधि ह्वै है दिन सोऊ

राम-लक्ष्मण और जानकी बन चले गए हैं किन्तु कौशल्या सदैव चिन्तित रहती हैं कि वे बन में भयकर बरसात के दिनों में कैसे रहते होंगे—

बन को निकरि गये दोऊ भाई।
सावन गरजै भादो बरसै पवन चलै पुरवाई।
कोइ विरछतर ह्वै हैं राम लखन दोऊ भाई।

इसमें सन्देह नहीं कि तुलसी ने माँ के हृदय की वेदना और पुत्र के प्रति इसके वात्सल्य को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है किन्तु यह तभी तक है जब तक सूर के तद्विषयक पद न पढ़े जाँय। सूर तो सचमुच इस रस के सम्राट हैं। तुलसी इस दिशा में तो उनसे पीछे ही हैं यह निस्संकोच कहा जा सकता है। सूर के निम्न पद से तुलना करने से भेद स्वयंमेव स्पष्ट हो जायगा।

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाइ तिहारे सुतकी कृपा करत ही रहियो।
उबटन तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते॥
जोइ जोइ माँगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करिके न्हाते।
तुम तौ टेव जानति ही ह्वै हौ तऊ मोहि कहि आवै॥
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै॥
अब यह सूर मोहि निसिवासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलक लड़ैते लालन ह्वै हैं करत सँकोच॥

बात चाहे सूर तुलसी एक ही कहते हों किन्तु सूर अपने वात्सल्य रस के पदों को ऐसे वातावरण में, ऐसे शब्दों के साथ प्रस्तुत करते हैं कि उसका एक-एक अक्षर सजीव होकर स्वयं बोलने लगता है। सूर के बालक कृष्ण की क्रीडाओं का असीम क्षेत्र उनके माता-पिता की भावनाओं को भी अधिक लोक सामान्य एवं असीम-स्थल व्याप्त बना देता है। कृष्ण वास्तव में जन-नायक प्रतीत होते हैं; राम एक सम्राट पुत्र हैं जिन्हें पैतृक सम्पत्ति के रूप में सम्पूर्ण वैभव प्राप्त है। इसीलिए नन्द और यशोदा के हृदय की चिन्ता एक राजा या

रानी की चिन्ता न होकर प्रत्येक पिता और माता की चिन्ता है। यशोदा की यह चिन्ता कितनी लोक सामान्य, मार्मिक और हृदयग्राही है—

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन माँगे देहै।
को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन छिन आगो लैहे

कृष्ण घर में नहीं हैं तो वे वस्तुयें जिनसे कृष्ण खेला करते थे अब यशोदा के दुःख को दूना कर देती हैं। एक एक वस्तु से कृष्ण की स्मृतियाँ चिपकी हुई हैं। यशोदा की दिनचर्या में कृष्ण के उपद्रव भी सम्मिलित थे। तब चाहे डाँटती रहती हों किन्तु अब तो उपद्रवी बातें ही उनकी दम घोंटे दे रही हैं। पुत्र की उछल कूद माँ यशोदा के जीवन में छा गई है। वे उदास बैठी रहती हैं और पुरानी बातें याद करती हैं—

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु वैसेहि धरयौ रहै।
को उठि प्रातकाल लै माखन को कर नेत गहै॥
सूने भवन जसोदा सुत के गुन गुन सूल सहै।

यशोदा माँ से यह व्यथा नहीं सही जाती। आखिर वे एक दिन नन्द बाबा से साफ साफ कह देती हैं—

नद ब्रज लीजै ठोकि बजाय।
देहु बिदा मिलि जायँ मधुपुरी जहँ गोकुल के राय॥

किन्तु नन्द यशोदा से कम कष्ट मे नहीं हैं। यह दूसरी बात है कि पुरुष होने के नाते अपने कष्ट का विज्ञापन नहीं करते और उस पर गम्भीरता का आवरण डाले रहते हैं। किन्तु यशोदा की दीनता और प्रेम कातरता उनके सयम के बाध को तोड देती है। यशोदा को जो उत्तर वे देते हैं उसमें अतीत स्मृतियाँ, पश्चात्ताप, क्रोध, क्षोभ, मोह आदि न जाने कितनी भावनायें एक साथ फूटी पड़ रही हैं। वात्सल्य की ये पंक्तियाँ हिन्दी में अद्वितीय हैं—

तब तू मारिबोई करत।
रीस के करि दाँवरी लै फिरति घर घर धरति॥
कठिन हियकरि तबजु बाध्यो अब वृथा करिमरति

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि तुलसी हिन्दी के सब से महान कवि हैं किन्तु जहाँ तक वात्सल्य रस का सम्बन्ध है वे सूर से पीछे हैं

और सूर निश्चय ही इस क्षेत्र के एकछत्र सम्राट हैं।

जो बात सूर के लिए वात्सल्य रस के विषय में कही जा सकती है वही शृङ्गार के विषय में भी ठीक है। यद्यपि सूर भक्त कवि थे फिर भी शृङ्गार का जैसा विषद और साँगोपाँग वर्णन उन्होंने किया है हिन्दी में कोई दूसरा कवि वैसा नहीं कर सका। यहां तक कि भक्त प्रवर तुलसीदास भी इस विषय में सूर की प्रतिद्वन्द्विता में नहीं ठहरते।

भक्त होते हुए भी जो सूर ने शृङ्गार का इतना विशद और मार्मिक वर्णन किया है उसका कोई कारण अवश्य होना चाहिए। हमारी समझ में इसके दो ही कारण सम्भव हैं—

१—दार्शनिक दृष्टि से रास में कृष्ण के चतुर्दिक नृत्य करने वाला गोपिका मण्डल वास्तव में गोपिका मण्डल नहीं है अपितु सिद्ध सन्तों की जीवात्मायें हैं। सूर भी उसी मण्डल में सम्मिलित होना चाहते हैं इसलिए शृङ्गार वर्णन आवश्यक हो गया।

२—गोपियों के विरह वर्णन के द्वारा वे निराकारोपासना की निस्सारता दिखाना चाहते थे इसीलिए उनका वियोग वर्णन जितना मार्मिक और उत्कट है उतना अन्य किसी कवि का नहीं।

रसों में शृङ्गार रसराज माना जाता है। जीवन के जितने विस्तृत क्षेत्र को यह ढँकता है उतना दूसरा रस नहीं। जीवन के प्रमुखतः दो पक्ष होते हैं। १—सुख पक्ष, २—दुख पक्ष। शृङ्गार रस में भी वियोग शृङ्गार और संयोग शृङ्गार के रूप में दुख और सुख के दोनों पक्षों का अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिए स्पष्ट है कि शृङ्गार रस में जीवन अपने संपूर्ण विस्तार के साथ समाहित रहता है। इसका स्थाई भाव है रति। रति भी कई प्रकार की मानी गई है; दाम्पत्य रति (शृङ्गार), सतान विषयक रति (वात्सल्य) और देव विषयक रति (भक्ति)। जितने अधिक संचारी भाव शृङ्गार रस मे होते हैं अन्य किसी रस में नहीं। शास्त्रीय दृष्टि से अधिकाँश रस शृङ्गार के अविरोधी होते हैं। सारांश यह है कि शृङ्गार रस अपनी असीम परिधि में सम्पूर्ण जीवन को समेट लेता है। इसलिए शृङ्गार का दूसरा नाम रसराज उपयुक्त ही है।

सूर शृङ्गार के अद्भुत कवि हैं। उनके काव्य में दाम्पत्य रति (शृङ्गार)

पुत्र विषयक रति (वात्सल्य) और देव विषयक रति (भक्ति) सभी का विशद एवं मार्मिक वर्णन हुआ है। किन्तु हम यहाँ विशेष रूप से सूर के दाम्पत्य शृंगार का ही विवेचन करेंगे।

१—सँयोग शृंगार—कृष्ण का बचपन व्रज में ही बीतता है। वे अपने अद्भुत सौंदर्य के कारण सभी के प्रेम के आलम्बन हैं। सारा व्रज उनके पीछे पागल है। क्या गोपियाँ, क्या ग्वाल, क्या युवक, क्या वृद्ध, कृष्ण सभी के आँखों के तारे हैं लेकिन व्रज में कोई ऐसा भी व्यक्तित्व है जो कृष्ण को अपनी ओर खींच लेता है और कृष्ण जिसे देखकर अपने आपको भूल जाते हैं। वह व्यक्तित्व राधा का है। एक दिन वे व्रज की गलियों में उन्हें अचानक दिखाई पड़ गईं। मानो कोई युगों से भूली उनकी अपनी वस्तु मिल गई हो। प्रथम साक्षात्कार में ही एक दूसरे के हो गए—

खेलन हरि निकसे व्रज खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विशाल भाल दिए रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगौरी॥

आखिर कृष्ण बिना परिचय पूँछे नहीं रह सके क्योंकि यहाँ तो परिचय बनाने का प्रश्न भी था—

"बूझत स्याम "कौन तू गोरी।
कहाँ रहत काको तू बेटी।
देखी नाहिं कबहुँ व्रजखोरी।"

राधा सक्षिप्त सा उत्तर देती हैं—

"काहे को हम व्रजतन आवति
खेलति रहति आपनी पौरी।"

राधा के इधर न आने का एक कारण यह भी है कि उसने सुन रखा है कि इधर कृष्ण नामक एक चोर रहता है—

"सुनत रहत स्रवनन नँद ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।"

लेकिन कृष्ण कम अनुभवी नहीं हैं, वे राधा को बना लेते हैं—

"तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ सग मिलि जोरी।"

एक तो अलौकिक सौन्दर्य की साकार प्रतिमा, फिर इतने वाक्पटु।

विनय की इस मधुरता से तो राधा पिघल ही गई—

"सूर स्याम प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी।"

सूर का श्रृंगार रस राधाकृष्ण और गोपीकृष्ण के प्रेम से स्निग्ध है। गोपियाँ कृष्ण का जप करती हैं और कृष्ण राधा का। राधा भी कृष्ण की ओर पूर्ण रूप से आकृष्ट हैं और उसी आकर्षण के प्रवाह में बहकर वे नित्य कृष्ण गृह में आ जाती हैं, माँ यशोदा को कुछ शका होती है—यह लड़की यहाँ नित्य प्रति क्यों आती है, वे उससे साफ कह देती हैं; राधा तुम बार बार इधर मत आया करो—

"बार-बार तू ह्या जिनि आवै।"

रूप-गर्विता और प्रेम-गर्विता राधा तो इस प्रकार के वाक्य सुनने की आदी नहीं है। राधा से यह अपमान नहीं सहा जाता। वह माँ यशोदा को बड़ा खरा उत्तर देती है और उनसे वास्तविक अपराधी को फटकारने के लिए कहती है। उसका कहना है कि यहाँ आने में वह स्वयं दोषी नहीं है, दोषी है कृष्ण जो बिना उसके रह नहीं सकता। राधा उत्तर देती है—

"मैं कहा करौं सुतहिं नहिं बरजै, घरते मोहि बुलावै।
मोसों कहत तोहि बिन देखे रहत न मेरो प्रान॥
छोह लगत मोको सुनि बानी महरि तिहारी आन॥"

अपनी तो अपनी कृष्ण को दूसरों की गायें भी दुहनी पड़ती हैं। कृष्ण राधा की गाय दुह रहे हैं, अचानक राधा दिखाई पड़ जाती है, फिर धार का ध्यान भूल जाता है और केवल राधा का ध्यान ही रह जाता है। कम्प सात्विक का इससे सुन्दर उदाहरण और कहाँ मिलेगा—

धेनु दुहत अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहँ प्यारी ठाढी।
मोहन करतें धार चलत पय, मोहनि मुख अतिही छबि बाढी

राधा कृष्ण की इस स्थिति को भाँप लेती हैं और मधुर व्यंग्य करती हुई कहती हैं—

"तुम पै कौन दुहावै गैया।
इत चितवत उत धार चलावत, एहि सिखायो है मैया॥"

कृष्ण बहुत देर तक वहीं रहते हैं। अन्त में राधा उनका ध्यान विलम्ब की ओर आकृष्ट करती है कि अब घर जाने का समय आ गया है लेकिन घर कौन जाय ? मन तो राधा के पास से जाना ही नहीं चाहता और अकेला तन घर जाकर करेगा क्या ? देखिए सूर सयोग शृंगार का कितना मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं—

घर तनु मनहि बिना नहिं जात।
आपु हँसि-हँसि कहत हौं जूँ चतुराई की बात॥
तनहि पर है मनहि राजा, जोई करै सो होइ।
कहौ घर हम जायँ कैसे मन धरयौ तुम गोइ॥

केवल यही नहीं, सूर ने सयोग शृङ्गार के ऐसे न जाने कितने अमर चित्र प्रस्तुत किए हैं जो हिन्दी साहित्य की अमर निधि हैं। राधा कृष्ण के जल-बिहार का चित्र लीजिए—

बिहरत हैं जमुना जल स्याम।
राजत हैं दोउ बाँहा जोरी, दम्पति अरु ब्रज बाम॥
कोइ ठाढ़ी जल जानु जघ लौं, कोइ कटि हृदय ग्रीव।
यह सुख बरनि सकै को ऐसो सुन्दरता की सीव॥

सूर के सयोग शृंगार में मुरली का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। रीति-कालीन काव्य में जो कार्य दूती करती है बहुत कुछ वही कार्य सूर काव्य में मुरली करती है। मुरली गोपियों को कृष्ण के निकट आकृष्ट करके ले जाती है। मुरली की ध्वनि कर्णगोचर होते ही गोपियाँ आत्म विस्मृत हो जाती हैं और ससार के सभी बन्धनों को अमान्य करके अबाध कृष्ण की ओर दौड़ने लगती हैं। इसके अतिरिक्त सूर ने मुरली को लेकर गोपियों के मन में एक अत्यन्त मनोवैज्ञानिक भावना का क्रमिक विकास दिखाया है। यह बिलकुल स्वाभाविक है कि हम जिसे प्रेम करते हैं उस व्यक्ति की प्रत्येक वस्तु हमारे लिए आकर्षण का विषय बन जाती है। प्रिय के भेजे पत्र ही कौन सजीव वस्तु हैं किन्तु अपने प्रिय के साहचर्य और निकटता के प्रकरण में वे सजीव से भी अधिक हो उठते हैं। यही बात मुरली के विषय में भी है। मुरली कृष्ण से अभिन्न रूप से सम्बद्ध है, उनकी वह चिरसहवर्तिनी है। इसलिए गोपियाँ

मुरली को भी प्रेम करने लगती हैं और धीरे-धीरे प्रेम इस कोटि तक पहुँच जाता है कि वे मुरली से कभी प्रसन्न और कृतज्ञ रहती हैं तो कभी उससे मान भी कर बैठती हैं। कारण मुरली कृष्ण के साथ हर समय रहती है और उन्हें इतना अवसर भी नहीं देती कि गोपियों से प्रेमालाप भी कर सकें। गोपियों का वर्ग एक है, उनके स्वार्थ एक हैं, आकांक्षायें एक हैं इसलिये वे सब मिलकर मुरली के विरुद्ध एक अच्छा खासा मोर्चा बना लेती हैं और उसे पराजित करने की बात सोचती हैं। वे एक स्थान पर मिलकर बैठती हैं और मुरली चर्चा छिड़ जाती है।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दन, नाना भांति नचावति।
राखत एक पाँव ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति॥
× × ×
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर कर पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोपि नासापुट, हम पर कोप कुपावति॥

मुरली को क्या अधिकार कि वह कृष्ण और गोपियों के बीच में आए? यह तो सचमुच असहनीय है। थोड़ी बहुत देर की तो कोई बात नहीं पर यह तो बड़ी समय भक्षक है, कृष्ण से अलग ही नहीं होती और कृष्ण की कृपा भी तो इस पर कम नहीं। वे भी इसे अत्यधिक प्रेम करते हैं, वह निस्संकोच उनके अधरामृत का पान करती है। जो अधर रस बड़ों बड़ों को दुर्लभ है वह इस मुरली को सहज प्राप्य है। क्या किया जाय? कैसे इस बाधा को मार्ग से हटाया जाय—यह तो एक नई सौत पैदा हो गई है। निर्जीव वस्तु को सजीवता देना और फिर गोपियों की विभिन्न भावनाओं का इसे मधुर आलम्बन बनाना, यह सूर ही कर सकते थे, देखिये—

अधर रस मुरली लूटन लागी।
जा रस को षटरितु तप कीन्हो, सो रस पियत अभागी।
कहाँ रही कहँ ते आई कौने याहि बुलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताको कीनी सौति बनाई॥

कोई तरकीब नहीं सूझ रही कि इसे मार्ग से कैसे हटाया जाय। लेकिन प्रसिद्ध

है जहाँ चाह तहाँ राह। आखिर एक तरकीब गोपियों को सूझ ही गई—क्यों न इस दुष्टा का अपहरण कर लिया जाय, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी:—

> सखी री मुरली लीजै चोरि।
> छिन इक घर भीतर निसि बासर, धरतन कबहूँ छोरि।
> कबहूँ कर कबहूँ अधरनि कबहूँ कटि खोसत जोरि॥

इस प्रकार सूर का सयोग शृङ्गार इतना मार्मिक और आकर्षक है कि हिन्दी मे इसकी तुलना सभव नहीं है। लेकिन सूर वियोग शृङ्गार के वर्णन में भी उतने ही सफल हैं जितने सयोग-शृङ्गार वर्णन में और इसलिए शृङ्गार रस के वे अद्वितीय कवि हैं, इस क्षेत्र के प्रत्येक कोने को वे झाँक आए हैं।

२—वियोग शृङ्गार—कृष्ण ब्रज को छोड़कर एक दिन मथुरा चले जाते हैं और इस प्रकार सयोग की कहानी पर सदा के लिये पटाक्षेप हो जाता है। ब्रज रहते कृष्ण वहाँ के कण कण में बिंध गये थे, वे ब्रज के लिये सचमुच अपरिहार्य थे। जिनकी उपस्थिति से ही ब्रजभूमि आलोकित पुलकित रहती थी उनकी अनुपस्थिति में उस ब्रज भूमि की कल्पना बड़ी ही रोमाञ्चक है। कृष्ण का वियोग यदि एक व्यक्ति का ही वियोग होता तो बात दूसरी थी पर उनका वियोग तो ब्रज के प्राणों का ही वियोग था जिसके अभाव में सम्पूर्ण ब्रज निर्जीव एव निष्प्राण हो गया। सूर को यह अद्भुत सुविधा प्राप्त थी कि जिनको लेकर उनका सयोग शृङ्गार आनन्द और केलि से जितना ही अधिक सुवासित था उन्हीं कृष्ण की अनुपस्थिति ने उनके वियोग शृङ्गार को उतना ही तीव्र और मार्मिक बना दिया।

मथुरा पहुँचने पर कृष्ण ब्रजबालाओं को और सर्वोपरि राधा को भूल नहीं जाते। वे उनकी विरह व्यथा की सहज ही कल्पना करने की स्थिति में थे। वे जानते थे कि ब्रज आँज असहनीय दुःख मे लिप्त है। इसलिए उसे कम करने की इच्छा से उन्होंने अपने ज्ञान मार्गी सखा उद्धव को ब्रज भेजने का निश्चय किया जिससे वे गोपियों को ज्ञान का सदेश देकर उन्हें स्वस्थ चित्त बना सकें और उनकी विरह व्यथा को कुछ कम कर सकें। यद्यपि इस उद्देश्य की सिद्धि के परिणाम से वे पहले ही अवगत थे लेकिन यह सोचकर कि

उद्धव के ज्ञानदंभ का ही कुछ परिहार हो जायगा, उन्होंने उद्धव को ब्रज भेजने का निश्चय कर लिया।

उद्धव अपनी ज्ञान गठरी लेकर ब्रज पहुँचे और उन्होंने गोपियों को समझाया कि जिस कृष्ण को तुम प्रेम करती हो वह कोई व्यक्ति नहीं है अपितु साक्षात् ब्रह्म है। वह काल और स्थान के बन्धन में बँधने वाला सामान्य प्राणी नहीं है अपितु इन सबका नियन्त्रण करने वाला सर्वेश्वर है। इसलिये वे गोपियों को अपने जाने सत्परामर्श देते हैं कि कृष्ण का लोभ छोड़कर तुम परब्रह्म का ही ध्यान करो, उसीसे तुम्हें शान्ति मिलेगी। परन्तु गोपियाँ अत्यन्त अबोधता के साथ उद्धव से प्रश्न करती हैं—

"लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे छूटै।"

गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम ऐसा नहीं है जो प्रथमदर्शन मात्र का हो। उसके पीछे तो सतत साहचर्य की सुविस्तृत पृष्ठ भूमि है। उसकी उपेक्षा कैसे की जाय? इस प्रेम की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उद्धव की ज्ञान वायु में प्रेम का यह पौधा निर्मूल नहीं हो सकता।

उद्धव फिर भी थकते नहीं हैं। उन्हें अपने ज्ञान पर आवश्यकता से अधिक विश्वास है जिसे दंभ की संज्ञा भी दी जा सकती है। उद्धव अध्यापक की भांति ज्ञान के महत्त्व पर अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं किंतु श्रोता मण्डली उससे बिलकुल प्रभावित नहीं होती। गोपियाँ समझती हैं कि यह कोई विक्षिप्त मनुष्य है, किसी की कुछ सुनता ही नहीं, अपनी ही कहे जा रहा है। अत्यन्त संकोच के साथ आखिर गोपियाँ उद्धव से कह ही देती हैं, उद्धव आप अपनी चिकित्सा कराइये, आपकी मनःस्थिति अच्छी नहीं प्रतीत होती। आपको तो अच्छे बुरे का विवेक ही नहीं रहा है—

ऊधौ तुम अपनी जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागत, कत बेकाज ररौ।
जाइ करौ उपचार आपनो हम जो कहत हैं जी की।
कछू कहत कछुए कहि डारत धुनि देखियत नहिं नीकी।

गोपियों की दशा कृष्ण वियोग में चिंतनीय हो गई है। कृष्ण की उपस्थिति में प्रकृति की जो वस्तुयें जितनी मादक और सरस पूर्ण प्रतीत होती थीं

अब वे उतनी ही दाहक और दुखपूर्ण प्रतीत होती हैं।

बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजैं।
तब ये लगति लता अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।
वृथा बहति यमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं अलि गुंजैं॥
पवन पानि घनसार सजीवन दधिसुत किरन भानु भई भुंजैं।
कहियो पथिक जाइ माधव सौं मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं॥
सूरदास प्रभु तुमरे दरस कौं मग जोवत अँखियाँ भई गुंजैं॥

जागते हुए सुख की कल्पना गोपियाँ नहीं कर सकतीं परन्तु अब तो स्थिति इतनी विषम हो गई है कि स्वप्न में भी विरह उनका पीछा नहीं छोड़ता और अत्यन्त कष्ट देता है। देखिए सूर ने निम्नाङ्कित पंक्तियों में विरह का अगाध समुद्र भर दिया है—

हमकौं सपनेऊ में सोच।
जा दिन ते बिछुरे नदनन्दन ता दिनते ये पोच।
मनु गुपाल आए मेरे गृह हँसि कर भुजा गही।
कहा करौं बैरिन भई निंदिया निमिष न और रही।
ज्यौं चकई प्रतिबिम्ब देखिकै आनन्दी प्रिय जानि।
सूर पवन मिस निठुर विधाता, चपल कियो जल आनि।

कृष्ण जब से मथुरा गए हैं गोपियों के आँसू बन्द नहीं हुए हैं। बरसात की भाँति वे निरन्तर झरते रहते हैं—

निसदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हमपै, जबतै स्याम सिधारे।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भए कारे।
कंचुकि नहिं सूखति सुनि सजनी उरबिच बहत पनारे।

विरह की दस दशायें मानी गई हैं, १—अभिलाषा, २—चिन्ता, ३—स्मरण, ४—उद्वेग, ५—प्रलाप, ६—उन्माद, ७—व्याधि, ८—जड़ता, ९—मूर्छा, १०—मरण।

इन सभी अवस्थाओं को सूर ने गोपी विरह में दिखाया है। इसलिये शास्त्रीय दृष्टि से भी सूर का वियोग शृङ्गार निर्दोष है। प्रत्येक स्थिति का

एक-एक उद्धरण यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक न होगा :—

१—अभिलाषा—

निरखत अङ्क स्याम सुन्दर के बार बार लावति छाती।
लोचन जल कागद मसि मिलिकै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।

२—चिन्ता—

मधुकर ये नैना पै हारे।
निरखि निरखि मग कमल नयन को प्रेम मगन भए भारे।

३—स्मरण—

मेरे मन इतनी सूल रही।
वे बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं जे नंदलाल कहीं।

४—उद्वेग—

तिहारी प्रीति किधौं तरवारि।
दृष्टिधार करि मार साँवरे, घायल सब व्रजनारि।

५—प्रलाप—

कैसे पनघट जाउँ सखीरी, डोलों सरिता तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैनन के नीर॥
इन नैनन के नीर सखी री सेज भई घर नाँउ।
चाहति हौं याही पै चढ़ि कै स्याम मिलन को जाँउ॥

६—उन्माद—

माधव यह व्रज को व्यौहार
मेरो कह्यौ पवन को भुस भयौ गावत नन्द कुमार।
एक ग्वालि गोधन लै रँगति, एक लकुट करि लेति।
एक मंडली कर बैठारति छाक बांटि कै देति।

—व्याधि—

ऊधौ जू मैं तिहारे चरन लागौं, बारक या व्रज करवि भाँवरी।
निसि न नींद आवै, दिन न भोजन भावै, मग जोवत भइ दृष्टि झाँवरी॥

८ —जड़ता—

बालक सग लिये दधि नारत, रात खवावत डोलत।
सूर सीस सुनि चौंकत नावहिं, अब काहे न मुख बोलत॥

९— मूर्च्छा—

सोचति अति पछिताति राधिका मूर्च्छित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरैं ते बिथा न जाति सही॥

१०—मरण—

जब हरि गवन कियौ पूरब लौं, तब लिखि जोग पठायो।
यह तन जरिके भस्म ह्वै निवरयो बहुरि मसान जगायो॥
मेरे मनोहर आनि मिलाओ कै लै चलु हम साथे।
सूरदास अब मरन बन्यौ है पाप तिहारे माथे॥

इतना अवश्य है कि सूर ने जितने विस्तार से गोपियों के विरह का वर्णन किया है उतने विस्तार से कृष्ण के विरह का नहीं। इसका दार्शनिक कारण ही सभव है। कृष्ण परब्रह्म हैं, वे जीवात्मा का विरह क्या अनुभव करेंगे! गोपियाँ जीवात्माओं की प्रतीक हैं अतः उनका विरह दार्शनिक दृष्टि से भी न्याय सगत है। लेकिन सूर ने कहीं कहीं कृष्ण के हृदय को भी स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

कृष्ण यद्यपि मथुरा आगए हैं। राजसी ठाटबाट में रहते हैं। राजनैतिक घटना बाहुल्य के कारण अब उन्हें इतना समय नहीं कि एक बार ब्रज जाकर वहाँ के निवासियों की दशा देख आयें। किंतु उनके हृदय में गोप-गोपियों के प्रति अपार प्रेम है। वे इसका स्पष्टीकरण उद्धव के समक्ष करते भी हैं—

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हस सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुजन की छाहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं।
यह मथुरा कचन की नगरी मनि मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवहि वा सुख की जिय उमगत तन नाहीं॥

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि सूर का वियोग शृङ्गार

तथा संयोग शृंगार का वर्णन साङ्गोपाँग एवं मार्मिक है और सूर इस क्षेत्र के एकछत्र अधिपति हैं।

भ्रमरगीत और सूरदास

सूर काव्य में भ्रमरगीत का अपना विशिष्ट स्थान है। वह सूर के काव्य में भी सर्वश्रेष्ठ है, यह निस्संकोच कहा जा सकता है। भ्रमरगीत नौसिखिए सूर की रचना नहीं है अपितु एक अनुभवी महात्मा और महान प्रतिभाशाली कवि की रचना है। अनेक वर्षों तक भक्ति सागर में गोता लगाने एवं विस्तृत संसार का सूक्ष्म निरीक्षण करने के पश्चात्, सांसारिक लोगों को निर्गुण के कंटकाकीर्ण मार्ग से बचाकर उन्हें भक्ति का प्रशस्त राजमार्ग दिखाने के लिये ही भ्रमरगीत की रचना की गई है।

यों तो सम्पूर्ण सूर साहित्य पर भागवत की स्पष्ट छाया है। किन्तु एक महान् कवि के अनुरूप उन्होंने प्रत्येक स्थल को अपनी प्रतिभा के रंग में रँग कर मौलिक बना डाला है। यह प्रसंग यों तो भागवत में भी आया है किंतु अत्यन्त संक्षेप में है और उसका उद्देश्य भी सूर के भ्रमरगीत से भिन्न है। भागवत के अनुसार कृष्ण राजनैतिक कारणों से जो एक बार मथुरा जाते हैं तो फिर वहाँ की राजनीति में इतने बिंध जाते हैं कि फिर लौट नहीं पाते। कृष्ण के व्रज आने की अवधि जब समाप्त हो जाती है तो सम्पूर्ण व्रज उनके विरह में आकुल व्याकुल होने लगता है। गोपियाँ विशेष रूप से विरहव्यथित हैं। गोपियों की विरह व्यथा को शाँत करने या कम करने कृष्ण अपने ज्ञानी सखा उद्धव को व्रज भेजते हैं। उद्धव वहाँ जाकर अपने ज्ञानमार्ग का प्रचार करते हैं और व्रजवासियों को समझाते हैं कि कृष्ण परब्रह्म के अवतार हैं व्यक्ति नहीं हैं। इसलिये कृष्ण का मोह छोड़कर सबको निराकार ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये क्योंकि वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, और सर्वान्तरयामी हैं। भागवत में गोपियाँ उद्धव के ज्ञान संदेश से प्रभावित होती हैं और निराकारोपासना के लिये तैयार हो जाती हैं। भागवत में यह ज्ञान मार्ग की विजय है। इसी बीच में एक भ्रमर आ जाता है और गोपियाँ उसके माध्यम से कृष्ण पर कुछ व्यंग्य करती हैं।

भागवत में तो भ्रमरगीत का प्रसंग बस इतने ही संक्षेप में है किंतु काव्य

के लिए उसका प्रयोग करना यह सूर की प्रतिमा की अपनी विशेषता है और फिर भ्रमरगीत से सूर ने अपने उद्देश्य की सिद्धि भी की है। उन्होंने भ्रमरगीत के द्वारा निर्गुण का खडन किया है और साकारोपासना का समर्थन या प्रचार किया है। भ्रमरगीत में उद्धव की पराजय ज्ञानमार्ग की पराजय और सगुणोपासना की विजय दुंदुमी ही है।

यह स्मरणीय है कि सूर ने तीन भ्रमर गीतों की रचना की है :—

१—पहला भ्रमरगीत भागवत का उल्था मात्र है जिसमें ज्ञान वैराग्य आदि की ही अधिक चर्चा है। किंतु जहाँ भी सूर को अवसर मिला है उन्होंने ज्ञान की महत्ता घटाने का प्रयत्न किया है। यह भ्रमर गीत चौपाई छन्द में लिखा गया है। इस भ्रमर गीत से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ से ही सूर का दृष्टिकोण भागवत से भिन्न है।

२—दूसरा भ्रमर गीत पदों में रचा गया है। पहले भ्रमर गीत और इसमें भ्रमर के आने की चर्चा नहीं है। मधुकर नाम से ही उद्धव पर व्यंग्य किये गए हैं।

३—तीसरे भ्रमरगीत की रचना भी पदों में हुई है किन्तु वह अन्य दो भ्रमर गीतों से अधिक विस्तृत, अधिक काव्यपूर्ण एव आकर्षक है। इसमें पहली बार भ्रमर उस समय उड़कर आता है जब उद्धव गोपियों से बात कर रहे हैं। और गोपियाँ उसी भ्रमर के माध्यम से उद्धव और कृष्ण पर व्यंग्य बाणों की वर्षा करने लगती है। सूर का यही भ्रमरगीत हिंदी साहित्य का गौरव है और उसकी अक्षय निधि है। इतनी वचन वक्रता, साहित्यिक व्यंग्य की इतनी पद्धतिया जिनका शुक्लजी के शब्दों में अभी वर्गीकरण या नामकरण भी नहीं हुआ है, इसी भ्रमरगीत में हैं इस भ्रमरगीत में सूर ने खुले शब्दों में निराकार का खडन और साकार का मण्डन किया है। महाप्रभु बल्लभाचार्य के द्वारा प्राप्त अपरिमित ज्ञान को सूर इस भ्रमर गीत में साहित्यिक या काव्यात्मक अभिव्यक्ति दे सके हैं। यों सूर के भक्त जीवन के प्रारम्भ से ही उनकी निर्गुण में अधिक रुचि नहीं रही। वे जानते थे कि निराकोपासना में आधार के अभाव में मनुष्य का निरालम्ब मन चक्र के समान भ्रमित रहता है इसलिये प्रारम्भ से ही वे सगुण प्रभु के गान को ही स्पृहणीय समझते रहे।

सूर के इस भ्रमर गीत में पहली बार सूर के भक्ति विषयक विचार स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। भागवत में यद्यपि भक्ति का विरोध नहीं किया गया है किन्तु ज्ञान की विजय दिखाकर प्रकारांतर से भक्ति की हीनता प्रतिपादित की गई है; उसी प्रकार सूर यदि चाहते तो बिना ज्ञान मार्ग की निन्दा किए केवल सगुण भक्ति की विजय दिखाकर ज्ञानमार्ग की हीनता प्रदर्शित कर सकते थे पर उन्हें पसंद नहीं था। इसलिये सगुण भक्ति के प्रचारक के रूप में उन्होंने इस भ्रमर गीत में निर्गुण का निमम विरोध किया है। और गोपियों के समक्ष ज्ञान के प्रतीक उद्धव की पराजय दिखाकर उन्होंने सगुण भक्ति की पताका भी ऊँची रखी है।

ज्ञान के प्रतीक उद्धव अपने हृदय में अपार साहस और मस्तिष्क में ज्ञान का अपार दम लेकर आए हैं कि जाते-जाते गोपियों की आस्था सगुण भक्ति से हटाकर निर्गुण में कर सकेंगे। वे केवल अपनी बात सोचकर आए हैं, जैसे कि दूसरे पक्ष के पास कहने योग्य कुछ सामग्री ही नहीं है और फिर भोली-भाली गोपियाँ भला उनके ज्ञान को चुनौती देंगी, इसकी कल्पना तो उन्होंने कभी स्वप्न में भी न की होगी।

उद्धव व्रज में आकर अपना भाषण प्रारम्भ करते हैं और गोपियों को बताते हैं कि तुम सब लोग अभी तक भ्रम में पड़ी हुई हो, सबका आराध्य अंत में निर्गुण ब्रह्म ही है जिसकी रूपरेखा का वर्णन नहीं कियाजा सकता। वह वर्णनातीत है, उसका केवल अनुभव किया जा सकता विश्लेषण नहीं। जिन श्रीकृष्ण को तुम प्रेम करती हो वे ब्रह्म के ही प्रतीक हैं। उनका बाह्यरूप मिथ्या है जिससे तुम प्रेम करती हो। इस प्रकार के प्रेम से तो तुम्हारा चित्त अस्थिर और अशांत ही रहेगा। सच्ची शांति प्राप्त करने के लिये योग का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। योग में दक्षता प्राप्त करने के लिये कुछ शारीरिक साधनाओं की अपेक्षा है जो साधारण कठिनाई के पश्चात् संभव हो सकेंगी। उद्धव ने समझा था कि उनका भाषण इतना सारगर्भित, विचारोत्तेजक और मार्मिक है कि किसी को कोई शङ्का भी हो सकती है यह उनके लिये कल्पनातीत बात थी। किन्तु अचानक एक गोपी खड़ी होगई और अपनी शङ्का को उसने इन सीधे सादे शब्दों में प्रकट किया—

• हे अलि कहा जोग मे नीको ।

तजि रस रीति नन्दनन्दन की सिखवत निर्गुन फीको ।

देखत सुनत नहिं कछु स्रवनिन, ज्योति-ज्योति कर ध्यावत ।

+ + + +

अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की बेली ।

उद्धव यह अप्रत्याशित प्रश्न सुनकर भौंचक्के रह गए होंगे। यह तो बड़ा अपशकुन हुआ । ये मूर्ख गोपियाँ निराकार ब्रह्म को चुनौती देने लगीं, बड़ी असह्य बात है । अभी उद्धव इस अप्रत्याशित सकट से अपना पीछा भी नहीं छुड़ा पाए थे कि एक और गोपी खड़ी होगई । यह पहली गोपी से भी अधिक धृष्ट निकली । उसे निराकार ब्रह्म की स्थिति के विषय में तो शङ्का है ही साथ ही उसे इस बात का भी विश्वास नहीं है कि उद्धव सचमुच कोई गभीर बात भी कह रहे हैं । उसे उद्धव के ज्ञान पर भी शका है । वह समझती है यह पाखण्डी आदमी कहता कुछ है, करता कुछ है । भले आदमी निर्गुण ब्रह्म को तुमने स्वय देखा है जो हमें देखने के लिये कहते हो :—

रेख न रूप बरन नहिं जाके, ताको हमें बतावत ।

अपनी कहौ दरस वैसे को तुम कबहूँ ही पावत ?

इसका उद्धव के पास क्या उत्तर होता, बेचारे निरुत्तर होगए। शायद न भी होते पर सूर तो उन्हें निरुत्तर ही करना चाहते थे । उद्धव ने देखा कि ऐसे काम नहीं चलेगा, तब उन्होंने एक चाल चली । उन्होंने सोचा कि इस मण्डली में कृष्ण के नाम पर कोई बात कही जायगी तब तो लोग सुनेंगे, नहीं तो सुनेंगे तक नहीं । उन्होंने गोपियों को विश्वास दिलाया कि ये सब बातें मेरी मनगढ़न्त नहीं हैं अपितु तुम्हारे प्रियतम कृष्ण का सदेश है । उन्हीं की आज्ञा से उनके शब्द मैंने आप लोगों के समक्ष रखे हैं । आपको इन शब्दों पर विश्वास करना चाहिए । वे चाहते हैं कि आपके विरह का दुख किसी प्रकार कम हो और मेरे द्वारा प्रचारित सदेश से ही ऐसा सभव हो । अब गोपियाँ जरा चक्कर में पड़ीं । कृष्ण के सदेश की अवहेलना कैसे करें । कृष्ण क्या इतने निष्ठुर हो गए हैं कि ऐसे नीरस कठोर और अनुपयुक्त सदेश हमें भेजें । अचानक एक गोपी की समझ में सब रहस्य आगया । जरूर इसे कुब्जा ने भेजा है । यह उसी

का भेदिया है। वह चाहती है हम कृष्ण की ओर से पराङ्मुख हो जायँ और कृष्ण सदैव मथुरा में ही बने रहें। उसने तुरन्त उठकर यह घोषित कर दिया–

मधुकर कान्ह कही नहिं होही।
यह तो नई सखी सिखई है, निज अनुराग बरोही।
सखि राखी कूबरी पीठि पै ये बातें चकचोंही।

उद्धव ने बिगड़ती हुई परिस्थिति संभालने की लाख कोशिश की। बौद्धिक स्तर पर गोपियों को समझाने की चेष्टा की। बार बार यह कहने पर भी कि आप लोग भावुकता में मत पड़िए, मेरा उपदेश ध्यान से सुनिये, श्रोताओं में कुछ उत्साह दिखाई नहीं दिया। उद्धव ने गोपियों से कहा आप विवेक मत खोइये, कृपया मैं जो कहता हूँ उसे सुनिये। गोपियाँ इस अपमान को सहन न कर सकीं। क्रोधावेश में एक ने कह ही तो दिया। उद्धव जी विवेक हमारा तो ठीक है परन्तु आपका विवेक जरूर कुछ गड़बड़ है। पहले अपनी उचित चिकित्सा कराइये तब कृपया यहाँ आकर भाषण दीजिये। देखिये न, आप कहना कुछ चाहते हैं, कह कुछ जाते हैं, ये अच्छे लक्षण नहीं हैं :—

ऊधौ तुम अपनौ जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागै, कत बेकाज ररौ।
जाय करौ उपचार आपनौ हम जो कहत हैं जी की।
कछू कहत कछुए कहि डारत धुनि देखियत नहिं नीकी।

उद्धव ने सोचा स्त्री जाति की हैं न, इसलिये शायद मेरे ज्ञान-गांभीर्य की थाह नहीं पा रही हैं। मेरा कर्त्तव्य तो इन्हें उचित मार्ग बताना ही है। यह सोचकर उद्धव ने फिर योग का सन्देश देना प्रारंभ किया। शास्त्रों में योग स्त्रियों के लिये वर्जित है। उद्धव ज्ञान की उमंग में यह विस्मृत कर जाते हैं। तब गोपियाँ ही उनकी भूल उन्हें बताती हैं। कहती हैं उद्धव तुम तो' इतने बड़े मूर्ख हो कि यह भी नहीं जानते कि योग अबलाओं के लिए वर्जित है।'

अटपटि बात तिहारी ऊधौ, सुनै सो ऐसी को है।
हम अहीर अबला सठ मधुकर! तिन्हें जोग कैसें सोहै।

आखिर उद्धव के ज्ञानोपदेश से तंग आकर गोपियाँ साफ साफ कह देती हैं उद्धवजी! आप योग अपने पास रखिए। उसका हम क्या करेंगी? हमें तो

हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण चाहिये।

रहु रे मधुकर मधु मतवारे।

कहा करैं निर्गुण लैकें हम, जीवहु कान्ह हमारे।

उद्धव! क्या तुम इस ज्ञान कथा के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते यदि नहीं जानते तो कृपया यहाँ से तशरीफ ले जाइए। हाँ यदि आप कृष्ण कथा सुना सकें तो हम सुनने के लिए सहर्ष तैयार है :—

हमको हरि की कथा सुनाव।

अपनी ज्ञान कथा तुम ऊधो मथुरा ही लै जाव॥

लेकिन उद्धव फिर भी गोपियो से यही प्रार्थना करते हैं कि यदि मैं ज्ञानोपदेश को आप मन लगाकर सुनेंगी तो आपको सच्ची शांति प्राप्त होग लेकिन गोपियाँ बड़े भोलेपन के साथ उत्तर देती हैं :—

ऊधों मन-नाहीं दस बीस।

एक हुतौ सो गयो स्याम संग को आराधै ईस॥

गोपियाँ समझ लेती हैं यह आदमी शायद योग की भाषा के अतिरि और कोई भाषा ही नहीं समझता। तब वे योग की भाषा का ही आश्रय लेत हैं और उद्धव को बताती हैं कि हम तो पहले से ही योग साधना कर रही प्रेम हो हमारा तप या योग है; दुख सुख को हमने जीत लिया है, मानापमा से हम ऊपर हैं, प्रेम की कठिन अग्नि में हमने अपनी सब इच्छायें होमदी हैं कृष्ण के विरह में हम पंचाग्नि साधन कर रही हैं। अब तुम्हीं बताओ हम बड़ा योगी कौन होगा :—

हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ।

मन वचक्रम हरि सौं धरि पति व्रत, प्रेम जोग सब साध्यौ॥

मातपिता हित प्रीति निगम पथ तजि दुख सुख भ्रम नाख्यौ।

मान अपमान परम परितोषी अस्थिर स्थित मन राख्यौ॥

सकुचासन कुलसील करसिकर जगत बंध करि बंदन।

मान अपवाद पवन अवरोधन हित क्रम काम निकंदन॥

गुरजन कानि अगिनि चहुँ दिसि, नभ तरनि ताप बिनु देखे।

पिवत धूम उपदेश जहाँ तहँ, अपजस श्रवन अलेखे॥

सहज समाधि बिसारि वपुकरी निरखि निमेस न लावत।

परम ज्योति प्रति अग माधुरी, धरत यहै निसि जागत ॥
त्रकुटी सग भू मग तराटक, नैन नैन लगि लागे।
हँसन प्रकाश सुमुख कुण्डल मिलि,चद सूर अनुरागे।
मुरली अधर श्रवन धुनि सो सुनि अनहद शब्द प्रमाने ॥
बरसत रस रुचि बचन सग सुख पद आनन्द समाने।
मन्त्र दियो मन जात भजन लगि ज्ञान ध्यान हरि ही को।
सूर कहै गुरु कौन करै अलि कौन सुनै मति फीको।

आखिर ज्ञान मल्ल उद्धव व्रज के अखाड़े म चारो खाने चित्त गिरे सो भी गोपियों के द्वारा। गोपियों की कठिन विरहाग्नि से उद्धव का वज्र हृदय भी पिघल गया। उद्धव पूर्णरूप से पराजित होकर लौटे लेकिन यह पराजय भी उनकी बहुत बड़ी जीत थी क्योंकि इसके द्वारा उनके हाथ एक ऐसी रसायन लग गई जो कि ब्रह्मानन्द सदृश थी। मथुरा जाकर उद्धव ने कृष्ण के समक्ष अपना प्रतिवेदन(रिपोर्ट)प्रस्तुत किया लेकिन गोपियों के लिये धृणा का प्रकाश करते हुए नहीं अपितु उनकी वकालत करते हुए, उनका पक्ष पोषण करते हुए। उद्धव का यह हृदय परिवर्तन काव्य की दृष्टि से अद्भुत है, सूर जैसी प्रतिभा का ही यह कार्य था कि इस मार्मिक स्थल का वे अपनी उद्देश्य सिद्धि के लिये सफल प्रयोग कर सके। उद्धव की रिपोर्ट देखिये। यह रिपोर्ट क्या है ज्ञान मार्ग की पराजय को स्पष्ट घोषणा और सगुण भक्ति की विजय दुदुभी है:—

माधव यह व्रज को ब्यौहार।
मेरो कह्यो पवन कौ भुसभयौ, गावत नदकुमार।
एक ग्वारि गोधन ले रेंगति, एक लकुटिकर लैति ॥
एक मण्डली करि बैठारति छाक बाटि कै देति ॥
एक ग्वारि नटवर करि लीला, एक कर्म गुन गावति।
कोटि भाति कै मैं समुझाई, नैक न उर में लावति।
निसि वासर ये ही व्रत सब व्रज दिन दिन नूतन प्रीति ॥
सूर सकल फीको लागत है देखत वह रस रीति ॥

उद्धव ने व्रज प्रयाण करते समय समझा था कि कृष्ण सचमुच ज्ञान मार्ग के समर्थक हैं और हृदय से चाहते हैं कि गोपियों की विरह व्यथा उपदेश से शांत हो जाय तो अच्छा, किन्तु उद्धव का हृदय प...

कृष्ण भी खुल पड़े, बोले उद्धव ! ठीक कहते हो मेरी भी बड़ी बुरी दशा है ज्ञान ध्यान की ये बातें तो कोरा मजाक थीं और फिर आपके ज्ञानगर्व परीक्षा भी होनी थी। सच बात तो यह है कि मैं स्वय भी जब से ब्रज आया हूँ अशान्त चित्त हूँ। गोप गोपियों का प्रेम मुझे हर समय ब्रज ले जाने के लिए प्रेरित करता है। मैं स्वय स्वीकार करता हूँ कि मानस की वा विक शात के लिये ज्ञान मार्ग उपयुक्त नहीं है। उसके लिये तो उचित रा भक्ति का ही है। अन्त में सूर कृष्ण के मुख से निम्नाकित पद कहला भक्ति मार्ग की विजय घोषणा दिग् दिगत मे कर देते हैं। कृष्ण उद्धव अपने मन की असह्य व्यथा का उद्घाटन करते हुए कहते हैं—

ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हस सुता की सुन्दर कगरी अरु कुंजन की छाहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी खरिक दुहावन जाहीं॥
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाही।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं॥
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तनु नाहीं।
अनगन भाँति करीं बहु लीला, जसुदा नन्द निवाही॥
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै यह कहि कहि पछिताहीं॥

इस प्रकार अपने भ्रमर गीत में महाकवि सूर ने एक ओर तो सगुण भ का उत्कर्ष निर्गुण भक्ति की तुलना में दिखाया है। इसके साथ हृदय की कोम वृत्तियाँ भी उसमें चरम विकसित रूप मे व्यक्त हैं जो 'भ्रमर गीत' प्रसग हिन्दी की अमूल्य निधि बना देती हैं।

सूरदास की काव्य कला

'सूर' हिंदी साहित्याकाश के 'सूर' माने जाते हैं। इसका अर्थ यही है सूर का काव्य काव्य के गुणों से परिपूर्ण है। काव्य के उत्कर्षापकर्ष निर्णय करने के लिये एक सामान्य कसौटी की अपेक्षा होती है। यदि प्रकार की कोई कसौटी निश्चित की जाती है तो उसमें निम्नाकित तत्वों होना अनिवार्य है।

१—कवि की भावुकता या सहृदयता जिसके द्वारा कवि शेष सृष्टि साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सके और उसका अनुभूति

धिक से अधिक विस्तृत हो सके।

२—सूक्ष्म निरीक्षण—जिस कवि का ससार सम्बन्धी निरीक्षण जितना सूक्ष्म होगा उसका काव्य उतना ही स्वाभाविक, मार्मिक और अनुभूति तीव्रता से युक्त होगा। जिन कवियो का सूक्ष्म निरीक्षण का पक्ष शून्य या बेल होता है उनका काव्य रसिक जनों का कण्ठहार नहीं बन पाता।

३—भाषाधिकार—बहुत से ऐसे कवि भी होते हैं जो प्रतिभाशाली हैं, नका सूक्ष्म निरीक्षण भी व्यापक और गहरा है किन्तु भाषा की असमर्थता से कवियों की सभी विशेषताओं को व्यर्थ कर देती है। इसलिए अन्य सभी णों के साथ साथ भाषा पर असाधारण अधिकार भी सफल कवि होने के लये अनिवार्य है। कवि जो बात कहना चाहता है वह तब तक मार्मिक एव भावपूर्ण नहीं हो सकती जब तक कि उसका बात कहने का ढङ्ग चमत्कार र्ण या असाधारण नहीं है। भाषा या अभिव्यक्ति पक्ष यद्यपि कवि का साध्य हीं है किन्तु इसके अभाव में उसकी भावपक्ष की साधना भी व्यर्थ हो जाती । साधक और कवि में यही अन्तर है। साधक अपनी तपस्या के पश्चात् स महान आनन्द का अनुभव करता है उसे व्यक्त नहीं कर सकता। कवि जो छ अनुभव करता है उसे व्यक्त भी करता है।

शास्त्रीय भाषा में उपर्युक्त वर्गीकरण को दो नाम दिए जाते हैं।

१—काव्य का भावपक्ष।

२—काव्य का कलापक्ष।

उपर्युक्त सभी वर्गीकरण वास्तव में व्यावहारिक हैं, तात्विक नहीं। तात्विक ष्टि से तो भाव और भावाभिव्यक्ति के क्रम को अलग किया ही नहीं जा कता। फिर भी विवेचन की सुविधा के लिये हम उपर्युक्त दानो शीर्षकों के न्तर्गत सूर की कविता या काव्य कला पर विचार करेंगे।

सूर के भाव पक्ष पर विचार करते समय निम्नाँकित बातों पर विचार ना अत्यावश्यक है।

१—विनय—जब तक महात्मा सूरदास महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क नहीं आए थे उससे पूर्व वे विनय के पद ही गऊ घाट पर बैठ कर लिखा थे। इसलिये सूर काव्य पर विचार करते समय उनके इस पक्ष की उपेक्षा की जा सकती। सूर के विनय सबधी पद दीनता, आत्म समर्पण, तल्लीनता

और ससार के प्रति विरक्ति की भावना से ओत प्रोत हैं। उनमें एक भुक्तभोगी व्यक्ति के यथार्थ निष्कर्ष हैं। इसीलिये सूर के विनय के पद इस दृष्टि से जितने उत्कृष्ट हैं उनकी तुलना में हिन्दी में कम ही कवि प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सूर के इन पदों में उनकी दीनता, अकिंचनता आदि भावनायें बड़े निखरे रूप में हमारे समक्ष आती हैं :—

प्रभु जी हौं पतितनु को टीको।
और पतित सब द्यौस चारि के हौं जनमत ही को।

विनय के पदों से स्पष्ट हो जाता है कि सूर इस ससार से अत्यन्त विरक्त हो गये थे और उद्धार के लिये उन्हें केवल भगवान् की कृपा का ही भरोसा था। वे भगवान के समक्ष अपनी पूरी दुर्बलताओं के सहित आत्म-समर्पण करते हैं—

अब कैं माधव मोहि उधारि।
मग नहीं भव अम्बुनिधि में कृपा सिंधु मुरारि।
नीर अति गम्भीर माया लोभ लहरि तरङ्ग॥
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनग।
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति मोह अघ सिर भार
मग न इत उत धरनि पावत उरझि मोह सेवार॥
काम क्रोध समेत तृणा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर।
थकी बीच विहाल विह्वल सुनो करुना मूल।
स्याम भुज गहि काढि लीजै, सूर ब्रज के कूल॥

सूर का कहना है कि ससार में तो मैं सबकी परीक्षा ले चुका। अब इस निष्कर्ष पर पहुँचाहूँ कि हे प्रभु! आपके बिना मेरा सच्चा सहायक और कोई नहीं है। यदि आप कृपा करेंगे तभी मेरी नैया पार लगेगी। आत्म समर्पण विरक्ति की तीव्रता एव तल्लीनता आदि दुर्लभ विशेषताएँ सूर के पदों को छोड़ अन्यत्र शायद ही एक स्थान पर मिलें। देखिये—

मेरी तौ गति पति तुम, अन्तहि दुख पाऊँ।
हौं कहाइ तिहारौ अब कौन को कहाऊँ॥
कामधेनु छाँडि कहा अजा जा दुहाऊँ।

\+ + + +

सागर की लहरि छांडि खार कत अन्हाऊँ ।
सूर कूर आँधरौ मैं द्वार परयौ गाऊँ ॥

बालवर्णन–सूर का बालवर्णन हिन्दी मे अद्वितीय माना जाता है। उनकी इस विशेषता के समक्ष हिन्दी का बड़े से बड़ा कवि भी नहीं टिक पाता। यहाँ तक कि इस दिशा में कवि-सम्राट गोस्वामी तुलसीदास भी उनसे पीछे रह जाते हैं। शुक्लजी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि "यह अन्धा कवि वात्सल्य और शृङ्गार रस का कोना-कोना झाँक आया है।" बालकों का मनोविज्ञान, उनकी क्रीड़ा आदि के जितने सजीव चित्र सूर ने हिन्दी को दिये हैं वे सचमुच एक सुखद आश्चर्य के विषय हैं। संस्कृत में एक कहावत है "वाणोच्छिष्टं जगत सर्वम्" वही बात सूर के बालवर्णन के विषय में कही जा सकती है। हिंदी का संपूर्ण बाल वर्णन सूर के जूठन मात्र हैं। सूर ने वात्सल्य के दोनों पक्षों, माता-पिता पक्ष तथा बालकों का मार्मिक वर्णन किया है। माँ के हृदय के प्रेमोद्रेग को भी वे जानते हैं और माँ-बाप के प्रति बच्चों की कोमल भावनाओं से भी वे परिचित हैं। दोनों का सूक्ष्म निरीक्षण उन्होंने किया है। इसी साधना और महानता के बल पर वे बाल वर्णन के हिंदी में सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। सूर यदि केवल बाल वर्णन लिखकर और कुछ न लिखते तो भी उनकी एक महाकवि के रूप में प्रसिद्धि निर्विवाद थी। देखिये बालक कृष्ण की चालाकी, माता को कैसा बहलाने का प्रयत्न करता है—जैसे माता बच्चा हो और वह स्वयं प्रौढ़ हो—

मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे धरि पायो ॥
मुख दधि पोंछ कहत नन्द नन्दन दीना पीठि दुरायौ ।
छोरि सांटि मुसकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो ॥

और बालकों की भांति कृष्ण को भी गाय चराने के लिये जाना पड़ता। दूसरे गोप कृष्ण को ही गायों के पीछे दौड़ाते हैं। वे बड़े चालाक हैं और ह भी जानते हैं कि किस व्यक्ति की गायों के भटक जाने की बात कहकर न्हें दौड़ाया जा सकता है। राधा और कृष्ण का प्रेम ब्रज का खुला रहस्य

है। इसलिये वृषभानु की गायों को तो कृष्ण ही घेर कर ला सकते हैं:—

बिरछि चढ़ि काहे न टेरत कान्हा गैया दूरि गई ।
धाई जाति सबनि ते आगे जे वृषभानु दई ॥

वहां तो कृष्ण चुपचाप गैया घेरते रहते हैं किंतु घर आकर अपनी कथा यशोदा मा से कहते हैं—

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाँइ पिराइ ॥

यशोदा प्यार से उन्हें गोद में भर लेती हैं और दुष्टों को पचास खरी खोटी कहती हैं। मेरे बालक को रिगॉ-रिगॉ कर मारे डालते हैं। लेकिन कृष्ण को बाहर के गोप ही परेशान करते तब तक कोई चिंता न थी पर बड़े भाई बलराम को भी तो उन्हें चिढ़ाने में आनद आता है। जब सब बालक खेलने के लिये एकत्र होते हैं तो बलराम कृष्ण को चिढाते हैं । इतना ही नहीं पड़ौस के और बालकों को भी सिखा देते । कृष्ण का बाहर निकलना ही मुश्किल कर दिया है । आखिर कृष्ण आ यशोदा से शिकायत करते हैं—

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझाओ।
मोसो कहत मोल को लीनो तू जसुमति कब जायो।
कहा करौं यहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात॥
पुनि पुनि कहत कौन है माता, कौन तिहारो तात।
गोरे नन्द, जसोदा गोरी, तू कत स्याम सरीर॥
चुटकी दै दै हसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर।
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै॥
मोहन को मुख रिस समेत लखि यसुमति सुनि सुनि रीझै।

माता यशोदा बड़े प्रेम के साथ कृष्ण को समझाती हैं बेटा! बलराम बड़ा दुष्ट है,'तू इसकी बातों में मत आया कर—

सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत।
सूर स्याम मो गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

माता-पिता और पुत्र की इस भावनिधि से सूर साहित्य इतना समृद्ध है कि विश्व का उत्कृष्टतम साहित्य उससे ईर्ष्या कर सकता है।

मुरली—कृष्ण युवा होते हैं। वे तो वैसे ही सम्पूर्ण ब्रज में आकर्षण का

केन्द्र हैं, उस पर उनके अन्दर ऐसे गुण भी हैं जो साधारण आदमी को भी लोकप्रिय बना दें। युवा कृष्ण मुरली बजाने में सिद्धहस्त हैं। ऐसी मुरली बजाते हैं कि अचल चलने लगें और चलने वाले जीव स्थिर हो जायँ। मुरली का प्रभाव बड़ा व्यापक है। कृष्ण को भी मुरली बहुत अच्छी लगती है एक क्षण के लिये भी वे उसे अपने आप से अलग नहीं करते। गोपियों को यह बात बिलकुल पसंद नहीं आती कि मुरली कृष्ण के समय पर इस प्रकार एकाधिकार कर ले। कुछ उनका भी तो अधिकार कृष्ण के समय पर होना चाहिए। कृष्ण गोपियों के भी तो हैं। और फिर मुरली भी बड़ी घमन्डिनि है कृष्ण का प्रेम प्राप्त कर गर्व के मारे फूली नहीं समाती है, किसी को कुछ समझती ही नहीं है :—

माई री मुरली अति गर्व काहू बदति नाहिं आजु।
हरि को मुख कमल देख पायो सुख राजु॥

और अजीब बात तो यह है कि संसार जिनकी खुशामद करता है वे कृष्ण स्वयं उस मुरली की खुशामद में लगे रहते हैं। गोपियों को यह सब अच्छा नहीं लगता। वे आपस में कहती हैं।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुनरी सखी जदपि नन्द नन्दन नाना भांति नचावति।
राखति एक पाँय ठाड़ो करि अति अधिकार जनावति॥
× × × ×
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर, कर पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल कोप नासापुट हम पर कोप कुपावति॥

गोपियों को बड़ी चिढ़ होती है। जाने यह दुष्टा कहाँ से आगई है। हमारे लिये तो यह साक्षात् सौत ही हो गई है। निर्जीव वस्तुओं के प्रति मनुष्यों को इस भावातिरेक सूर का ही निर्वाह कर सकते थे।

देखिये—

कहाँ रही कहाँ ते है आई कौने याहि बुलाई।
सूरदास प्रभु हम पर ताको कीनी सौति बजाई॥

सूर के भावुक हृदय ने बाँस की निर्जीव मुरली में भी जान डाल दी है।

सूर की यह भावुकता, वाग्विदग्धता, तल्लीनता और रोचकता हिंदी में सचमुच अद्वितीय है।

शृङ्गार वर्णन—सूर हिंदी में शृङ्गार रस के सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। फिर गोपी कृष्ण प्रसग में तो प्रेम की विविधता भी है। उसमें सयोग का मधुर सुख भी है और विरह का तीखापन भी है। तथा सूर की नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा न तो उसमें और भी जान डालदी है। गोपीकृष्ण प्रेम की जड़ें अत्यत गहरी हैं। उनका प्रेम प्रथम दर्शन का अस्थिर प्रेम नहीं हैं। तभी तो उद्धव जैसे ज्ञानी के लाख प्रयत्न करने पर भी उनका पूर्ण विकसित प्रेम वृक्ष हिलता तक नहीं है और गोपियाँ उसमे स्पष्ट कह भी देती हैं—

लरिकाई को प्रेम कहौ अलि कैसे छूटे।

अपने काव्य में सूर न गोपियों के प्रेम पर ही अधिक ध्यान दिया है। कृष्ण को उतना प्रेम पीड़ित उन्होंने नहीं दिखाया जितना गोपियों को। हो सकता है कि भारतीय दर्शन के यही अधिक अनुकूल हो जहाँ जीवात्मा ही परमात्मा के विरह में अधिक व्याकुल रहती है। साहित्य शास्त्र के शब्दों में कह सकते हैं कि गोपियों का प्रेम नायिकारब्ध (जहाँ नायिका पहले प्रेम प्रारम्भ करती है) प्रेम है। लेकिन राधा कृष्ण प्रेम की बात गोपी कृष्ण-प्रेम से कुछ भिन्न है। सौन्दर्य की देवी राधा की ओर प्रेम की पहल कृष्ण ही करते हैं। एक दिन राधा उन्हें अचानक दृष्टिगोचर होती है और वे पहली दृष्टि में ही उधर आकृष्ट हो जाते हैं। आकृष्ट ही नहीं, आसक्त हो जाते हैं।

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गए स्याम रवितनया के तट, अङ्ग लसत चन्दन की खोरी॥
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विसाल भाए दिए रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगौरी॥

कृष्ण राधा से परिचय प्राप्त करने का लोभ सवरण नहीं कर पाते। वे बड़ी निश्छलता और अबोधता के साथ पूछते हैं—

बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नाहिं कहूँ ब्रज खोरी॥

राधा भी अपने न आने का कारण बता देती है जिसमें कृष्ण पर व्यग्य भी है—

"काहे को हम ब्रज तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहत स्रवनन नँद ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी॥"

लेकिन कृष्ण राधा को यह विश्वास दिला देते हैं कि हम तुम्हारा क्या चुरा लेंगे और फिर यही परिचय धीरे धीरे प्रगाढ़ प्रेम मे बदल जाता है और फिर रास और जल विहार से ब्रज भूमि में बारहों महीने बसन्त बना रहता है—

विहरत हैं जमुना जल स्याम।
राजत हैं दोउ बाहों जोरी, दम्पति अरु ब्रजबाम॥
कोउ ठाड़ी जल जानु जघलौं, कोउ कटि हृदय ग्रीव।
यह सुख बरनि सकै ऐसो को सुन्दरता की सींव॥

सूर ने अपनी जितनी प्रतिभा सयोग शृङ्गार वर्णन में लगाई है उससे भी अधिक हृदय के रस के साथ उन्होंने वियोग-शृङ्गार के चित्र उपस्थित किए हैं। पूरा भ्रमरगीत प्रसग गोपियों की दारुण विरह व्यथा का ही प्रकाशन है। कृष्ण के समय में उनके उपस्थित रहते जो वस्तुएँ आह्लादकारी थीं अब वे ही काटने दौड़ती हैं। यह स्वाभाविक भी है। देखिए गोपियों को अब बादल कैसे दिखाई देते हैं—

देखियत चहुँदिसि ते घनघोरे।
मानो मत्त मदन के हथियनु बलकरि बन्धन तोरे॥
स्याम सुभग तन चुअत गडमद बरसत थोरे थोरे।
रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अकुस मोरे॥

कृष्ण के वियोग में ब्रज में अब तो वर्ष भर बरसात ही बनी रहती है। इन्द्र तो वैसे भी ब्रज का पुराना शत्रु है और अब तो कृष्ण की अनुपस्थिति में प्रतिशोध का पूरा अवसर भी उसे मिल गया है। पहले तो कृष्ण ने ब्रज की रक्षा करली थी लेकिन आज कौन रक्षा करे और फिर आज तो घर की वस्तुएँ भी शत्रु हो गई हैं। य अपनी आँखें ही जल का अक्षयस्रोत बन गई हैं और ब्रज को डुबो देने पर तुली हैं—

सखी इन नैनन ते घन हारे।
बिनही रितु बरसत निसिबासर सदा मलिन दोउ तारे॥
ऊरध स्वास समीर तेज अति सुख अनेक द्रुम डारे।
दसन सदन करि बसे बचन खग दुख पावस के मारे॥

× × ×

सुमिरि सुमिरि गरजत जल छाँड़त अश्रु सलिल के धारे।
बूड़त ब्रजहिं सूर को राखे बिनु गिरवर धर प्यारे॥

भ्रमरगीत में वियोग शृङ्गार के एक से एक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं। कुछ व्यक्ति शृङ्गार के अतिरिक्त हास्यरस, वीररस, भयानकरस, और रौद्ररस का एक एक उदाहरण सूर में से ढूँढ लाते हैं और उन्हें उनके महाकवि सिद्ध करने के लिए उद्धृत करते हैं लेकिन पता नहीं इन उदाहरणों की क्या उपयोगिता है? यदि सभी रसों के एक-एक उदाहरण के बिना सूर को महाकवि मानने में बाधा है तो हम क्यों उन्हें महाकवि मानने का पाखण्ड करें? लेकिन महाकवि होने के लिये यह उचित कसौटी नहीं है। सूर में अदम्य प्रतिभा है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है। जिस बात का वे वर्णन करते हैं वह अद्वितीय होता है। इन बातों के आधार पर हम सूर को महाकवि मानते हैं। सूर का भावपक्ष जितना सबल है कलापक्ष भी उतना ही पुष्ट है। अब यहाँ कलापक्ष पर कुछ विचार किया जाय।

कलापक्ष — कलापक्ष काव्य का एक प्रकार से भाषापक्ष है उसके अन्तर्गत निम्नांकित बातें आती हैं—

१—भाषाधिकार,
२—चित्रमयता,
३—अलंकार,
४—छन्द,
५—भाषा प्रवाह,
६—शब्द शक्तियाँ,
७—गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद),
८—मुहाविरे आदि।

यहाँ हम अलंकार, मुहाविरे आदि पर ही संक्षेप में विचार करेंगे क्योंकि सब तत्वों का सोदाहरण विवेचन करने से निबन्ध का कलेवर अनावश्यक रूप से बढ़ जायगा।

सूर काव्य में यों तो सभी अलंकारों का प्रयोग हुआ है पर अर्थालंकार ही सूर को अधिक प्रिय हैं। उनमें भी विशेष रूप से रूपक, उपमा तथा

उत्प्रेक्षा अलंकार सूर को विशेष रूप से प्रिय हैं।

उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकार—

देखियत चहुँदिसि ते घनघोरे।
मानों मत्त मदन के हथियनु बलकरि बन्धन तोरे॥
स्याम सुभग तन चुअत गण्डमद बरसत थोरे-थोरे।
रुकत न पौन महावत हू पै मुरत न अंकुस मोरे॥

उपमा—

ऊधौ अब यह समुझि भई।
नन्द नन्दन के अँग-अँग प्रति उपमा न्याय दई॥
अन्तर कुटिल भँवरि भरि भाँवरि मालति सुरँलई।
+ + +
आनन इन्द्रवरन सम्पुट तजि करखें ते न नई॥

रूपकातिशयोक्ति—

अद्‌भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है, तापर सिंह करत अनुराग॥

मुहाविरे—मुहाविरे किसी भी भाषा की जान होते हैं। अभिव्यंजना की जितनी शक्ति मुहाविरों में होती है उतनी शायद अलंकारों में भी नहीं। सूरकाव्य में ऐसे मुहाविरे आते हैं जो लोगों की जबान पर चढ़ गए हैं। कवि भाषा का निर्माता भी होता है और मुहाविरों का गढ़ना भाषा के ठोस निर्माण के अन्तर्गत ही आता है। सूर काव्य में आए कुछ मुहाविरे देखिए—

१—कत पट पर गोता मारत हौ निरे भूइ के खेत।
२—जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी फिरि जहाज पै आवै।
३—प्रीति कर दीनी गरे छुरी।
४—वह मथुरा काजरि की कोठरी जे आवहि ते कारे।
५—सूर कहौ सोभा क्यों पावै आँख आँधरी आँजै।
५—अब काहे को देत लौन हो विरहानल तन दाही।

इस प्रकार सूर हिन्दी के उन इने-गिने कवियों में हैं जिनके काव्य का भावपक्ष और कलापक्ष एक समान पुष्ट है। सूर से हिन्दी का मस्तक आज भी ऊँचा है।

हिन्दी का पद साहित्य और सूर

मनुष्य अपने उद्‌गारों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। फिर चाहे वह अपने उद्‌गार मूर्ति, चित्र, सगीत या कविता किसी रूप में भी अभिव्यक्त करे। अक्षरों का जब जन्म भी नहीं हुआ होगा उद्‌गारो का अभिव्यक्त करना उससे भी बहुत पुराना है। यही कारण है कि लोक-साहित्य लिखित साहित्य से अधिक प्राचीन है। गीत या पदो की परम्परा लोक साहित्य में तो बहुत प्राचीन है किंतु साहित्यिक गीतों या पदों की क्रमबद्ध परम्परा तो शायद गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव से ही प्रारम्भ हुई है। गीतों के लिए स्वानुभूति, वैयक्तिकता, कोमलकान्त पदावली तथा सगीतात्मकता की अत्यन्त आवश्यकता होती है। लोकगीतों में ये सभी विशेषताएं मिलती हैं। गीतों के माधुर्य और प्रभाव से आकृष्ट होकर कवियो ने साहित्य में भी गीतों का स्वागत किया। जयदेव ने सभवतः पहले-पहल गीत लिखने का प्रयास किया और इस प्रतिभाशाली कवि ने गीतों के माधुर्य को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। पाठक उनके गीतों का चाहे भावार्थ न समझे किन्तु गीतो की कोमलकान्त पदावली और मनमोहक लय पाठक या श्रोता को अभिभूत करने के लिये पर्याप्त है। जयदेव के गीतों में एक विचित्र गति है जो लय को सहारा देकर उसमें मादकता उत्पन्न करती है। हरि स्मरण और कला विलास दोनों दृष्टियों से ही जयदेव के पद पठनीय हैं—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः
यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
सरस कोमलकान्त पदावली
भज तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

यों तो पदों की चर्चा करते समय चण्डीदास को नहीं भुलाया जा सकता किन्तु वे बगाली कवि हैं इसलिए उनकी चर्चा यहाँ अप्रासगिक ही मानी जायगी। हिन्दी पद साहित्य को उत्कर्ष प्रदान करने वालों में पहला स्थान विद्यापति का है। विद्यापति अभिनव जयदेव या मैथिल कोकिल कहलाते हैं जो उचित ही है। भावों की तल्लीनता, भाषा की मधुरता और गतिपूर्ण लय के लिये तो विद्यापति सचमुच अद्वितीय हैं। किन्तु सूर जैसा चुभने वाला

व्यंग्य, भावातिरेक एवं आध्यात्मिकता की शीतलता इनमें नहीं है। विद्यापति में कृत्रिमता का सौन्दर्य है और सूरदास में स्वाभाविकता का। विद्यापति की भाषा, उसके अभिव्यक्ति का ढंग प्रयत्नज है किंतु सूर की कविता तो हृदय से सीधी निकली प्रतीत होती है। कृत्रिमता उसे छू तक नहीं गई और सचमुच यह अनायास लिखी गई है। सूर अन्धे थे। जो गा दिया कविता हो गई, मात्रा, गति, लय, शब्द आदि के संशोधन का न उनके पास समय था और न यह सब कुछ उनके लिये संभव ही था। विद्यापति के पद उनके आश्रयदाता की मॉंग की पूर्ति के लिए लिखे गये थे किन्तु सूर के पद तो उनके हृदय के ऐसे उद्‌गार हैं जिन्हें वे व्यक्त होने से रोक नहीं सके। उन्होंने जो कुछ लिखा है स्वान्तः सुखाय लिखा है। अनिच्छा पूर्वक किसी की मॉंग की पूर्ति स्वरूप लिखने की उन्हें आवश्यकता ही नहीं पड़ी। विद्यापति और सूरदास के दृष्टिकोण में भी अन्तर है। विद्यापति का दृष्टिकोण घोर भौतिक है, जो असामान्य रूप से भौतिक है, अस्वस्थ है किन्तु सूरदास का दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। इसलिए अश्लीलता से उनकी कविता बची रही है। विद्यापति के पदों में तो अश्लीलत्व इतना अधिक है कि कहीं-कहीं तो वह असामाजिक तक है। डाक्टर रामकुमार वर्मा विद्यापति के विषय में लिखते हैं—

"विद्यापति ने राधाकृष्ण का जो चित्र खींचा है उसमें वासना का रंग बहुत ही प्रखर है। आराध्यदेव के प्रति भक्त का जो पवित्र विचार होना चाहिए वह उसमें लेशमात्र भी नहीं है।

\+ \+ \+ \+

राधा का शनै शनै विकास, उसकी वयःसंधि, दूती की शिक्षा, कृष्ण से मिलन, मान विरह आदि उसी प्रकार लिखे गए हैं जिस प्रकार किसी साधारण स्त्री का भौतिक प्रेम विवरण। कृष्ण भी एक कामी नायक की भांति हमारे सामने आते हैं। कवि के इस वर्णन से हमें जरा भी ध्यान नहीं आता कि यही राधाकृष्ण हमारे आराध्य हैं। उनके प्रति भक्तिभाव की जरा भी सुगन्धि नहीं है।

\+ \+ \+ \+

विद्यापति के भक्त हृदय का रूप उनकी वासना मयी कल्पना के आवरण में छिप जाता है।

\+ + + +

इसका एक कारण है विद्यापति राजदरबार के बीच कविता पढ़ा करते थे। उन्हें राजसभा और अपनी कला का ही अधिक ध्यान था। उनका तो राजा शिवसिंह रूपनरायन लखिमादेई रमाने की ओर विशेष आकर्षण था। इसीलिए कदाचित उन्हें अपने सरक्षको के मनोविनोद का ही अधिक ध्यान था। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षादि अलकारों और भावविभाव अनुभावादि पर उन्होंने अपनी कविता की नींव खड़ी की। यही कारण है कि उन्होंने अपने कला नैपुण्य प्रदर्शन के लिये साहित्यशास्त्र का मथन तो कर डाला पर जीवन का रहस्य जानने के लिये मनुष्य समाज के अन्तर्रहस्यों की पर्यालोचन नहीं की।

\+ + + +

विद्यापति ने अन्तर्जगत का उतना हृदयग्राही वर्णन नहीं किया जितन वाह्य जगत का। उन्हें अन्तर्जगत की सूक्ष्म वृत्तियाँ बहुत कम सूझी हैं।

असल में विद्यापति और सूरदास का प्रमुख अन्तर यही है कि सूर हृदय वे गायक हैं और विद्यापति वासनात्मक प्रेम के। विद्यापति में मधुरता, तीव्रत है, मार्मिकता है लेकिन वह आत्मा तक नहीं पहुँच पाती। सूर के वाक्य तं हृदय से आते हैं और सीधे हृदय में पैठ जाते हैं। विद्यापति के पदों के एक दं उदाहरण लीजिए। राधा से एक सखी उसके मिलन के प्रति कृष्ण की उत्स कता एव व्यग्रता की चर्चा करती हुई कहती है :—

> नदक नदन कदम्बक तरु तर धिर धिर मुरलि बजाव।
> समय सकेत निकेतन बइसलि धिर धिर बोल पठाव॥
> तोरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
> जमुनक तिर उपवन उदवेगल खन खन ततहिं निहारि।
> गोरस बेचए आउत जाइत जनि-जनि पुछ वनमारि॥

इसी प्रकार एक विरहणी अपने प्रिय का सन्देश देने के लिये कौवे देखिए क्या लालच देती है :—

> काक भाख निज भाखह रे पहु आउत मोरा।
> खीर खाँड़ भोजन देउ रे भरि कनक कटोरा॥

विद्यापति को जितनी सफलता सयोग शृङ्गार में मिली है उतनी वियो

शृंगार में नहीं क्योंकि उनकी अनुभूति की तीव्रता को संयोग शृंगार के पदों में ही उचित अभिव्यक्ति मिली है।

हिन्दी पद साहित्य की चर्चा करते समय महात्मा कबीर का विस्मरण नहीं किया जा सकता। यों तो कबीर की साखी ही अधिक प्रसिद्ध हैं किन्तु उन्होंने साखियों में या तो समाज सुधार की बातें कहीं हैं या ज्ञान सम्बन्धी चर्चा की है। उनको पढ़कर पाठक यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि कबीर के एक कोमल हृदय भी था। ठीक वैसा ही जैसा जायसी या सूर का था। कबीर की साखियों से तो उनका एक अक्खड़ रूप ही पाठक के सामने आता है। कबीर का कवि तो उनके पदों में ही अभिव्यक्ति पा सका है। यदि भाषा पर कबीर का अधिकार सूर जैसा ही होता तो शायद कबीर का नाम आज तुलसी के बाद लिया जाता। आध्यात्मिक विरह की अनुभूति, उसकी तीव्रता, परमात्मा के साथ माधुर्य भाव की भक्ति की कोमल अभिव्यक्ति, सभी कुछ तो कबीर में है। कबीर के पद गेय भी उतने ही हैं जितने सूर या तुलसी के। परमात्मा से मिलन के क्षणों में जीवात्मा की व्यग्रता देखिये :—

पिया मिलन की आस रहौं कबलौं खरी।
ऊँचे नाहिं चढ़ि जाइ, मनै लज्जा भरी।
पाँव नहीं ठहराइ चढ़ूँ गिरि गिरि परूँ।
फिरि फिर चढ़ूँ सभारि चरन आगे धरूँ।
अंग अंग थहराइ तो बहुविधि डरि रहूँ।
करम कपट मग घेरि तो भ्रम में पड़ि रहूं।
बारी निपट अनारि ये तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुमार मिलन करा होइ है।

बिना प्रियतम परमात्मा के आत्मा विकल है, दिन को चैन न रात को। कितनी दयनीय स्थिति है-देखिए :—

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तलफ तलफ के भोर किया।
तन मन मोर रँहट अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया।

नैन चकित भए पथ न सूझै साईं बैद मेरी सुधि न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरीगीर दुख जोर किया।

हिन्दी के पद साहित्य मे मीरा का अपना विशिष्ट स्थान है। लोकप्रियता की दृष्टि से तो हिन्दी में शायद मीरा सूर और तुलसी से ही पीछे हों। मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है। मीरा ईश्वर (कृष्ण) को अपना पति मानती हैं इसलिये उनके विरह में जो तीव्र अभिव्यंजना, मार्मिकता, स्वानुभूति एव वैयक्तिकता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मीरा के पदों में गेयता, सगीतात्मकता एव साहित्यिक अभिव्यक्ति सभी का उचित समन्वय है। हिन्दी मे यदि किसी के पद सूर से टक्कर लेते हैं तो मीरा के ही। विरह-व्यथा की तीव्रता में तो वे सूर से भी आगे हैं। इस विषय में डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं :—

"मीरा बाई की रचनाओं में राग रागनियों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है। क्योंकि मीरा की भक्ति में कीर्त्तन का प्रधान स्थान है। 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर' की भक्ति मन्दिर के कीर्त्तन के रूप में विशेष प्रसिद्ध है। साथ ही मीरा की गीतिकाव्यमयी भावना के लिये रागों की उपर्युक्त सृष्टि परमावश्यक है। इतना होते हुए भी मीरा में कलात्मक अंग कम है। यद्यपि विरह का वर्णन है तथापि इष्टदेव से दूर होने के कारण हृदय की दशा का मार्मिक चित्रण है। मीरा स्वयं स्त्री थी अतः उनके विरह निवेदन में स्वाभाविकता है। सूर के समान कृत्रिमता या कल्पना नहीं। मीरा की स्वभावोक्ति चरम सीमा पर है।"

मीरा कृष्ण से होली खेलने के लिये व्याकुल है। देखिए उनके इस पद में कितनी तल्लीनता, कितनी स्वानुभूति, कितनी संगीतात्मकता और वैयक्तिकता है—

होली पिया बिन लागै खारी।
सुनो री सखी मेरी प्यारी।
सूनो गाँव देश सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी विरहिन पिय बिन डोलै तजदई पीव पियारी।
भई हूँ या दुख कारी।
देस विदेश संदेस न पहुँचै, होय अदेशा भारी।

गिठातों घिस गई रेखा आँगुरियाँ की सारी।
अजहूँ नहिं आए मुरारी।
बाजत झांझ मृदग-मुरलिया बाज रही इकतारी।
आई बंसत कंत घर नाहीं, तन में जुर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी।
अबतो मेहर करो मुझ ऊपर चितदे सुनो हमारी।
मीरा के प्रभु मिलज्यो माधो जनम-जनम की क्वारी।
लगी दरसन की तारी।

पद साहित्य की चर्चा करते समय तुलसी और सूर की एक साथ चर्चा अधिक सुविधा जनक है। पद साहित्य में गीतावली और विनय पत्रिका का जो स्थान है उससे प्रत्येक हिन्दी का विद्यार्थी परिचित है। तुलसी के पदों में संगीत की सभी राग-रागनियाँ समाविष्ट हैं। वैयक्तिकता, संगीतात्मक्ता, भाषा का अबाध प्रवाह तथा भावों की मार्मिकता की दृष्टि से सूर को छोड़कर तुलसी के सामने हिन्दी के अन्य कवि बौने जैसे लगते हैं किन्तु मधुर व्यंग्य तथा शृंगार की अद्वितीय मधुरता के कारण सूर इस क्षेत्र में अद्वितीय बन गए हैं। तुलसी की संस्कृत निष्ठता उनके पद माधुर्य को कम कर देती है। सूर की चलती बोलचाल की व्रजभाषा में जो मार्दव और लालित्य है वह तुलसी के पदों में भी नहीं है। यों सूर ने कुछ चौपाई लिखने का प्रयास भी किया है पर तुलसी की चौपाइयों से उनकी कोई तुलना नहीं। उसी प्रकार यद्यपि तुलसी ने पद लिखे हैं पर इस दिशा में सूर ही उनके आगे हैं। निश्चित रूप से सूर हिन्दी पद साहित्य के सम्राट हैं। संगीत और साहित्य सूर के पदों में प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हैं। सूर के पदों में भी मधुरता और काव्य गुणों की दृष्टि से उनके भ्रमरगीत प्रसंग के पद सर्वोत्कृष्ट हैं। इतना व्यंग्य, इतनी स्वानुभूति, इतनी संगीतात्मकता, इतनी कला, इतनी भावराशि उन पदों में एक ही स्थान पर एकत्र होगई हैं कि हिन्दी उन पदों को पाकर धन्य हो गई है। यों तो कहा जाता है कि सूर ने सवा लाख पद लिखे हैं किन्तु यदि उनके भ्रमरगीत प्रसंग के पदों को छोड़कर शेष पद न भी मिलते तो भी उनके आधार पर ही वे महाकवि होते।

सूर अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि तो हैं ही साथ ही वे पुष्टिमार्ग के जहाज के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। शुक्लजी ने ठीक ही लिखा है—"इन आठ वीणाओं में सबसे ऊँचा स्वर सूर की वीणा का ही था।"

सूर के पदों की मधुरता और मार्मिकता स्पष्ट करने के लिये कुछ पदों का उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा।

गोपियों की विकलता, सरलता, अबोधता और प्रेमातिशयता इस पद में कितने मार्मिक रूप में व्यक्त हुई है :—

हमकौं सपनेऊ में सोच।
जा दिन ते बिछुरे नदनंदन ता दिनते ये पोच।
मनु गुपाल आए मेरें घर, हसि कर भुजा गही।
कहा करौं बैरिन भई निदिया निमिष न और रही।
ज्यौं चकई प्रतिबिंब देखिकै आनन्दी पिय जानि।
सूर पवन मिस निठुर बिधाता, चपल कियो जल आनि।

वचन वक्रता और व्यंग्य का माधुर्य और चमत्कार देखना हो तो सूर का यह पद देखिए—

सुनियत मुरली देखि लजात।
दूरहि ते सिंहासन बैठे, सीस नाइ मुसकात।
सुरभी लिखी चित्र भीतिन पर तिनहिं देखि सकुचात।
हमरी चर्चा जो कोउ चालत, चालत ही चपि जात।
सूरदास प्रभु भलौ बिसारयौ, दूध दही क्यों खात।

आज तो हमारा हिन्दी साहित्य, जहाँ तक पदों का संबंध है, अत्यन्त सम्पन्न है। पन्त, महादेवी, निराला, प्रसाद आज के प्रसिद्ध कवि हैं। यों आज के कवि सरस और प्रतिभाशाली कवि हैं किन्तु उनकी तुलना सूर तुलसी और मीरा से करना एक धृष्टता से अधिक कुछ नहीं।

सूर हिन्दी साहित्य में शीर्षस्थान पर सुशोभित हैं और लगता है। उनकी स्थिति भविष्य में भी अपरिवर्तित ही रहेगी।

दिए। गोचारण के लिए जाने पर लगभग कोस भर हमारे पीछे दौड़कर जाते थे। यहाँ पर वसुदेव और देवकी हमें अपने से पैदा बताते हैं। हाय भाग्य (विधाता) ने हमें फिर से यशोदा की गोद नहीं खिलवाया। इस शहर का राज्य किस काम का है। (सूर कहते हैं कि कृष्ण ने कहा कि) तुम (उन्हें) व्रज के लोगों को समझा-बुझा के तसल्ली देना और कहना कि हम आज कल में आने को ही हैं।

विशेष—मानो ... सौंपि गए म वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है।

३ जब श्रीकृष्ण व्रज की चिन्ता में तल्लीन थे कि तभी उद्धव आगए। दोनों मित्र अभिन्न रूप थे। उन्होंने एक दूसरे को खूब गाढ़ालिंगन किया। कृष्ण ने उद्धव का अपने जैसा ही सुन्दर शरीर देखकर बड़ा ही पछतावा किया। उन्होंने सोचा कि इसकी भी वैसी ही (प्रेम मार्गीय) बुद्धि होती तो अच्छा था। लाओ क्यों न किसी बहाने (आने—अन्य विषय को लेकर) इसे व्रज म भेजा जावे। इससे प्रेम की चर्चा करो तो यह योग की बातें बघारता है (सूर कहते हैं कि कृष्ण ने सोचा) इसके हृदय में ज्ञान इतना पका है कि यह अवश्य युवतियों को ज्ञान सिखावेगा।

४ (अतएव) श्रीकृष्ण ने गोकुल के प्रेम का प्रसंग छेड़ा। उन्होंने कहा—हे उद्धव सुनो! मुझे सुखदायी व्रजवासी भूलते नहीं। मेरा मन यहाँ नहीं लगता, जी चाहता है अभी हाल चला जाऊँ। गोप और अच्छे अच्छे ग्वालों के साथ वन में गैया चराइ उसे छोड़कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। माखन की चोरी कहाँ? और यशोदा का प्रेम पूर्वक 'बेटा! खाओ' कहना कहाँ? सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के इन प्रेम-पगे वचनों को सुनकर भी उद्धव अपने नियम साधना में ही रत हैं। अर्थात् उद्धव ने कृष्ण के इस प्रकार प्रेम विभोर होने को तुच्छ समझा और नियम साधना जिनके आधार पर सम्पूर्ण सांसारिक राग मिथ्या भ्रान्ति ही है उसी को सर्वोपरि समझा। उन्होंने इस प्रेम विह्वलता में प्रेम पक्ष की प्रत्यक्ष ही पराजय देखी और इसीलिए नियम साधना को ही उपादेय समझा। वे कृष्ण की इस बचपन की सी बात पर मुस्काए।

५ श्रीकृष्ण ने उन्हें मुस्कराते हुए देखा। उन्होंने (श्रीकृष्ण ने) सोचा कि जो हम मन म सोचते थे वही बात हुई। परन्तु इस रहस्य को ~

न्तस् में छिपाकर ऊपर के मन से उन्होंने (पुनः) प्रेम-प्रसग छेड़ा और कहा ! उद्धव ! सुनो, मुझे ब्रज की सुध नहीं भूलती। रात को भी सोते सोते तथा गते और चलते-फिरते सभी अवस्थाओं में मेरा मन कहीं दूसरी जगह नहीं गता। (ब्रज के) नन्द, यशोदा तथा अन्य नर-नारियों में ही मेरे प्राण रखे हुए हैं। सूर कहते हैं कि कृष्ण ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव सुनो मैं तुमसे प्रेम पद्धति का उद्‌घाटन करता हूँ। मेरे चित्त से राधा का प्रेम कभी नहीं दूर होता। भावार्थ यह है कि प्रेम की रीति ऐसी अद्‌भुत है कि न जाने क्यों राधा का प्रेम मेरे चित्त में बसा रहता है।

६ श्रीकृष्ण ने कहा कि—मित्र! मेरी एक बात सुनो। उन लता बेलों के साथ गोपियों की सुध कर-करके पछतावा आता है। (यहाँ) परम सुन्दरी वृषभानु की पुत्री राधा कहाँ ! रासलीला की याद आते ही जी बड़ा व्याकुल होता है। सूर कहते हैं कि उद्धव ने कृष्ण की यह बात सुनकर कहा—यह सासारिक प्रेम अनित्य है। ये सब पदार्थ मिथ्या हैं। इसलिए कृष्ण मैं तुमसे सौ बात की एक बात बताता हूँ केवल एक (ब्रह्म) से सम्बन्ध सच्चा है। वही नित्य और ध्रुव सत्य है (कहा भी है—ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या)।

७ श्रीकृष्ण ने कहा—उद्धव ! तुम अपने मन मे यह निश्चय समझो कि मैं सद्‌भाव से (मनसावाचाकर्मणा) तुम्हें ब्रज भेज रहा हूँ। तुम शीघ्र ही जाओ (पलानो=भागो)। तुम जाति, कुल, मातापिता आदि उपाधियों से रहित पूर्ण, अखण्ड एव अनश्वर ब्रह्म के ज्ञाता हो। तुम अपना यह ज्ञान गोपियों को सिखा आओ क्योंकि वे बेचारी विरह-रूपी नदी में डूब रही हैं। (जब मैं पुरुष होकर प्रेम से इतना अधीर हूँ तो वे तो बेचारी स्त्रियाँ हैं। उनकी क्या दशा होगी इसका अनुमान लगाइए)। सूर कहते हैं कि—कृष्ण ने उद्धव से कहा कि तुम जल्दी ही उन्हें जाकर यह उपदेश दो कि बिना ब्रह्मज्ञान के मुक्ति नहीं होती। (कहा भी है—ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः)

विशेष—विरह-नदी में शुद्ध या निरङ्ग रूपक है।

८ श्रीकृष्ण ने कहा उद्धव ! तुम शीघ्र ही ब्रज को जाओ। हमारा स्मरण और सदेशा देकर मेरी प्रियाओं का सन्ताप दूर करो। काम की आग से उनका तूलमय (कपास सा) शरीर विरहावस्था में उखड़ी लम्बी २ साँसोंकी

वायु से भस्मसात् होता हुआ लोचनों पे आँसुओं से बचा होगा। आज
शरीर इस तरह कुछ-कुछ सचेतन होगा। किन्तु ऐसी अवस्था में बिना प्रबो
(समझाए बुझाये) स्त्रियाँ धीर कैसे घर सकेंगी। ऐ उद्धव ! मैं तुमसे अधि
बना बना के क्या कहूँ तुम स्वयं बड़े बुद्धिमान हो। जरा सोचो तो बिन
पानी मछलियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं।

विशेष—कामपावक — समीर मे साङ्गरूपक अलङ्कार हैं।

भसम—नीर —काव्यलिंग अलङ्कार है।

जल—मीन —अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

६ श्रीकृष्ण ने उद्धव को व्रज जाने के लिए प्रस्तुत जानकर उनसे कहा—
पथिक ! तुम हमारा सन्देशा इस प्रकार कह देना कि हम दोनों भाई आर
हैं। माँ बेचैन न हो। हमें इसका बहुत बुरा लगा कि जो उन्होंने अपने
हमारी धाय (दाई) कहला भेजा। कहना आपकी कीर्ति कहाँ तक मानूँ
आपने दूध पिलाकर बड़ा किया। नन्दबाबा के चरण पकड़ के निवेदन कर
कि मेरी धूमरी और धौरी दोनों गायें दुखी न होने पावें। सूर कहते हैं
श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि यह और कह देना कि यद्यपि मथुरा मे अप
सम्पत्ति है फिर भी हमें तुम्हारे बिना कुछ नहीं सुहाता। यह हृदय तो ब्र
वासी लोगों से भेंट कर ही सन्तुष्ट होगा।

१० श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा —(ईश्वर करे) हमारी यशोदा मा
अच्छी रहें। चार पाँच दिन में ही हम और भाई हलधर (बलराम) दोनों
रहे हैं। उनसे कहना जिस दिन से हम तुमसे अलग हुए हैं कभी किसी
'कन्हैया' कह कर मुझे नहीं पुकारा। न सबेरे कलेऊ किया और न शाम
गैया के थन से लगकर दूध पिया। (उनसे कहना) मेरी वंशी भी ज
समाल के रक्खें। कहीं वक्त बे वक्त राधा आके उसे या किसी और खिलौन
को लेके चलती न बने। सूर कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा कि ज
नन्द बाबा से यह कह देना कि तुमने बड़ा कठोर हृदय कर लिया। आप
श्याम को मथुरा पहुँचा कर फिर कभी खबर भी न ली।

११ उद्धव हौंस से फूले न समाए। सचाई सिर पर चढकर बोलती है। देख
आज मेरे योग के महत्त्व को श्रीकृष्ण ने हृदय से स्वीकार कर लिया है। क

के नेत्र गर्व से ऊपर को तन गए। कहने लगे तो आप मुझे योग सिखाने लिये स्त्रियों के पास भेज रहे हैं? भीतर ही भीतर वे अपनी और अपने द्धान्तों की प्रशंसा कर रहे थे कि सचमुच सासारिक भोग स्वप्न ही है। त में उन्होंने प्रभु श्रीकृष्ण की आज्ञा अवश्यकरणीय समझ कर शिरोधार्य । सूर कहते हैं कि उन्होंने सोचा कि जब मालिक ही भेज रहा है तो म र कुछ क्यों कहूँ?

विशेष—नयन अकास चढायो—(असबन्ध में सम्बन्ध दिखाने से) तेशयोक्ति अलकार है।

उद्धव प्रति कुब्जा के वाक्य

२ कुब्जा ने कहा देखो उद्धव तुम गोकुल जारहे हो जरा एक सन्देश मेरा सुनलो और बाद म यहाँ से जाकर हमारी बात भी तुम उनसे कह देना। कृष्ण अपने माँ बाप के प्रेम को पहिचान के मथुरा आए हैं। ये श्याम हारे प्रियतम नहीं हैं और न ये यशोदा के पुत्र हैं। जरा अपनी भलो कर ों पर भी अपने मन में विचार करो। वह बेचारा (श्याम) बालक कहाँ तुम सब उन्मत्त ग्वालिनियों ने अपने चगुल में फँसा लिया। यशोदा को देखो कि उसने (तुच्छ) मक्खन के लिए बड़े बड़े दुःख दिए और तुम्हीं ों ने मिलकर (उन्हें बँधवाने के लिए) रस्सी दी। जरा भी दया नहीं ई। और सबसे बढकर वृषभानु पुत्री राधा ने जो किया अर्थात् उसका तो ग चलाना भी बुरा है। यह सब तुम अपने मन में जानती ही हो। इसी ज्जा से मोहन ने ब्रज छोड़ दिया अब काहे को हाय हाय करती हो? सूर ते हैं कि कुब्जा की इन बातों को सुनकर श्याम नीचे को सिर गड़ाकर रह ए। कुछ भी कहते न बन पड़ा। इधर कुब्जा का प्रेम और उधर गोपियों । दोनों में से किसी को भी कुछ कहना उनके खेद का कारण होता अत मौन ही रहे।

उद्धव का ब्रज मे आना

गोपियाँ कहती हैं—अरे देखो! कोइ साँवला साँवला सा आरहा है। ही वस्त्र, वैसा ही रथ पर बैठना और वक्ष स्थल पर माला भी वैसी ही है

(जैसी कि हमारे श्याम की थी) फिर क्या था—जैसी थी वैसी ही सब घरेलू काम कार्जों को छोड़कर दौड़ पड़ी। वे उन्हें अगाभिराम (सर्वाङ्गसुन्दर) श्रीकृष्ण जानकर प्रेम विभोर हो गईं और उनके शरीर रोमांचित होगए। इतने में ही उद्धव आ पहुँचे। गोपियाँ ठगी सी स्तब्ध रह गईं और (सूर कहते हैं कि) उन्होंने कहा कि भला कुब्जा के प्रेम में बंधे हुए श्याम क्यों आने लगे?

विशेष—स्मरण अलंकार है—

रोम पुलक—'ठगी तिहि ठाम' में सात्विक भाव का अच्छा चित्रण है।

उद्धव का ब्रज में दिखाई पड़ना

१४ कोई गोपी अपनी सखी से कहती है देखो कोई उसी रहन सहन का है। मथुरा से इसी ओर आरहा है। जरा तुम तो अपनी आँखों से देखना। देखो माथे पर मुकुट, सुन्दर कुण्डल तथा सुन्दर पीताम्बर है। वह देखो इसी ओर (ब्रज की ओर) ही वह बाँह उठाकर सारथि से कुछ कह रहा है। ठीक से तो नहीं जानती पर कुछ कुछ पहचानती सी हूँ। ऐसा मालूम होता है कि इन्हें युगों (चार युग) पहले कभी देखा हो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ अपने प्रियतम से बिछुड़कर ऐसी दुखी थी जैसी पानी से बिछुड़ कर मछलियाँ आकुल होती हैं।

विशेष—धर्मलुप्तोपमालंकार।

१५ गोपियों ने नंद के दरवाजे पर रथ खड़ा हुआ देखा। वे आपस में कहने लगीं सखि! मालूम होता है कि अक्रूर फिर आगए। यदि यह सच है तबतो हमारे हृदय में बड़ा अंदेशा है। हमारी जान तो पहले ही से लेजा चुके अब ये हजरत किस लिए पधारे। दूसरी सखी जबाब देती है कि मेरा विचार है कि सभवतः ये अब हम पर कृपा करने के लिए आए हैं। इसी बीच में उद्धव दिखाई दिए। तब सखियों ने उन्हें श्रीकृष्ण का मित्र जाना। फिर तो सब सखियों ने बड़े सावधान मन से हाथ जोड़कर बड़ी लगन के साथ प्रणाम किया। वे कहने लगी जैसा सुना करते थे आप वैसे ही बड़े चतुर और सीधे सादे हैं। आपका दर्शन पाकर आज हम अपना जन्म सफल समझती हैं। सूर

कहते हैं कि उद्धव से मिलकर सखियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं कि जैसे मछलियां जल पाकर प्रसन्न होती हैं।

विशेष—ज्यों झख पायो पान्या–उपमालंकार

१६ एक सखी ने पूछा-कहिए आप कहाँ से पधारे हैं? ठीक तरह से जानती तो नहीं पर मेरा ख्याल है कि शायद आपको श्रीकृष्ण ने भेजा है। वैसा ही रूप रंग वैसे ही परिधान और वैसे ही (तुमने) शरीर पर भूषणों को सजाया है। महाराज जीवन सर्वस्व तो (आपके साथी) पहले ही लेजा चुके अब किस पर निगाह है जो आपको भेजा गया। गोपी ने भौंरे को संबोधन करके कहा कि हे मधुप! हमारे सबके एक ही तो मन है उसे लेकर आप तो वहाँ डट गए हो तो फिर उन्हीं मथुरा की मनोहर कामनियों के पास ही रहो जहां तुम्हें बड़ा अच्छा लगता है। भाव यह है कि हम जो तन मन आपको अर्पण करने को सदा आतुर रहती हैं वे तो आपको पसन्द ही नहीं हैं। आपको तो मथुरा की ठगगन करनेवाली ही कामिनियाँ भली लगती हैं। उन्हीं की चापलूसी करो जाकर। यहाँ आपका कौन है जो आप पधारे। यहाँ आने में कौनसी चतुरता है। महाराज! ब्रज पर यह धावा कैसे मारा। (सूर कहते हैं कि) उन्होंने कहा हम तो कालों को भली भांति जान गई हैं।

१७ (इस पद में भ्रमर गीत की सम्पूर्ण कथा संक्षेप में कह दी गई है).

प्रसंग—उद्धव का ब्रह्म परक ज्ञानोपदेश सुनते ही गोपियों की मण्डली में खलबली मच गई। उन्होंने कुछ का कुछ, कहना शुरू कर दिया""। एक अजीब हंगामा मच गया। इसी बीच एक सखी अन्य गोपियों को शान्ति से उपदेश सुनने को कहकर उद्धव को बनाने लगी। वह बोली-अरे! तुम उद्धव के उपदेश को सावधानी से क्यों नहीं सुनती? आपको हमारे सुन्दर कृष्ण ने जो बड़े विचारवान है बड़ी प्रतिष्ठा के साथ भेजा है। (भला जिन्हें कृष्ण ने भी सम्मान दिया वे ऐसे ही घोंघा बसन्त थोड़े ही हैं आखिर तो भले' ही आदमी होंगे)।

देखो री सखियो! जिधर नन्दसुत गये थे उसी ओर से ये कोई साहब आए हैं। इनकी वंशी की वही धुन है। ऐसा प्रतीत होता है मानो नंदलाल आए हों। फिर क्या था, गोपियाँ फूली न समाईं और दौड़कर आगन्तुक के

आसपास इकट्ठी हो गई। किन्तु देखा तो उद्धव जी महाराज थे। उन्हें लेकर राजा नन्द के यहाँ गई। वे हृदय में फूली नहीं समाती थी। उन्होंने उद्धव को अर्घ दिया और आरती तथा दूर्वादल मिश्रित दधि से तिलक किया। फिर स्वर्ण कलशों को भर लाईं और उन्हें उठाकर उद्धव की परिक्रमा की। अतिथि पूजन से निवृत्त होके गोप लोग आँगन में इकट्ठे हुये और उनके साथ ह उद्धव (यादव जात=यादव के पुत्र) बैठे। सामने पानी की सुराही रक्खी थी गोपियों ने उनसे कृष्ण की कुशल क्षेम पूछी और पूछा वसुदेव तो सकुशल हैं? फिर कहा—देवी जी कुब्जा महारानी भी सकुशल हैं। और अक्रूर तथ श्याम भी सकुशल हैं? पूछकर गोपिया अधीर हो गईं और उद्धव के चरण पकड़ के रह गईं। उद्धव व्रजवासियों के प्रेम को देखते ही प्रेम में तन्मय हो गए। मन ही मन सोचने लगे कि गोपाल की यह बात कुछ जची नहीं कि व्रज के इस प्रेम को भूलकर व्रजबालाओं को जोग सिखाने की सोच रहे हैं। वे प्रेम में इतने विह्वल हुए कि आखों में प्रेमाश्रु डबडबा आए चिट्ठी भी बाचते न बना। गोपियों के प्रेम को देखकर उनका ज्ञानाभिमान कूँच कर गया। तब धोखे से ही इधर-उधर की बातों से मन बहला के आँख के आँसू सुखाए। फिर उन्होंने सबको सबोधन करके अपने सब ज्ञान को सचय करके ज्ञान चर्चा छेड़ी। उन्होंने कहा—जिस कठोर व्रत को मुनि लोग अपनाते हैं और जो उनके लिये आसान नहीं हैं वे भी उसे कठिनता से सिद्ध कर पाते हैं उसी व्रत को गोपियो! अपनाओ और विषय वासना के प्रपंच को छोड़ दो। उद्धव की बात सुनकर वे सन्न रह गई उन्होने आँखें नीचे डाल ली। किस हौंस से आई थीं और क्या मिला? ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो अमृत छिड़ककर अब ज़हर से जला रहे हैं। किसी प्रकार उन्होंने कहा हम अबलाएँ हैं। हमें योग की युक्ति रीति से क्या सम्बन्ध? हम नन्दनन्दन के प्रेम प्रण को छोड़के दीवाल पै चित्र लिखकर क्यों पूजें। (योगी लोग मन को एकाग्र करने के लिए दीवाल आदि पर कुछ निशान बनाकर उसकी और टकटकी बाधकर देखा करते हैं। उसी के लिए यह व्यग्य है।) जो अज्ञात, अग्रहणीय तथा अपार आदि नामों वाला विदित है उसी निरजन का सब रजन करें यह कुछ बेतुकी सी बात जान पड़ती है। नेत्र तथा नाक के अग्र भाग पर ब्रह्म निवास

बताते हैं। [योगी लोग मन को एकाग्र करने के लिए नासिका के अग्र भाग पर टकटकी बाँधकर देखा करते हैं उसी के लिए यह व्यग्य है]। वह ब्रह्म स्वय प्रकाशमान ज्योति है, वह अनश्वर कभी नष्ट नहीं होता। ऐसा आप ज्ञानियों का मत है। पर ज़रा सोचिए तो मन घूमकर आपही ठिकाने लगता है। उसे कट सुनकर कोई थोड़े ही बाँध सकता है। अर्थात् आपकी साधना में मन का ही मुख्य स्थान है और वह किसी के कहने-सुनने से कहीं नहीं लगता। उसे जो रुचता है वहीं वह घूम-फिरकर टिकता है। ऐसी अवस्था में हम अपने मन के विराम स्थान [घर] को कैसे छोड़ दें ? अपना घर छूटने पर पराया घर तो पराया ही रहेगा। ये उद्धव तो बड़े मूर्ख मालूम होते हैं। हमें ये भूली बताते हैं। अरे ! हम भूली हैं कि वे [कहने वाले] लोग भूले हैं। गोपियों से भी अधिक अन्धे को ऐसी दो आँखें निरर्थक ही हैं। हम प्रेमान्ध हैं सही पर हमारी हिये की तो नहीं फूटी, परन्तु जो ज्ञानान्ध हैं उसे तो कुछ भी नहीं दिखता मालूम पड़ता। ये वेद और शास्त्रों की दुहाई देकर हमें अपना ज्ञान समझा रहे हैं। परन्तु जिस अनादि और अनन्त का ये उपदेश दे रहे हैं [इनसे पूछो] उसके माँ बाप का भी कुछ पता है ? ये कहते हैं कि उसके हाथ-पैर नहीं हैं। भला पूछो फिर वह ऊखली में कैसे बँधा। यदि उसके आँख, नाक और मुँह नहीं है तो दही चुराकर किसने खाया ? हमने गोद में किसे खिलाया और तुतली बातें किसने की ? उद्धव ! तुम्हारी बात तो उसके लिए ठीक जँचेगी जिसे आँखों से कुछ न दिखाई देता हो। अच्छा, हम तुमसे सत्य भाव से पूछती हैं बताओ, नियम साधना और प्रेम कथा दोनों में कौन सोना और कौन मिट्टी है ? बस तुम्हारे मुँह से न्याय हो जायगा। नियम-साधना तभी ठीक कही जा सकती है कि यदि साधक को अपना सिर देकर भी [कठिन से कठिन साधना करने पर भी] कुछ हाथ लग सके। किन्तु आपके निर्गुण की प्राप्ति तो सिर भेंट देने पर भी अलभ्य है। [उपनिषद् कहती है—यन्मनसानमनुते विज्ञातारमरे केनविजानीयात् आदि] फिर बताओ योग अच्छा है या प्रेम ? प्रेम से प्रेम होता है और प्रेम से ही भवसागर के पार पहुँचता है। प्रेम से ही ससार बँधा है और प्रेम ही से परमार्थ प्राप्त होता है।

प्रेम से निश्चय मधुर जीवन्मुक्ति मिलती है। परन्तु प्रेम का यह निश्चय तभी सत्य है जब नंदलाल की प्राप्ति हो।

गोपियों के प्रेम-वर्णन को सुनकर उद्धव अपनी नियम-साधना भूल गए और गोपाल के गुणों का कीर्त्तन करते हुए आनन्द विभोर होकर कुंजों में घूमने लगे। (पल में) कभी वे गोपियों के पैर पकड़ कर कहते कि तुम्हारा नियम (प्रेम रूप साधना) धन्य है। कभी प्रेम में मग्न होके दौड़ दौड़ कर पेड़ों का आलिंगन करते। वे (बार बार) यही कहते गोपी गोप तथा इस वन में चरने वाली गाएँ धन्य हैं। और यह (व्रज,) भूमि धन्य है जहाँ वन-वारी ने बिहार किया। मैं इन्हे उपदेश देने के लिए आया था पर मुझे स्वयं उपदेश मिला।

इसके पश्चात् उद्धव गोप वेश धारण करके यदुनाथ के पास गए। उन्हें यदुनाथ नाम भूल गया वे गोपाल प्रभु आदि (कृष्ण प्रेमियों के सम्बोधन) कहने लगे। उन्होंने कहा एक बार व्रज आके गोपियों को दर्शन दे आओ। गोकुल के सुख को छोड़ के तुम कहाँ आके रहे हो। भगवान् को दयालु जान कर (मेरे ज्ञान के औद्धत्य के लिए दयालु हरि मुझे अवश्य क्षमा करेंगे ऐसा समझ के) उद्धव ने उनके पैर पकड़ लिए। फिर कहा—व्रज के प्रेम को देखकर मुझे नियम साधना आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। (यह कहते-कहते) उनके नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ आए, कंठ गदगद् हो गया, कोई बात मुख से न निकल सकी।

सूर वर्णन करते हैं कि उद्धव प्रेमविभोर हो के श्याम के आगे पृथ्वी पर गिर पड़े। उनकी आँखें सजल थीं। श्रीकृष्ण ने उनके आँसुओं को अपने पीताम्बर से पोंछते हुए कहा—कहिए योग सिखा आए?

१८ उद्धव ने गोपियों से ब्रह्म के विषय में कहा और यह उपदेश दिया कि सत्य ब्रह्म को प्राप्त करो सांसारिक सम्बन्ध मिथ्या है। कृष्ण नन्दलाल नहीं वे वसुदेव के पुत्र हैं। उन्होंने कंस को मारकर मथुरा में शासन संभाला है। तुम्हारा प्रेम बेलुका सा है। यह सुनकर वे बोलीं—

उद्धव तुम हमसे किसकी बातें कर रहे हो। उद्धव! सुनो हम समझ नहीं पातीं इसलिए दुबारा पूछती हैं—राजा कौन हो गया? कंस को किसने मारा?

और वसुदेव का पुत्र कौन है ? (इनसे हमारा नाता नहीं है) हमारे यहाँ तो वे परम सुन्दर हैं जिनको हम मुंह देखे जीती हैं । वे प्रतिदिन अपने गोप मित्रों को साथ लेकर सहज ही गोचारण को जाते और दिन बिताकर सन्ध्या के समय जब आते तो (दर्शकों की) आँखें उन्हीं पर चिपक के रह जातीं । वह जो तुम हमें व्यापक पूर्ण और अविनाशी बताते हो जिसे वेद की विधि के अनुसार अपार कहते हो कौन है ? सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि तुम व्यर्थ ही बकवाद कर रहे हो । इस ब्रज में तो नन्दकुमार ही हैं और वे ही रहेंगे ।

१६ गोपियाँ उद्धव की बातें समझती तो हैं पर उन्हें अपने गोपीनाथ के द्वारा योग का सन्देश सुन कर कुछ बेतुका सा प्रतीत होता है—वे कहती हैं—

हे मधुप ! तुम किससे बढ़ बढ़ के बातें मार रहे हो । हम जरा समझ नहीं पा रही हैं इसलिए जरा एक बार फिर से कह सुनाओ । अक्रूर के साथ गाड़ी में बैठकर कौन गया ? धोबी की लूट कराके अपने शरीर पर राजसी वस्त्र किसने पहने ? धनुष किसने तोड़ा और कुवलयापीड हाथी एवं चाणूर पहलवान को किसने मारा ? उग्रसेन (कंस के पिता) तथा वसुदेव और देवकी की शृङ्खलाओं को बरबस किसने तोड़ा ? तुम किसकी प्रशंसा करते हो ? तुम्हें इस पुरवा मे किसने भेजा है ? मामा को मार कर किसने यश संचय किया और मथुरा में कौन राज्य कर रहा है ? हमें उनसे वास्ता नहीं है । यहाँ तो मयूर-पखों का मुकुट धारण किए, मुख से मुरली बजाता हुआ जसोदानन्दन ही सब कुछ है। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से पूछा बताओ आज भी वह मोर मुकुट मुरलीवाला नन्दनन्दन गोकुल में कहाँ नहीं विराजमान है ? अतएव हमें विरहिणी समझ कर जो आप निर्गुण खिलौना हमारे लिए लाए हैं वह हमारे काम का नहीं । हमारी आँखों के सन्मुख तो आज भी वही माधुरी-मय मूर्त्ति है ।

विशेष १–अक्रूर के साथ मथुरा पहुँचकर श्री कृष्ण ने कंस के धोबी से राजसी वस्त्र पहनाने को कहा । उसने वस्त्र देने में आनाकानी की और उन्हें खरीखोटी सुनाई । श्री कृष्ण ने उसकी उद्दण्डता पर उसके वस्त्र साथी गोपों को लुटाकर उस धोबी का धड़ से सिर जुदा कर

दिया था। तब एक जुलाहे ने उन्हें सुन्दर राजसी-वस्त्र धारण कराए थे और सुदामा नामक माली ने मालाएँ दी थीं। वे दोनों उनके कृपा पात्र बने। देखिए—भागवत पुराण दशमस्कन्ध—अध्याय ४१, श्लोक ३२–५०।

२—इसी समय श्रीकृष्ण ने कंस की धनुशाला में प्रहरियों से सुरक्षित इन्द्र धनुष को तोड़ा था और उन प्रबल प्रहरियों को मौत के घाट उतारा था। देखिए—भागवत दशम स्कन्ध, अध्याय ४२।

३—कुवलयापीड और चाणूर पहलवान को, जो कंस ने पाल रक्खे थे, उन्हें भी श्रीकृष्ण ने इसी समय मारा था। मुष्टिक पहलवान को बलराम ने मारा था। देखिए—भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ४२, ४३ और ४४।

२० गोपियां उद्धव से निवेदन करती हैं कि—हम तो नन्द के नगले की निवासी हैं। नाम से गोपालक जाति और कुल से भी गोप हैं, गोप होने के नाते गोपाल की ही उपासिका हैं। हमारे इष्टदेव गिरिवरधारी गोचारक तथा वृन्दावन से अनुराग रखने वाले हैं। हमारे राजा नन्द और रानी यशोदा हैं तथा जमुना नदी ही हमारे लिए सागर है। हमारे प्राण प्यारे सुन्दर सुख-राशि पुण्डरीकाक्ष हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि कहाँ तक कहा जाय आठों महा-सिद्धियाँ हमारी दासी हुईं। जब कमलनयन के प्रति प्रेम रखने से हमें सभी कुछ अनायास ही मिल गया फिर निर्गुण को अप-नाने से और क्या मिल सकेगा?

विशेष—अष्ट सिद्धियां—अणिमा, महिमा, चैव गरिमा, लघिमा तथा प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः। अमरकोशः

२१ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—गोकुल में सभी गोपाल के उपासक हैं। जो लोग योग के अंगों यम नियमों की साधना करते हैं वे सब शिवजी की नगरी काशी में रहते हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण ने हमें छोड़ दिया और हम अनाथ हो गईं तो भी हम उन्हीं के चरणों के रस में पगी हुई हैं। राहु से ग्रसित होने पर भी चन्द्रमा अपनी शीतलता नहीं छोड़ता। ऐसा हम से क्या अप-राध बन पड़ा है कि वे हम प्रेम भजन छोड़कर योग लिखके भेज रहे हैं ऐसी

उदासी भला क्यों करते हैं ? सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा भला तुम्हीं बताओ ऐसी कौन विरहिणी है जो गुणराशि श्रीकृष्ण को छोड़कर मुक्ति चाहती हो ! अर्थात् श्री कृष्ण को छोड़कर हममें से किसी को भी मुक्ति अभीष्ट नहीं है।

२२ विरह की सब व्यथाओं को सहन करते हुए भी गोपियाँ श्रीष्ण को ही चाहती हैं। कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य आसक्ति प्रकट करती हुई एव सगुण भक्ति की तुलना में निर्गुण को नगण्य व्यक्त करती हुई उद्धव से कहती हैं— उस चहेती कुब्जा का जीवन धन्य है क्योंकि वह दिन-रात प्यारे कृष्ण प्रियतम का दर्शन एव आलि गन करती है। तुम अनवरत ध्यान मनन करके देखलो सब ग्रन्थों का एकमात्र यही सार है कि केवल श्रीकृष्ण ही सुन्दर और यथार्थ हैं अन्य सब ससार तुच्छ एव आकर्षण रहित है। ऐ उद्धव ! सुनो, जिसकी साधना से स्त्री को अनेक (ज्यानि-स स्कृत) हानियाँ हैं उस योग को अपनाकर क्या करें यहाँ तो मट्ठा मठा पसन्द नहीं है सूर तो घी का खाने वाला है।

विशेष—अर्थालकार लोकोक्ति।

शब्दालंकार—पियारे पी, सुन्दरस्याम में छेकानुप्रास जोग-जीको में वृत्यनुप्रास है।

२३ गोपियाँ निर्गुण को सारहीन प्रतिपादन करती हुई उद्धव पर व्यग्य कर रही है—

आज तो हमारे नगले में बड़ा भारी व्यापारी आया है। उसने ज्ञान और योग के गुणों का बोझ ब्रज में लाकर उतारा है। हमें निरा अज्ञानी जानकर हमसे स्वर्ण लेकर अपना तुच्छ माल हमारे सिर मेड़ना चाहता है। इसे शुरू से ही खोटी कमाई करने की आदत है इसीलिये यह भारी मोट अपने सिर पर लादे घूम रहा है। परन्तु यहाँ इनकी ठगाई में कौन आवेगा ? हममें से इतनी अजान कौन है। भला अपने यहाँ के दूध को छोड़ कर खारी कुए का पानी कौन पीना चाहेगा। सूरदास कहते है कि गोपियों ने कहा कि हे उद्धव ! यहा से जल्दी ही सवेरे ही चलदो, देर मत लगाओ, किसी साहु को ले जाके दिखाओ। जरूर तुम्हें मु ह माँगी कीमत मिलेगी।

विशेष—अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। इससे अभिप्राय यह निकलता है कि तुम जाकर अपने माल को किसी पारखी को जाकर दिखाओ तो तुम्हें कुछ न मिलेगा। शायद कुछ दे लेके दण्ड से बरी हो पाओगे।

रूपक और अन्योक्ति का संकर है।

२४ उसी भाव को पुनः प्रकारान्तर से कहती हैं:—

उद्धव! तुम्हारी ठगई का सौदा इस ब्रज में नहीं बिकेगा, तुम्हारा यह सामान ऐसे ही लौट जायगा। जिस (आढ़तिया) से लाए हो उसके भी तो मन में नहीं जचेगा। भला सोचो तो अँगूर छोड़ के कड़ई निबौरी अपने मुँह कौन खायेगा। मूली के साग पात के बदले में तुम्हें मोती कौन पकड़ा देगा। सारॉश यह है अपने सगुण को निर्गुण के बदले कौन देने को तैयार होगा।

जोग—ठगौरी में रूपक है।

अर्थालंकार—तुल्यागिता और अन्योक्ति ।

२५ उसी भाव को प्रकारान्तर से कहती हैं—

पाँडे जी (उद्धव) यहा योग सिखाने चले हैं। ये अध्यात्मवादी पुराण को ऐसे लादे फिरते हैं जैसे व्यापारी माल की मोट लादते हैं। पर भाई हमारी एक मात्र शरण एव अवलम्ब पति पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण बने हुए हैं योग तो राडों (पतिविहीनाओं) को सीखना उचित होता है। हम तो सदा सुहागिन हैं। हे मधुप! एक म्यान मे दो तलवारें नहीं रहतीं, एक मन में दो की आराधना नहीं निभ सकती। किसी की स्पर्धा मात्र से अनहोनी बातों के लिये प्रस्तुत हो जाना निरी मूर्खता है। हे षट्पद! बताओ स्पर्धा से हाथियों के साथ गन्ने कैसे खाए जा सकते हैं। भला निर्गुण निरालम्ब का आलम्ब लेकर कैसे गुजर होगी, भला वायु भक्षण से किसी की भूख शान्त हुई है उसके लिए तो दूध घी और फुलके ही खाना होता है। ऐ उद्धव! तुम क्यों बकबक किए जा रहे हो? ऐसा मालूम होता है किसी की चोरी पकड़कर उ डाँड़ रहे हो। सो भाई किस चोर को तुमने डाँड़ा है जो ऐसी झल्लें पूर र हो। सूरदास कहते हैं कि धनियाँ, धान और कम्हड़े साथ साथ नहीं पैदा होते। भिन्न भिन्न समय मे उत्पन्न होते हैं। फिर भला प्रेम और जोग के एक साथ उपजाने का प्रयत्न कर रहे हो।

विशेष—ज्यों—टॉड़े—उपमलंकार ।

४–१, और ७ पंक्ति में लोकोक्ति

२६ सगुण भक्ति विशेषकर कृष्णोपासना योग से कहीं उत्कृष्ट है । इस भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं–ऐ मधुप जोग में क्या अच्छाई है । श्रीकृष्ण को प्रेम पद्धति को छोड़कर तुम हमें फीका निर्गुण सिखा रहे हो । तुम योगियों को कुछ (समाधि में) नहीं दीखता न कानों से सुनाई पड़ता है । योंही ज्योति ज्योति कहकर ध्यान किया करते हो । ऐसी अवस्था में दयालु कृपानिधि सुन्दर श्याम कैसे भुलाया जा सकता है । उनकी मधुर मुरली की तानें सुनकर उसी के विचित्रानन्द में जब आनन्द विभोर हो उठतीं तब वे श्याम अपनी भुजाओं को गले में डाल देते और गोपियों के आनन्द का ठिकाना न रहता । लोक मर्यादा और कुलीनता के भ्रांतिपूर्ण खयालों को उन स्वामी के साथ मिलकर और वन में खेल कर खतम कर दिया । अब जब सब कुछ हो चुका (आँखों का पानी ढल गया) तब आप जोग रूपी जहर की वेल खिलाने आये हैं ।

विशेष—रूपक अलङ्कार ।

२७ योग नीरस ही नहीं कठिन भी है । भला 'अक्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् ।' जो काम आराम से हो सकता है उसके लिये व्यर्थ श्रम करना मूर्खता है । इसी आशय को लेकर गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य कर रही हैं—

हमारे कौन योग व्रत की साधना करे । मृगछाला, भस्म, अधारी (साधुओं की टेकनी) और जटा के ठट कर्म हम भला क्या करें ! और वह भी किसके लिए ! एक अगम्य असार और अगाध जिसकी थाह ही नहीं मिलती ऐसी एक कपोलकल्पित वस्तु के लिए । सुन्दर गिरिधर के मनोहर दर्शन के लिए इन आडम्बरों को करने की आवश्यकता नहीं । यहाँ (प्रेम पथ में) साधना आसान और फल (दर्शन) महान और जोग में 'खोदा पहाड़ और निकला चूहा' वाली बात । इतने ठट कर्मों के बाद भी एक अगम्य वस्तु वह भी कपोलकल्पित । फिर भला कोई भी बुद्धिमान इस प्रेम पंथ को भुलाकर जोग के चक्कर में क्यों पड़ने लगा ! क्यों भला कोई आसन, प्राणायाम, भभूत, मृगछाला और समाधि के पचड़े में पड़ना चाहेगा ? सूर कहते हैं कि

गोपियों ने कहा—उद्धव ! क्या कोई माणिक्य (मोती) पत्थकर ‹ ‹ क स्वीकार करेगा ?

२८ प्रसग-यदि उद्धव कहें कि यह तो माना कि प्रेम पथ ठीक है। पर इस वियोग व्यथा का जो तीव्र दाह है वह तो असह्य है। इसलिए याग उपादेय क्योंकि उसमें विरह की आशका तो नहीं। यदि ऐसा न होता तो तुम्हें (गोपियाँ) आज विरहानल में यों न व्याकुल होतीं ? इसके उत्तर गोपियाँ कहती हैं-उद्धव ! हमारे तो दोनों हाथ लड्डू है। यदि विरह गा गाते २ जीवन में व्रजनाथ मिल गए तब तो ठीक है ही, नहीं तो ससार यश ही हाथ लग जायगा, नातरु जग जसगायो—का दो तरह से भाव स्प हो सकता है। एक तो यह कि हमें गोपियों को विरहावस्था में कृष्ण यशोगान का स्वर्ण अवसर हाथ लगा और दूसरा उनके विरह में जीवन अन्त कर देने से हम कीर्त्ति पात्र होंगी, हमें और क्या चाहिए हम तो उन प्रेम सम्बन्ध मान से ही कृतार्थ हैं। भला हम गोकुल की नीच जाति गोपियाँ कहाँ और लक्ष्मी-कान्त कृष्ण कहाँ जिनके साथ मिलकर हम ए पंक्ति में बैठीं यह हमारा अहोभाग्य है। शास्त्रीय मनन और मुनियों के ध्या से भी जो अगम्य हैं वे इस नगले के निवासी हुए। क्या इससे भी ऊ कोई वाञ्छनीय हो सकता है ? तुम मुक्ति-मुक्ति चिल्लाते फिरते हो, तुम बताओ यह मुक्ति किसकी दासी है ? हम प्रेम पथी लोग मालिक से मिलते और योगी तो उसकी दासी से मिलकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिए उद्धव ! हम तुम्हारे निहोरे करती हैं इस योग कथा को बार बार मत कहो [सूर कहते हैं] हमारी राय में तो जो श्याम का छोड़कर किसी अन्य भजन करता है उसकी माता [धूलसी] तुच्छ है।

२९ उद्धव ने सदेश में कहा था कि कृष्ण को तुम पँचभौतिक पुतला न मा कर परब्रह्म समझो। वही ब्रह्म वास्तविक कृष्ण हैं जो पूर्ण और सर्वव्याप है। इसके उत्तर में गोपियाँ कहतीं हैं—

तुमने जो उन्हें पूर्ण कहा वह हमारी दृष्टि में जँचता नहीं। 'तुम जो कह हो उसे हम कानों से सुनकर खूब सोचती हैं, पर फिर भी यह बात जँच नहीं इसीलिए ये [आँखें] विलख विलख कर मरती हैं। तुम्हारे इस कथ

र कि हरि घट-घट व्यापी हैं, सब जानते हैं हम अपनी बुद्धिभर समूल विचार रती हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि वे हरि तो प्रेम-सागर के रत्न नधि हैं। जब वह मणि मिल गई तो फिर अब धूल चाटने को क्यों कह रहे ो। ऐ चंचल मधुलोभी धूर्त मधुप ! बसकर, तू बना बनाकर निठुर सदेश ह रहा है। मुनियों की समाधि कहाँ और व्रज युवतियाँ कहाँ ! भला अब ी कहीं पीसकर चूर्ण किया जा सकता है ! सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव े कहा भला तू ही सोच देख—कितने ही नद नदी सागर और तालाब ठण्डे ौर स्वादिष्ट पानी से भरे हैं परन्तु चातक के मन में स्वातिजल की ही लगन हती है। उसके लिए और सब कुछ नीरस है।

विशेष—कहं मुनि ध्यान पूरी-निदर्शना
सरिता सागर सर में—दुष्क्रमत्वदोष है

२० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—[हे उद्धव ! तुम जो कहते हो कि हरि आजकल राज काज में व्यस्त हैं उन्हें प्रेम करने की फुर्सत नहीं है। यह बात नहीं]

कृष्ण हमसे कभी उदास नहीं। जहाँ प्यार कर खिलाया और अधरामृत पिलाया वह व्रज का निवास भला भूलने की चीज है ! परन्तु वीतराग से राग की कथा कहना निरर्थक है; तुम्हारे आगे रस कथा का वर्णन भैंस के आगे बीन बजाना है। बहरा भला स्वर माधुरी की क्या कदर करेगा, गूँगा वचन माधुरी के मर्म को क्या जान सकता है ! (बातों की झोंक में गोपी कभी सखी से और कभी उद्धव की ओर उन्मुख होकर कहती है।) ऐ सखि सुनो वे विविध आनन्द विलास के दिन फिर आवेंगे। ऊधो ! हमको प्रतीक्षा करते-करते अब तेरहवाँ महीना लग गया है।

अलंकार—निदर्शना।

२१ उद्धव के बार २ वही सन्देश दुहराने पर गोपियाँ व्यग्य करती हैं। वे कहती हैं—कहे जा तू अपनी तेरी कोई बुरा नहीं मानता। ऐ नीरस मधुप ! प्रेम की बात प्रेमी ही जानता है। (पर मानो उद्धव यह कहें कि हम भी तो कृष्ण

के पास सदा रहते हैं। उस प्रेम निधि के पास रहते हुए भी हमें तो प्रेम का ऐसा स्वरूप कभी नहीं दीखा। इसके उत्तर में गोपियाँ कहती हैं) मेंढक कमलों के पास जिन्दगी भर रहता है पर उससे प्रेम नहीं सीख पाता परन्तु भौंरा दूर रहकर भी उस पर ऐसा लट्टू होता है कि उसे पाने के लिए उड़ देता है किसी का भी कहना कान नहीं करता। प्रेम पथ का साधक कठिनाइयों से नहीं घबराता। अपनी तीव्रधारा से उन कठिनाइयों का समूलोच्छेद करके अपने प्रियतम से मिलकर ही दम लेता है। देखो नदी अपने किनारे के वृक्षों को उखाड़ती पछाड़ती सागर से मिलने को चल देती है। कायर थकते हैं और रणभूमि में शस्त्र देखते ही भाग खड़े होते हैं। सच्चा सूर वही है जो संघर्ष करके कठिनाइयों को पार करता है। अतएव प्रेमपथ की कठिनाइयों से संघर्ष करना ही प्रेमी के लिए परम वाञ्छनीय है।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार

३२ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं :—आप लोग घर बैठे ही बढ़बढ़ कर बातें करने वाले हैं। कभी सनेही के वियोग में नहीं पड़े। अरे पगले मधुप ! जब वियोग व्यथा सहोगे तब पता चलेगा। सिंह का यही स्वभाव है कि चाहे भूखा मर जाय पर घास नहीं खाता। (मिलाइए–केहरि तृण नहिं चरि सकै जो व्रत करै पचास) इसी प्रकार सच्चा प्रेमी वियोग से घबड़ाकर अन्य मार्ग नहीं अपनाता। जो कान मुरली के रसामृत के पले हैं उन्हें जोग का जहर न खिला। ऐ उद्धव ! तुम हमें क्या सिखाओगे ? हमारे लिए कृष्ण को छोड़ और कोई शरण नहीं। हमारे लिए यह भवनदी पाँक है फिर हम नाव (योग-साधन) लेकर क्या करेंगे ? ।

विशेष—तुल्ययोगिता

३३ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—उद्धव ! अब तो श्याम का मुख देखकर ही कुछ (जीवन पर) विश्वास जम सकेगा। तुम करोड़ों उपायों से जो हमें योग और समाधि की रीतियाँ सिखा रहे हो सो हमें इस ज्ञान में कुछ सयानप नहीं प्रतीत होता। फिर हम यह सब कैसे मानलें। बताओ हम तुम्हारे इस (नभ) आकाश को हृदय में कैसे समेट कर रखलें। (आकाश से दो भाव निकलते हैं-एक तो अगाध और महान होने से, वह छोटे से हृदयों में नहीं

समा सकता दूसरे वह शून्य है। उसे हम हृदय में रक्खें भी तो वह शून्य ही रहेगा। अर्थात् निर्माण की भावना महत्वपूर्ण होने से वह सामान्य हृदयों में नहीं समा सकती और आकार शून्य होने से वह हृदय की रागात्मिका वृत्ति के लिए कोई अवलम्ब नहीं दे सकती) हमारा मन एक है और वह मूर्ति भी एक ही है जिसने हृदय में रह कर भृंगकीट द्वारा उपात्त कीट की भांति उसे अपने ही आकार में बदल डाला है।

इस प्रकार से उद्धव से व्रज के चतुर लोग शपथ देकर पूछ रहे हैं कि सच बताओ तद्रूप हो जाने से हृदय में योग के लिए कहाँ स्थान है?

विशेष—रूपक और उपमालंकार।

२४ एक गोपी उद्धव से कहती है :—उद्धव! हमारा प्रेम आज का नहीं। हमने कृष्ण के साथ शैशव से प्रेम संचित किया है। वह भला कैसे छूट सकता है। मैं व्रजनाथ कृष्ण के चरितों की मोहकता कैसे वर्णन करूँ। अब स्मरण आने पर तन मन की सुधि खो जाती है। वह अटपटी चाल तथा सुन्दर चितवन और मुसकान सहित मन्द २ गाना, नटवर का वेष धारण करके अनेक क्रीड़ाएं करते हुए वन से घर को लौटना आदि सभी में एक अद्भुत आकर्षण है। मैं उनके चरण कमलों की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मुझे यह योग सन्देश जहर सा लगता है। मुझे तो वह मोहनी मूर्ति सोते जागते पल भर भी नहीं भूलती।

विशेष—उपमालंकार (धर्मलुप्त)

२५ गोपियां उद्धव से कहती हैं :—ऐ उद्धव! तुम्हारी इन बेतुकी बातों को सुनने के लिए कौन प्रस्तुत होगा? ऐ धूर्त मधुकर! हम अहीर अबलाएं हैं। जरा सोच हमें जोग कैसे सोहेगा? जिस प्रकार बूंची को बुन्दे, अन्धी को काजल और नकटी के लिए नथनी हो उसी प्रकार यह योग का उपदेश हमारे लिए है। भला, गंजी चांद पर पाटियां गूँथना कैसे सम्भव है? कोढ़ी के शरीर पर केशर का लेप करने से क्या लाभ? यदि कोई पति किसी बहिरी स्त्री से सलाह करने बैठे तो उसे क्या जबाब मिलने की आशा हो सकती है? ऐसी ही उद्धव! जो हमें जोग सिखाता है उसकी भी दशा मूर्खता पूर्ण है। हम आपके इस योग के पात्र नहीं। हाँ इतनी अशिष्ट भी नहीं कि आपके इस

कृपा पूर्ण उपहार को ठुकरा कर आपको अपमानित करें। इसलिए जो आप कृपा करके हमारे लिए लाए हैं वह हमारे लिए शिरोधार्य है। परन्तु जहर से भरे नारियल के समान आपका लाया हुआ यह योग हमारे हाथों से वंदनीय है। नारियल होने से वन्दनीय है पर उसमें जहर होने से उपभोग योग्य नहीं। इसी प्रकार योग सन्देश प्रियतम का उपहार है इसलिए हमारे लिए वन्दनीय है, उपभोग्य नहीं। हम इसे नमस्कार करती हैं।

विशेष—पूचिति पावै—वाचक लुप्ता मालोपमालकार तथा अन्तिम पंक्ति में उपमालकार।

३६ कृष्ण की निठुरता पर व्यंग्य करती हुई एक गोपी उद्धव से कहती है — कुब्जा ने तो भी कुछ अच्छा ही किया। उसने उन्हें मोल लिया यह समाचार सुन सुनकर मेरा हृदय कुछ कुछ ठण्डा हो जाता है। उन्होंने जिसका भी गुण गति नाम और रूप अर्थात् सर्वस्व हर लिया फिर उसे कभी नहीं लौटाया। ऐसे गुरुघटाल ने भी अपने मन को हरता हुआ न ताड़ पाया यह बात सुनकर सुनने वाले हँसी से बेकल हैं। देखो तो भला उस कुब्जा ने उन व्रजपति को थोड़ा सा चन्दन लगाकर अपने वश में कर लिया। इस प्रकार सभी नागरी स्त्रियों की ठगाई का बदला उस दासी ने ले लिया।

३७ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं— श्रीकृष्ण कैसे अन्तर्यामी हैं जब कि वह इस समय आकर नहीं मिलते और एक लम्बी अवधि बता रहे हैं। वे स्वयं अपनी इच्छा से ही नीरस और निष्काम हो वहाँ जा बैठे हैं। गरुड़ वाहन कृष्ण दूसरों की व्यथा क्या समझें? जिस प्रकार खटाई से कलई छूट जाती है उसी प्रकार उनका प्रेम भी (इस प्रवास से) खुल गया। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि हम तो इस कुढ़न से और भी मरी जा रही हैं कि वे हमारे प्रेम से साफ इनकार कर रहे हैं।

विशेष—उपमा अलकार।

३८ गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य कर रहीं हैं—प्यारे उद्धव! बुरा न मानना। यह मथुरा, मालूम पड़ता है, कि काजल की कोठरी है। वहाँ से जो भी आते हैं काले हैं। देखो, तुम काले, अक्रूर काले और भ्रमर भी काले हैं। उनके साथ में हमारे श्रीकृष्ण और भी सुहावने लगते हैं। मानो सब के सब नील प:

मटके से निकालकर यमुना के जल में धोए गए हैं। इसीलिए यमुना भी श्याम हो गई हैं। भाई कालों के सब गुण अनोखे ही होते हैं।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षालकार और तद्गुण अलकार है।

३६ यह निर्गुण का उपदेश हमारे कल्याण के लिए नहीं है। वास्तव में आप लोग यह उपदेश देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। इसी आशा को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

सभी अपने-अपने स्वार्थ के हैं। रस के लालची मधुप चुप रहो। हम तुम्हें भी जानती हैं और उन्हें भी। और जो कुछ सन्देश कहने के लिए भेजा हो वह भी क्यों नहीं कह डालते? युवतियों के लिए योग लिये फिरते हो। दोनों ही बड़े चलते हैं। यदि योग ही परमार्थतः सत्य है तब क्यों रास रचा था? ज्ञान तो तब भी था ही। अब तो हमारे दिल में भी यह ठन गई है कि अब जो कुछ होना हो सो हो [पर हम अपने व्रत पर अटल हैं]। अब तो सब आशा और भरोसा मिट गए और हृदय हताश सा हो गया। परन्तु कोई बात नहीं। श्रीकृष्ण ही प्रभु हैं इसलिए हम चित्त से निश्चिन्त रहेंगी।

४० गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—उद्धव! तुमने यहाँ आकर योग का सदेश दिया। [इसे मानकर तुम्हारा मन रखना हमारा कर्तव्य है] पर क्या करें नन्दनन्दन श्रीकृष्ण से जो लगन लगी है वह तो टूटती ही नहीं। महान सुख की खान होते हुए भी हमारे लिए यह योग युक्ति किस काम की है। हम लोग तो यहाँ श्यामसुन्दर के स्नेह में पग रहे हैं। उन्हींसे मिलन मे मन मानता है। योग में और भी श्रेष्ठ गति हो जाने पर भी हमें यह मिलन सुख कहाँ रक्खा है? लोहा पारस के सयोग से शुद्ध सोलह आने सुवर्ण तो हो जाता है परन्तु उसकी वह उमग भरी सहृदयता कहाँ जिसके कारण वह चुम्बक से जा लिपटता है। इसी प्रकार योग सब कुछ होते हुए भी हमारी यह 'सनेह लपटानि' कहाँ मिलेगी। यह निर्गुण, निराकार और निरीह ऐसी अचिन्तनीय वस्तु है कि शास्त्रों के ज्ञान से भी अतीत है। उसका ज्ञान विशेषकर अब— जब कि हम कृष्ण में इतनी आसक्त हैं—कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

विशेष—दृष्टान्त।

४१ गोपियाँ कहती हैं – हे उद्धव! हम तो कृष्ण के साथ रँगरेलियों की

भूखी हैं। विरह-व्यथा से पीड़ित हम बिरहिणी तुम्हारे निर्गुण की चर्चा का अभिनन्दन कैसे कर सकती हैं? हम तुमसे क्या कहें जब कि तुम्हें इतना भी नहीं मालूम कि योग चर्चा का पात्र कौन है। हम नम्र निवेदन करती हैं–जरा यह तो बताओ कि उस नगर में क्या सब तुम्हीं से पगले रहते हैं? काजल, भूषण और सुन्दर वस्त्र ये चीजें जरा स्वय ले लो तब तुम अपने योग के साधन दण्ड, कमण्डल, भभूत और अधारी युवतियों को देना। जैसे योगियों के लिए ये चीजें अनुपयुक्त हैं इसी प्रकार प्रेम मार्गियों के लिए तुम्हारे साधन अनुपयुक्त हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियों की इस अटल धारणा को देखकर उद्धव इस निश्चय पर पहुँचे कि कृपालु कृष्ण ने मुझे यहाँ अवश्य ही प्रेम का पाठ पढने के लिए भेजा है।

४२ गोपियाँ कहती हैं—उद्धव! हमारी आँखें तो हरि-दर्शन की भूखी हैं। रूप के प्रेम में अनुरक्त ये आँखें इन रूखी बातों को सुनकर कैसे मान सकती हैं? सच पूछो तो हमारी ये आँखें इस विरह में उनकी बाट जोहती हुईं अवधि के दिनों को गिन-गिनकर दिन काटते हुए इतनी सन्तप्त नहीं हुई थीं। अब तो इन योग की बातों को सुनकर बहुत ही व्याकुल और दुखी हैं। उद्धव हम चाहती हैं कि दूध दुहकर दोने में पीते हुए कन्हैया का मुँह एक बार दिखादो। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव? तुम्हारा हमें योग का उपदेश देना ऐसा (मूर्खतापूर्ण) हास्यास्पद है जैसा कि सूखी नदियों के पुलिन पर नाव चलाने का आयोजन हो।

४३ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—उद्धव! श्रीकृष्ण से कह देना कि आपके सदेश के उत्तर में उन्होंने (गोपियों ने) कुशल क्षेम पूछी है और यह कहला भेजा है कि जिसको बिलकुल ज्ञान नहीं है वही तुम्हारी कही बात (योग साधन की) मान सकता है। तुमसे भलाई की क्या आशा की जा सकती है जब कि तुम नाम (कृष्ण) और रूप से सर्वथा काले हो और सर्वाङ्ग काले ही सब तुम्हारे सखा हैं। यदि काले अच्छे होते तो भला वसुदेव तुम्हारे बदले लड़की क्यों ले जाना स्वीकार करते। हमारे लिए जोग और कुब्जा के लिए भोग रचित है यह बात किसके गले उतर सकती है। (यदि ब्रह्मा उसे भोग योग्य समझता तो उसे कुब्जा न बनाकर सुन्दरी बनाता।) सूर कहते हैं कि

गोपियों ने कहा—कि हमारी क्या बात है जिन नन्द और यशोदा ने उन्हें विश्वास पूर्वक सेया पाला वे ही स्वयं पछता रहे हैं। (ईश्वर न करे कोई काले के पाले पड़े)।

४४ उद्धव के वेतुके उपदेश पर गोपियाँ व्यंग्य कर रही हैं। वे कहती हैं :—वाहरे उद्धव ! तुम्हारी कहाँ तक बड़ाई की जाय। ब्रज में आकर उद्धव ने तो एक नई अनरीति चलाई है। उन्होंने बिना पानी के तरंग, बिना भीत के चित्र और बिना चित्त के ही चतुरता का उपदेश दिया है। जिसके रूप रेखा, शरीर और मुख कुछ नहीं है हाय उस निर्गुण से लगातार प्रेम कैसे निभ सकता है ? चित्त में तो माधुर्यमयी मूर्त्ति चुभ रही है जो हमारे रोम रोम से उलझ रही है। हम तो उन पर कुर्बान हैं जिन्हें श्याम ही सदा भाते हैं।

विशेष—अतिहि—अगोचर, वृत्यानुप्रास अलङ्कार।

४५ योग सन्देश से टपकने वाली गोपियों के प्रति कृष्ण की उदासीनता पर गोपियाँ व्यंग्य कर रही हैं:—यदि हमसे अनासक्ति ही अभीष्ट है तो उनसे कह देना कि गोपीनाथ नाम क्यों रक्खे हुए हैं ! ऐ उद्धव ! यदि वे हमारे कहाते हैं तो भला गोकुल क्यों नहीं आते ! हमसे कभी यों ही जान पहचान सी हो गई थी जो वास्तविक प्रेम नहीं था फिर भी हमें कलंक लगा रहे हैं। मामूली जान पहिचान में भी अपना नाम गोपीनाथ रखकर हमें चिढ़ाना ही है और जो सुनेंगे वे समझेंगे कि हमारा अवश्य ही उनसे पति-पत्नी का सम्बन्ध रहा है। इस प्रकार हमें कलंक लगाते हैं। यदि उनका कुबड़ी पर ही अनुराग है तो वे अपना नाम कुब्जानाथ क्यों नहीं रखवाते। कृष्ण को प्रेम में कम से कम इतनी ईमानदारी तो बरतनी ही चाहिये। हमारे नाम की आड़ में कुब्जा से यह व्यवहार करके वे सचमुच टट्टी की आड़ में शिकार खेलने का प्रयास कर रहे हैं। जिस प्रकार हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते हैं ठीक ऐसे ही कृष्ण कहने सुनने को तो हमें रखते हैं पर रमते कहीं और ही हैं।

विशेष—दृष्टान्त अलंकार।

४६ गोपियाँ कृष्ण के इस प्रकार भुल देने पर व्यंग्य कर रही हैं—अरे राजा साहब ! अब भला काहे को हमारी याद करोगे ? स्वार्थ के लिए

थोड़े दिन हमसे प्रेम कर दिखाया ! क्यों न कहो अपना ही मतलब तो गाठने में लगे रहते हो। हमें यह बात उस समय कहाँ मालूम थी जब हम सब अचेत होकर तुम्हारी मुरली ध्वनि से वचित हो गई थीं। यह तो अब मालूम पड़ा कि ये सब आपके कपट पूर्ण व्यवहार थे। पर हम क्या करें ? जिस प्रकार समुद्र का पक्षी इधर उधर भटक कर जहाज की ही शरण पकड़ता है उसी प्रकार इधर उधर से भटक कर हमारा भी मन श्याम की शरण जाता है। परन्तु प्रेम का सम्बन्ध तो उसी दिन से टूट गया जिस दिन वे अक्रूर के साथ भागे थे। वह प्रेम तोड़कर भी आज गोपीनाथ नाम रखकर न जाने श्याम हमें क्यों लज्जित कर रहे हैं ?

विशेष—उपमालकार

४७ उद्धव द्वारा लाए हुए संदेश पत्र पर व्यग्य करती हुई गोपियाँ कहती हैं:- अरे भाई देखो तो इस पत्र पर तो श्रीकृष्ण की मुहर लगी है। (सचमुच यह उद्धव की मन गढन्त नहीं है) इसे उद्धव अपने सिर पर बाधे घूम रहे हैं। हमें तो इसे देखते ही बुखार चढ रहा है। आज जिसकी घर घर स्थापना की जा रही है वह नन्दनन्दन की बड़ी अनोखी ही रीति है। अब कृष्ण के यहाँ कुब्जा की हुकूमत है इसलिए यह घमण्ड दिखाई पड़ रहा है। उसी के शासन से ये उद्धव हमसे योग की आराधना तथा अज्ञात का जाप करने को कहने आये हैं। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा 'भला इस सन्देश को सुन किस सती को पाप नहीं लगेगा। सच्चे प्रेमी के लिए अन्य से प्रेम करना तो दूर रहा उसका सुनना भी पाप है।

४८ उद्धव के बार २ समझाने पर गोपिया कहती हैं :—उद्धव ! आप बार-बार हमें क्या सिखा रहे हैं। हमारी विरह व्यथा से सहानुभूतिवश सम्भवतः आप यह उपदेश दे रहे हैं। पर आपको मालूम होना चाहिए कि हम नित्य प्रति प्रातःकाल उठकर उन्हें घर घर माखन खाते हुए देखती हैं। तुम जिस अज्ञेय और अचिन्त्य की बात हम से करते हो, जिसे तुम सतत सनिहित समझते हो वह तो हमसे बहुत दूर है। हमारे प्राणों की सजीवन यशोदानन्दन वस्तुतः हमारे सतत समीप हैं। हमें आज भी ग्वालबालो के साथ दधि चुराते और उन्हें खवाते डोलते दिखाई देते हैं और हमें देखकर या आहट सुनकर ही

के चौंककर आज सिर झुकाए देख पड़ते हैं। अब बताइए! अब तो हमारे प्रेम में वियोग का भय नहीं! अब क्यों चुप्पी साधली! बोलते क्यों नहीं?

४६ गोपियाँ उद्धव से निर्गुण से सगुण की श्रेष्ठता अभिव्यक्त करती हुई कह रही हैं। हाय रे भैया! हम अपने सगुण गोपाल को उद्धव की इन चिकनी चुपड़ी बातों के बदले कैसे दे दें। हालांकि ये धर्माधर्म का विवेक बता रहे हैं और निर्गुणोपासना के फलस्वरूप सम्पूर्ण सुख और मुक्ति की प्राप्ति बताते हैं तथापि हमारी समझ में नहीं आता। जरा अपने चित्त में विचारो कि मनमोदक खाकर किसकी भूख शान्त हुई है। इसलिए भाई केवल तुम्हें सन्तोष देने के लिए अपने श्याम को छोड़कर तुम्हारी अटपटी बातों के बवंडर में से सार ढूँढने का प्रयत्न क्यों करें। (भुसी फटके-कणों की कम संभावना वाली भुसी को पछोर कर कुछ कण हाथ भी लग जावें तो इससे क्या होता है? अर्थात् तुम्हारा निर्गुण भूसी निस्तत्व है। यदि बड़े प्रयत्नों के बाद उसमें कुछ थोड़ा बहुत सार हो भी तो किस काम का है।

विशेष— लोकोक्ति

५० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं :—ऐ उद्धव! हमसे कृष्ण की चर्चा करो। यह अपनी ज्ञानचर्चा मथुरा ही लेजा कर गाना। वहाँ नागरी स्त्रियाँ हैं वे इसकी कीमत ठीक जाच सकेंगी। अपने इस उपदेश को, तुम्हारे पैर छूती हैं, उन्हें ही जाकर सुनाओ और इन मीठी बातों से उन्हें ही रिझाओ। कृष्ण के प्यारे मित्र उद्धव! यदि तुम्हारे हृदय में सचमुच ही सद्-भावना है तो इन दुखी नेत्रों को श्रीकृष्ण के मुख का दर्शन एक बार पुनः कराओ। ऐ मधुप! कोई कितना ही प्रयत्न करले पर क्या विरहिणियों को और कोई चर्चा सुहाती है? (विरहिणी तो अपने प्रेमी की चर्चा सुनना चाहती हैं) सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि मछली को जीने के लिये पानी को छोड़कर और कोई उपाय नहीं है।

५१ गोपियाँ सगुणोपासना के आनन्द का दिग्दर्शन कराती हुई श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी के रस की अनिर्वचनीयता का वर्णन कर रही हैं—

हे मधुप! हरि की रूप माधुरी के रस को किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है? मेरा शरीर अनेक रहस्यों से भरपूर है। जिनमें से एक रहस्य यह है

कि (रसनेन्द्रिय), वाणी से नयनों की दशा नहीं जान सक्ती । जिन्हें दर्शनानु भूति हैं वे वाणी से विहीन हैं । जिन्हें वाणी मिली है वह दर्शन से विहीन (*गिरा अनयन नयन बिनु बानी—तुलसी*) वाणी न होने से ये आँखें सगुणानन्द के महत्व को स्मरण कर करके प्रेम जल की उमगों से छल छलाई रहती हैं । मन में यही पछतावा रहता है कि यह अनिर्वचनीय आनन्द अब कहाँ। भाग्य पर किसका जोर चलता है । सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि अपने अङ्गों की यह दशा उलटे चलनेवाले या इस षट्पद भ्रमर को कौन समझावे। सगुण की रूप माधुरी से इस प्रकार से भूमा की अनायास ही प्राप्ति निर्गुण वादियों की कल्पना से इतनी दूर है कि वह उनकी समझ में नहीं आसकती। इधर वह हमारी वाणी से भी अवर्णनीय है । क्यों न हो उपनिषद् भी यही कहती हैं—'न शक्यते वर्णयितुं गिरा सदा स्वय सदन्तः करणेन गृह्यते। तात्पर्य यह है कि निर्गुणोपासना में उपासक की चित्तवृत्ति जिस दशा में पहुँचती है उसी में सगुणोपासक की भी । दोनों के लिए ही यह आनन्द 'गूंगे का गुड़ है' अन्तर केवल इतना ही है कि निर्गुणोपासना में वह श्रम साध्य है और सगुण में वह अनायास साध्य, फिर सगुणोपासक अपने इष्ट सगुण को छोड़कर निर्गुण को किसलिए अपनावे । (इसीलिए गोपियाँ अपनी सगुणोपासना में अचल हैं । यही भाव व्यक्त करती हुई वे आगे कहती हैं)

५२ गोपियाँ सगुण में अपनी दृढ़ता वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं:- उद्धव जिसप्रकार हारिल पक्षी का व्रत है कि वह जमीन पर पैर नहीं रखता । पेड़ लता के आधार के अभाव में वह अपने चंगुल में दबी हुई लकड़ी के आधार पर ही अपने अटल व्रत को निभाता है और जीते जी वह लकड़ी को छोड़ता नहीं । ठीक इसी प्रकार हमने भी हरि को पकड़ रक्खा है, उन्हें हम जीते जी नहीं छोड़ सकतीं । मनसा वाचा कर्मणा हमने हृदय में हरि को ही दृढ़ता से जमा रक्खा है । सोते जागते, स्वप्न और प्रत्यक्ष में सदा कृष्ण के ही दर्शन और उन्हीं की पुकार रहती है । मधुप ! तुम्हारा योग सुनने में कडुई ककड़ीसा प्रतीत होता है । जो हमने न कभी देखी न सुनी उसी व्याधि को आप हमारे लिये ले आए । सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा यह योग तो उनके लिए उपयुक्त है जिनके मन चचल हो इधर उधर भटकते रहते हैं । योग नाम ही

चित्त वृत्ति निरोध का है और निरोध का उपदेश भटकने वाले श्रावारा के लिए उपयुक्त है। जिनकी चित्तवृत्ति पहले से ही निरुद्ध है उसके लिए योग व्यर्थ है।

(देखिए, योगश्चित्त वृत्ति निरोधः । पातन्जल योग दर्शन)

विशेष—इस पद में उपमालङ्कार है।

५३ अपनी मनोदशा सम्यक्तया वर्णन कर देने के बाद भी जब योग पर बल दिया गया तो गोपियाँ झल्ला उठीं। वे उद्धव से कहने लगीं—

आप बारम्बार हमें मौन की शिक्षा क्यों दे रहे हैं। आपकी शिक्षा के ये असहनीय वचन हमारे लिए इस प्रकार व्यथादायी हैं जिस प्रकार जले पर नमक व्यथादायी होता है। सिंगी फूँकना, भस्म रमाना, मृगछाला और मुद्राओं का परिधान तथा प्राणायाम का साधन तो योगियों के लिए उचित है। वे ज्ञानी और तपस्वी हैं, उन्हें यम नियम पालन सब सोहता है। मन की शुद्धि और एकाग्रता तथा उनकी विरक्ति के लिये ये आवश्यक साधन हैं परंतु मूर्ख मधुकर ! हम तो गँवार (अहीर) अबलाएँ हैं। हमें ये साधन कैसे फब सकते हैं ? हाँ जिस उद्देश्य से ज्ञानी इन्हें अपनाते हैं वह है वैराग्य, सुख दुःख में सम भावना। वह हमें वैसे ही प्राप्त है। हम में घर और वन का भेद नहीं रहा। आपको मालूम है कि हमारे लिए 'सबै भूमि गोपाल की' है। फिर इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन कठिन साधनों को अपनाने की आवश्यकता ही क्या है (अर्क्केचेन्मधुविन्देत पर्वते व्रजेत्)। यह उपदेश तो उद्धव महाराज ! उन्हें दीजिये जो हर तरह से खुशहाल हैं। राग में फँसों के लिए विराग के साधन उपयुक्त हैं और वह भी पात्र के अनुकूल। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) आज तक हमने तो माला के दानों को सुतली में पिरोने वाला न देखा और न सुना ही। इसलिए महाराज ! जैसा पशु तैसा ही बन्धन होना उचित है।

विशेष—उपर्युक्त पद्य में मौन योग का उपलक्षण है। गीता के अनुसार योगी को—'विविक्तसेवीलघ्वाशी यतवाक्कायमानसः' होना चाहिए। इसीलिए योगी वाणी का संयम प्राप्त करने के लिए मौन धारण किया करता है।

इसी मौन को योग का उपलक्षण मान कर प्रस्तुत पद में योग के विषय में कहा है।

५४ कहाँ तो सरस प्रेम और कहाँ यह नीरस योग! दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। प्रेम को छोड़कर फीका निर्गुण भला कौन अपनाने को तैयार होगा? यह जानकर भी जो लोग योग ही योग गाते हैं उन्हें क्या कहा जाय। यही भाव अभिव्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

प्रेम से विहीन इस योग की कथा गाना व्यर्थ है। विरहिणी की विरह-व्यथा से सहानुभूति दिखाना सहृदयता है न कि उन्हें वैराग्य का उपदेश देना। फिर तुमने हम दुखियों से ये योग के निष्ठुर वचन कैसे कह डाले! हमने अपने नयनों से कमल नयन (पुण्डरीकाक्ष) कृष्ण के सुन्दर मुख का दर्शन किया है। उन्हीं नयनों को तुम मूँदने के लिए कहते हो यह तुम्हारा कौन सा ज्ञान है? भाव यह है कि नयन मूँदकर जिस ज्योति का साक्षात्कार योगी करता है उसका दर्शन हमने खुले नेत्रों से कर लिया है फिर इन नयनों को मूँदने से क्या लाभ? यदि तुम्हारा मतलब यह है कि योगी के अन्तर्मानस में आविर्भूत ज्योति इस दर्शन से कहीं भिन्न है तब तो हम उसे दूर से ही नमस्कार करती हैं। अरे भ्रमर! जिसमें प्यारे प्राणनाथ नन्दनन्दन नहीं हैं उससे हमें क्या लेना है? योग के महत्व को गाकर तुम अपने गौरव को खो रहे हो। अरे! तुम उनकी बातें करो कि जिनके तुम मित्र हो और जिनकी हम दासियाँ हैं। इसी से आपके मित्रधर्म और हमारे दासधर्म का निर्वाह हो सकेगा। उनकी कथा ही हमारे प्राणों की सजीवनी है। जब तुम निर्गुण के अन्यान्य गुणों का कथन करते हो तो हमारे प्राणों के प्राण उन कृष्ण को कहाँ छिपाए रखते हो?

५५ यदि 'तुष्यतुदुर्जन' न्याय से योग को उत्तम भी मान लिया जाय तो भी वह पराया होने से हमारे लिए उपादेय नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

अरे भ्रमर! पराई बातों को चलाने में क्या रक्खा है? इन बातों को इस ब्रज में कोई नहीं कहता और न कोई सुनता है। तुम्हारी अभी नई कीर्ति समाप्त हुई जाती है। पुरानी जमी हुई कीर्ति को जाने में विलम्ब लगता है पर

तुम्हारी कीर्ति नई है, जाने में देर नहीं लगेगी। इसलिए अपनी इज्जत आबरू का ख्याल करके इस निर्गुण गाथा को अकथित ही रक्खो तो अच्छा है। कुल की व्यथा उन्हें कैसे भूल गई? जरा अपने मुख से ये समाचार सुनाओ। हाय! उन्होंने अच्छा संग किया जिससे यह भली मति उन्हें उपजी है। अच्छी भलों से उनकी पहिचान हुई! आपकी यह सुन्दर र.म कहानी हमें कड़ुवी सी लगती है और आपका यह मधुर उपदेश हमारे हृदयों में खरापन उत्पन्न कर रहा है। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा! आपके मित्र कृष्ण भगवान के यहाँ भी क्या अजब अन्धेर है कि बहे जाने वालों से उतराई का तकाजा किया जाता है। विरह से पीड़ितों को निर्गुण को अपनाकर योग करने के लिए कहना ऐसा ही बेतुका है जैसे बहे जाने वालों से मल्लाहों द्वारा उतराइ का तकाजा करना।

अलंकार—लोकोक्ति।

५६ उपदेश के लिए पहली बात आचरण और फिर उपदेश होना जरूरी है। बिना आचरण के उपदेश में प्रभाव नहीं होता। श्रोता लोग 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे जे आचरहिं ते नर न घनेरे' कहके आचरण हीन उपदेशकों की बात उड़ा दिया करते हैं। प्रस्तुत पद में गोपियों ने भी उद्धव की 'कथनी और तथा करनी और' की ओर संकेत करके उनके उपदेश की निस्सारता.का प्रतिपादन किया है। वे कहती हैं—

अरे! व्रज में इसकी शिक्षा सुनने वाला कौन है। जिसकी रहन-सहन उसके कथन से मेल नहीं खाती। भ्रमर! हमारे थोड़े से ही कथन से सब समझ जाओ। स्वयं तो अपने हृदय को उनके चरणों के मधुरूप अमृत में सराबोर किए रहते हैं और हमसे कहते हैं कि उसे तुम नीरस समझ कर निर्गुण की साधना से आनन्द प्राप्त करो। प्राप्त को छोड़कर नई दिशा में परिश्रम करके आनन्द उठाने की आयोजना नया कुआ खोदकर स्नान करने के समान है। आप जैसे वैरागी हैं यह तो हम जानते हैं। धानों का गाँव पयाल से मालूम हो जाता है। ज्ञान विषयानन्द से विरक्त होता है। पर आपसे ज्ञानी उनके चरणामृत का आनन्द लेते हुए भी हमें वैराग्य का उपदेश दे रहे हैं। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) चलो बस यों ही ढकी मुंदी रहने

दो। ज्यादा खोलकर कहने से व्यंग्य का रस चला जाता इसलिए बस इतन ही कहना पर्याप्त है। गूलर को फोड़ने से कीड़े ही उड़ते हैं जिससे घृणा हे जाती है। इसलिए हम नहीं चाहते कि कुठला घोएँ और कीच उठावें।

अलंकार—लोकोक्ति।

५७ श्रीकृष्ण की संदेश पत्रिका को बार बार पढ़कर राधा और उसकी सखिय अपने हृदय से लगाती हैं। वे आनन्द विभोर होकर सब कुछ भूल जाती हैं मनोदशा चरम उत्कर्ष पर पहुँच कर आँखों द्वारा बहती हुई अपनी कहानं स्वय कहती है। वे बीते दिनों की याद करके कभी २ उद्धव से भी अपन हृदयोद्‌गार कहती हैं। सूरदास कहते हैं—

श्यामसुन्दर के अक्षरों को देखकर वे उसे बार बार छाती से लगाती हैं नयनाश्रुओं से मिलकर कागज की स्याही ने श्याम की पत्री को श्याम बन दिया। उन्होंने कहा—जब गिरिधर कृष्ण गोकुल रहते थे तब कभी हम गर हवा भी न छू पाई। अरे उद्धव! हम उन दिनों की आनन्द कहानी तुमं क्या कहें जब कि हम बंशी की मधुर ध्वनि सुनके चल देतीं थीं। सदा रा रस में मन्दोदत्त होकर हरि के प्यार के कारण हम किसी को भी कुछ नह समझती थीं। हाय! हमारे बालापन के साथी प्राणनाथ! न जाने अ तुम कब मिलोगे।

अलंकार—तद्‌गुण और गिरिधर में परिकरांकुर है।

५८ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारा तो भाग्य ही ऐसा है जिसमें निर्बा भोग लिखा ही नहीं है। वे कहती हैं—हे अलि! हमें तो सयोग और वियो दोनों दशाओं में एक ही फल मिलता है। जब कृष्ण यहाँ थे तब उनके अधरा मृत का पान करनेवाली मुरली थी और अब वियोगावस्था मे कुबरी सौत उनं अधरामृत की अधिकारिणी है। तुम इन विरहिणियों को योग सिखलाक अङ्गों में भभूत लगाने की कह रहे हो। भला बताओ! तुमने इन विरहिणियं में से किसी को माँग में फूल गुहाए देखा है। ये वेचारी प्रोषित पतिका हों से केशप्रसाधन से कोसों दूर हैं। तुम इन्हें कानों में योगियों की सी मुद्र मेखला और जटाओं के धारण करने का उपदेश दे रहे हो और कहते हं साधुजनोचित दण्ड धारण करने को। सो क्या तुमने यहाँ किसी को चमक

ए कर्णफूल और तनसुख की मुलायम झीनी साड़ी पहने देखा है। ये तो सब वियोगिनियाँ हैं। शृंगार से कोसों दूर रात दिन मनमोहन का ध्यान करके उन्हें ही रटती रहती हैं। इसलिए यहाँ आपके उपदेश व्यर्थ हैं, उनकी कद्र नहीं है। आप शीघ्र ही मथुरा पधारें। वहाँ योग के पारखी आपके योग-ज्ञान की कद्र करेंगे। (जो जिसके गुण प्रकर्ष को पहचानता है वही उसका आदर करता है और जो वस्तु के गुणों की परख नहीं जानता वह तो उसका निरादर ही करेगा। मिलाइए—नवेत्तियो यस्य गुण प्रकर्ष से तस्य निन्दाँ सततं करोति। यथा किरती करिकुम्भजाता मुक्ताँ परित्य बिभर्त्ति गुंजाम्) । इस ब्रज में रात-दिन सदा ही वह मनोहर रूप अब भी चारों ओर जागता दिखाई देता है। (सूर कहते हैं,गोपियों ने कहा) उद्धव ! तुम सूप रखके व्यर्थ में ही जोग को लिए घर २ फेरी लगाके 'लेहु लेहु' चिल्ला रहे हो। ग्रामों में सूप बेचने वाले प्रायः 'सूप लेलो सूप' की आवाज लगाते हुए फेरी लगाया करते है । अन्य किराने की सौदा बेचने वाले भी चिल्लाते हुए ग्राहकों से सूप से छान फटक कर अपना माल लेने का अनुरोध किया करते हैं। इसी प्रकार मानों उद्धव भी अपने योग को छान फटककर लेने के लिए ग्राहकों को आमन्त्रित कर रहे हैं। सो गोपियों के कथनानुसार व्यर्थ ही है क्योंकि ब्रज में उसकी आवश्यकता नहीं है।

५६ गोपियाँ उद्धव पर आक्षेप करती हुई कहती हैं—

देखो हमारी बात का बुरा न मानना। हमें कठोर बात कहते कुछ डरसा लग रहा है। बात यह है कि बिना विवेक के प्रतिष्ठा जाती रहती है। (विवेक शून्य पुरुषों की मानमर्यादा नष्ट हो जाती है।) यदि कोई किसी के जले पर कुछ कहता है वह पीछे पश्चात्ताप करता है। पीड़ित अपनी पीड़ा के लिए सहानुभूति के दो शब्द चाहता है, ज्ञान और धर्म का उपदेश नहीं। हम कृष्ण से प्रेम करती हैं यह कोई पाप नहीं है। आप भी तो कृष्ण के नाम के प्रताप से खाते कमाते हो उसी से तुम्हें आवभगत मिलती है। आपका भी तो मन दिन रात श्रीकृष्ण के चरणों में ही सदा लगा रहता है। इसी के प्रसाद से आज आप सब कुछ हैं फिर भी श्याम से योग अधिक है

यह तुम से किस प्रकार कहा जाता है। क्या यह तुम्हारी कृतघ्नता और ए
सान फरामोशी नहीं है?

६० गोपियों का मन सब प्रकार के प्रयत्न करने पर भी श्रीकृष्ण से ही अ
रक्त होता है इसलिए वे उद्धव से कहती है —

हे मधुप! अपनी शक्ति भर हम मन को बड़ा कड़ा करती हैं। अ
कथाएं कह २ कर अपने मन को प्रबोध देती हैं फिर भी वह नन्दनन्दन
बिना नहीं रहता। कानों म उनका सन्देश नहीं पड़ने देतीं। आसुओं को
दबाती और मुँह से कुछ अन्य ही बातें चलाती है ताकि मन को उधर ब
का प्रोत्साहन न मिले। चित्त में बहुत प्रकार से कड़ाई करके भी हम देख
हैं कि मन सब कुछ छोड़ कर यही निर्धारित करता है कि चाहे करोड़ों स्व
के सुख की कल्पना करके प्रस्तुत की जावे पर फिर भी वह हरि के सामीप्य
समता नहीं कर सकती। सागर में चलने वाली नाव का पक्षी जिस प्र
चक्कर काटकर थक कर फिर नाव पर ही आ लगता है इसी प्रकार यह हम
मन इधर उधर भटक कर श्रीकृष्ण की भक्ति और प्रेम में ही आश्रय पाता
उन्हीं के गुण गाता है। पश्चात् मिलन की एक ऐसी कामना जाग्रत होत
जिससे हमारा हृदय लगातार जलता है। बस अन्तस् के फटने भर की ही
रह जाती है (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) यह व्यथा मरण दायक
फिर भी हम प्रयत्न पूर्वक शरीर को छोड़ती नहीं इसलिए कि कमसे कम
बार भेंट हो जावे तो अच्छा है।

अलकार—उपमा।

६१ गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हमारा प्रेम केवल वासना की तृप्ति
लिए नहीं अपितु उसमें सतीत्व की दृढ़ और निश्चल भावना है। कली-
का रस चखने वाले बहुरंगी इस प्रेम के महत्व को नहीं समझ सकते।
इस पवित्र प्रेम की अनुभूति नहीं हुई वे इसकी कल्पना भी नहीं कर स
इसी तात्पर्य को स्फुट करती हुई वे कहती हैं —

अरे मदहोश भौंरे! तू चुप रह। हमारे कृष्ण चिरायु हों। हम नि
लेकर क्या करेंगी। तुम पराग की कीचड़ में यहाँ तक लोटते हो कि तन
की सुध भुला देते हो। बारम्बार रसरूप की तुरुफा (घूट) भरते हो जिससे

ाद का न वर्णन करना ही अच्छा है। ऐसी हेय अवस्था में भी तुम कुसुमों रंगरेलियाँ करते हो और वे इस हालत में भी तुम्हारा अभिनन्दन करते हैं। ाहे कोई भी काले रंग का (भ्रमर) क्यों न आवे वे सभी के लिए समान रूप ही तय्यार रहते हैं। किसी से मना नहीं करते। करें भी क्यों? वे तो रंगरेलियों के भूखे हैं। तुम सोचते होगे हम वैसी ही हैं जैसे कि तुम्हारे कुसुम। प्राज सगुण को अपनाती हैं और कल निर्गुण के गीत गाती हैं। परन्तु भ्रमर! ाद रहे हम गंगा गए गंगादास और जमुना गए जमुनादास लोगों में नहीं हैं। हम तो अपना सर्वस्व पुण्डरीकाक्ष श्यामसुन्दर को जो नन्द और यशोदा के प्यारे हैं उन्हें अर्पण कर चुकी हैं। हमारे पास हमारा रह ही क्या गया है जिसे हम दूसरे को भेंट कर सकें। जो कुछ भी तन मन था वह कृष्णार्पण हो गया अब निर्गुण हेतु हम पर कुछ रहा ही नहीं।

विशेष—सरक शब्द का अर्थ आचार्य शुक्ल जी ने मद्यपात्र किया है पर वह इतना ठीक नहीं बैठता जितना कि लुढ़कना (घूंट मारना) अर्थ ठीक बैठता है। अतएव हमने यही अर्थ अपनाया है—कवि का 'सरक मदिरा की' कहने का यही अभिप्राय मालूम होता है।

६२ सगुण भक्ति का मार्ग सरल है। उसे मिटाके निर्गुण की आराधना द्राविड़ी प्राणायाम मात्र है। 'जो बनिआवे सहज में ताही में चितदेय' की उक्ति के अनुसार सरल मार्ग से उद्देश्य प्राप्ति करना ही बुद्धिमत्ता है। इसलिये गोपियाँ उद्धव से कहती हैं।

मधुप! तुम सीधी सड़क को क्यों बन्द कर रहे हो। अरे! सुनो तुम अपने निर्गुण के काँटों से सगुण की सड़क को क्यों रोक रहे हो। मालूम होता है कि तुम्हें कुब्जा ने सिखा पढ़ा के भेजा है। ताकि उसका काँटा सदा के लिए निकल जाय। या शायद कहीं घनश्याम ने ही यह कहला भेजा हो। हमसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए हो सकता है कि उन्होंने ही कहला भेजा हो। कुछ भी हो और किसी ने भी कहा हो पर वेद पुराण और स्मृति ग्रन्थ सभी छान डालो और देखो कि कहीं युवतियों के लिए भी किसी ने योग का विधान लिखा है? खेलने खाने की उमर में योग का विधान बेतुका है।

इसीलिए कुमार सम्भव में कालिदास ने भी कहा है—किमित्यपास्या भरणानि यौवने धृत त्वया वार्धक शोभिनल्कलम् । वद प्रदोपे स्फुट चन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते" । स्मृतियों में न लिखा होने पर भी वह तुम्हारे इष्टदेव कृष्ण का आदेश होने से मान्य होना चाहिए । इसका उत्तर देती हुई गोपिकाए कह रही हैं—भला उसका क्या विश्वास जो दूध और छाछ के उत्कृष्टता और निकृष्टता का विमर्श नहीं कर सकता । सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा अरे यह क्यों नहीं कहते कि मूल तो अक्रूर वसूल कर ले गए और उद्धव जी अब ब्याज वसूलने आए हैं । अक्रूर हमारे प्रेम के आलम्बन को मथुरा लिवा गए और आप उनकी स्मृति भी यहाँ से ले जाने पर उतारू हैं ।

विशेष—निर्गुन कंटक—रूपक : राजपथ—रूपकातिशयोक्ति ।

सूर—ऊधो में लोकोक्ति अलङ्कार है ।

६३ गोपियाँ कहती हैं कि सभी लोग बातों से समझाना चाहते हैं । वास्तविक उपचार को कोई नहीं बताता । वे कहती हैं :—

सभी लोग बातों से, ही समझाते हैं । किन्तु मिलन का वह उपाय कोई नहीं बताता जिससे कि कृष्ण मिल सकें । यद्यपि हम अनेक यत्न कर कर थक गई और वे फिर भी अन्यत्र ही रम रहे हैं तथापि हमारे हठी नेत्रों को कुछ और देखना भाता ही नहीं । यह जिह्वा भी रात दिन प्राण वल्लभ को छोड़ कर किसी का गुणगान करना पसन्द नहीं करती । सूर की गोपियाँ कहती हैं- उद्धव ! प्रेम के नाते तुम चाहे जो भी, हम से कहो पर हम अपने अग प्रत्यंग से उन्हीं मे सदा रत हैं ।

६४ ज्ञात को छोड़कर अज्ञात के प्रति आग्रह करना मूर्खता है । हमारा सगुण ज्ञात है और तुम्हारा निर्गुण अज्ञात । गोपिया उद्धव से कहती हैं कि यदि तुम्हारा निर्गुण भी हमारे सगुण की भाति ज्ञात है तो बताओ कि—

वह निर्गुण कहा रहता है ? मधुकर ! तुम खुशी से हमें यह समझा दो । हम तुमसे शपथ पूर्वक पूछती हैं । हँसी नहीं करतीं । उसके मा बाप का नाम बताओ तथा उसकी स्त्री और दासी का भी पता बताओ । उसका रग रूप बताकर उसके इष्ट रसों का भी वर्णन करो ताकि हम उसे जानकर अपने भली भाति परिचित प्रियतम से उसकी तुलना कर सकें । पर देखो सब सच सच

बताना। यदि मनमें कुछ भी कपट रक्खा तो अपना किया पावेगा। सूर कहते है कि उद्धव उनकी ये बातें सुनकर बंचित सा अवाक् रह गया। उसकी बुद्धि ही कूंच कर गई। कर भी क्यों न जाती ? भला जिसे उपनिषद् नेति-नेति कह कर 'न तत्रचक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनः' आदि द्वारा बताती है तथा वेद जिसका 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' कहके गान करते हैं उसके रूप रंग आदि का वर्णन करना आकाश कमल लाने के समान असंभव ही है।

६५ गोपिया उद्धव से कहती हैं कि जब मन में प्रियतम बसे हैं फिर भला और के लिए वहां ठौर कहां है ? रामानुजीय दर्शन और न्याय दर्शन के अनुसार मन अणु है फिर वहां इतनी जगह कहां कि दूसरा भी टिकाया जा सके। उस हृदय में नन्दनन्दन के रहते हुए दूसरा और किस प्रकार लाया जा सकता है ? यदि कहो कि जब कभी वे कहीं चले जाते हों तभी के लिए दूसरे को वहां शरण दे दो तो इसके लिए गोपियां कहती हैं—वह श्यामली मूर्ति क्षण भर के लिए भी इधर-उधर नहीं जाती। दिन में जागते, चलते-फिरते, देखते निहारते भी व्यापारों में तथा रात्रि में सोते या स्वप्न देखने में वे सदा ही अपना अड्डा इस हृदय में जमाये रहते हैं, क्षणभर के लिए भी इधर-उधर नहीं जाते। अतएव किसी भी समय हमारे हृदय में स्थान रिक्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि ऐसा है तो अल्पार्थ को निकालकर बहुमूल्य को स्थान देना चाहिए। यह ठीक है कि उद्धव अनेकानेक लौकिक लाभ दिखाकर अपनी निर्गुण गाथायें प्रस्तुत कर रहे हैं। परन्तु वह निर्गुण इतना गहन और व्यापक है कि हमारे अणु मन में नहीं समा सकता है। भला कहीं गागर में सागर समा सकता है ? यही नहीं, हमारे घट (अन्तःकरण) प्रेम से लबालब भरे हैं फिर भला निर्गुण का अंशतः भी ग्रहण किस प्रकार किया जा सकता है ? (प्रियतम छवि नयनन बसी पर छवि कहां समाय ? भरी सराय रहीम लखि पथिक आप फिरि जाय।) सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि हमारे नेत्र तो ऐसे रूप के पान करने के लिए सदा तृषित रहते हैं। इस रूप में हमें श्याम शरीर के कमल-मुख पर मृदुल-हास देखने को मिलता है।

६६ गोपिया उद्धव से कहती हैं कि आपका निर्गुणोपदेश ब्रज में सर्वथा निरवकाश है। यहा पर सभी श्याम में अनुरक्त हैं और आपके निर्गुण और

उसके फल मोक्ष की चाह नहीं रखते । इसलिए बुद्धिमता इसी में है कि श्रा इस निर्गुण को किसी अनुरूप स्थान में ले जाकर सिरावें । इसी भाव क व्यक्त करती हुई गोपियां कहती हैं—

यहां सभी व्रज के लोग श्याम का व्रत धारण किए हैं । श्याम को छोड़क अन्य को कोई नहीं जानता । दूसरे की कथा कहना और सुनना यहां व्यभि चार के नाम से पुकारा जाता है । तुमने यह जोग की पोटली यहां आकर क्यं उतारी ? अनुरूप ग्राहक के अभाव म इसका यहाँ लाना उपहासास्पद है इसे तो तुम थोड़ी दूर और चलकर काशी जाकर बेचते तो तुम्हारी प्रतिष्ठ होती । इस योग के सौदे की वहां अच्छी कीमत लग जाती । वहां योग वे गुणज्ञ तुम्हारी और तुम्हारे सदेश की कद्र करते । यहां हम लोग तो इर सदेश को सुनना भी नहीं पसंद करते । हमारी यह मण्डली बड़ी अनोखी है है । आपकी नीरस योग गाथा में वह आकर्षण कहा जिससे कि हम हरि के प्रेम रग से भरी हुई रगरेलियों को भुला सकें । हमें उनके साथ सरल का केलियों के करने में जो आनन्द आता है वह भला मुक्ति में कहा सम्भव है इसलिये हमारे यहां मुक्ति की भी पूछ नहीं—यों चारों पदार्थ धर्म अर्थ का और मोक्ष हरि क्रीड़ा के कामुकों को अनायास ही प्राप्त है । (मिलाइए—जे जन तुम्हारे पद कमल के असल मधु को जानते हैं । वे मुक्ति की भी क अनिच्छा तुच्छ उसको मानते हैं । मैथिलीशरणगुप्त) सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा ! अरे उद्धव ! यहां तो हम अपने स्वामी मन मोहन के बाके रूप पर निछावर हैं ।

६७ निर्गुणोपासना और योग का सदेश लाने वाले उद्धव पर घोर अविश्वास प्रकट करती हुई वे इस प्रकार तीखे व्यग्य कहती हैं कि जिसके बाद को भी हयादार फिर ज़ुबान नहीं खोल सकता । इस प्रकार के व्यग्य से आहत होकर फिर किसकी ताव है कि कुछ कह सके । यहां उद्धव को बनाने के लिए एक गोपी दूसरी से कहती है । अरे पगली ! ! तू उद्धव से कह क्या रही है अरी तू जानती नहीं कि ये कृष्ण के वे ही मित्र हैं जिनके बारे मे हम बहुत कुछ सुना करते थे । अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि के आधार पर यहां यह तात्पर्य है कि ये कृष्ण के मित्र नहीं हैं, ये तो बनते हैं । यह भाव अग्रिम पक्तियों से औ

। स्पष्ट हो जाता है। वह गोपी फिर कहती है—अरी तू क्या कह रही है ? मैं अभी तक सच माने बैठी थी कि ये अवश्य ही कृष्ण के मित्र हैं और उन्हीं आदेशानुसार यहाँ योग का सन्देश लाए हैं। अरे नहीं यह बात नहीं। ।। तुमने यह कथन नहीं सुना—जो भले होते हैं वे सदा भला काम ही करते और कपटी कुटिलता की खान ह.ते हैं। बस इतने से ही सब भाप लो। री गोपी कहने लगी, हाय अम्मारी ? तो ये हजरत कृष्ण के मित्र नहीं यह मैंने अपने मन में निश्चय पूर्वक जान लिया। यह योग का सन्देश की मनगढन्त कल्पना है। वरना कहाँ तो उन रसिक शिरोमणि का रास के ते अनन्य अनुराग और कहाँ यह जोग जप आदि नीरस क्रियाएँ ? ये इतने काश पाताल के अन्तर की बातें करते हैं। सचमुच तुम सभी काहे को गल हो गई हो जो इस पर विश्वास कर बैठी हो।

६८ कृष्ण के द्वारा योग की शिक्षा गोपियों को ऐसी वेतुकी लगती है कि उद्धव पर घोर अविश्वास प्रकट करती हुई उनके अन्वर्थतः दूत होने की परवा कर देती हैं। (इस पद में दूत शब्द का अर्थ—सदेश हर ही न होकर पनी ओर से नमक मिर्च मिलाकर कहने हारे—दूता चवाव करने वाले के ए प्रयोग किया है) कोई गोपी कहती है कि—

सचमुच ऐसे ही आदमियों को दूत कहा जाता है। (ऐसे दूत जो सदेश तिल को अपनी कल्पना से बढ़ाकर ताड़ कर देते हैं। परन्तु मुझे एक श्चर्य है कि इसमें इन्हें क्या मिलता है ? ये अपना प्रभाव जमाने के लिए रों को खरी खोटी सुनाते हैं जिससे सुनने वालों का हृदय सतप्त होता है। तप्त होकर वे लोग फिर इनकी खूब पगड़ी उछालते हैं। इनकी इज्जत धूल मिल जाती है। जरा इन्हें देखो तो सोहबत का इन पर यह प्रभाव पड़ा युवतियों को ज्ञान पढाने चल दिए। स्वय तो सर्वाङ्ग निर्लज्ज हैं उस पर ी यह कि गाए चले जारहे हैं। वाहरी वेहयाई। कहीं चुपचाप मुँह छिपा- बैठना चाहिए था। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) ये अपने मुँह या मिट्ठू बनते हैं। ऐसे निर्लज्ज हैं कि लाग्व हराओ पर वे अपनी विजय था ही गाते रहते हैं। (सम्भवतः ऐसे लोगों के लिए ही किसी ने कहा —लज्जामेका परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्)।

६६ बार-बार मना करने पर भी जब उद्धव वही योग गाथा गाते रहे तो गोपियाँ उनके कठमुँहे पन पर एकदम झल्ला उठीं और कहने लगीं :—

जो भी प्रकृति जिसके बाट पड़ी है वह उसे कभी नहीं छोड़ता। करोड़ों उपाय क्यों न करो पर कुत्ते की पूँछ कभी कोई सीधी नहीं कर सकता। कौआ जनमते ही मच्छ अर्थात् अभक्ष्य कभी नहीं छोड़ता। काले कम्बल को कितना ही क्यों न धोया जाय पर उसका रंग नहीं छूटता। भले ही पेट न भरे पर साँप का स्वभाव है कि वह काठ ही खायगा। सूर की गोपियाँ कहती हैं कि चाहे जो कुछ भी क्यों न हो उद्धव को इसकी चिन्ता नहीं। पर वे अकारण दूसरो को दुःख देने की अपनी आदत छोड़ नहीं सकते।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलंकार।

७० गोपियाँ उद्धव के मुँह से योग का उपदेश सुनकर कहती हैं कि वे उनके निर्गुण को एक शर्त पर अपना सकती हैं और वह शर्त यह है—वे कहती हैं कि—

उद्धव ! हम तब तुम्हारी बात मान सकती हैं कि यदि तुम अपने ब्रह्म को मुकुट और पीताम्बर वेषधारी के रूप में दिखा दो। यदि ऐसा कर दो तो तुम्हें विश्वास दिलाती हैं कि हम सब गोपियाँ, भले ही हमें गाली क्यों न लगे, उसको स्वीकार कर लेंगीं। (पर यह हो कैसे ! यह तो ऐसी ही बात है कि न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेंगी।) परन्तु तुम तो हमें एक भूत सी भयानक चीज बता रहे हो। दियासलाई लगादो ऐसे भयावह ब्रह्म में। इसके उपदेश से हम श्याम को कैसे भुला सकेंगी ! जो अपने मुख से सुधा का आचमन करते रहे हैं वे जहर के अधिकारी कैसे हो सकते हैं ? (सूर की गोपियाँ कहती हैं) प्रभु कृष्ण के अङ्ग-अङ्ग पर ब्रज-नारियाँ रीझ चुकी हैं उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुन्दर है और तुम भयावह भूत ब्रह्म दिखाके उन्हें भुलवाना चाहते हो। यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

७१ योग का सदेशा और निर्गुण का उपदेश कितना भयावह है इसी का प्रकारान्तर से वर्णन करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

उद्धव ! तुम्हारी यही बात (योगोपदेश) सुनते ही हमारे नेत्र यहाँ से भाग निकले। तुम्हारे मुख से बात सुनते ही रोते हुए ये यहाँ से ढुलक-ढुलक

हे चलते बने। तुम्हारे कृष्ण सदृश वर्ण से ललचाकर ये तुम्हारी ओर ललके पे परन्तु पास आने पर जो तुमने व्यथा दी है उससे अब ये सभी कालों को देखकर चकपका जाते हैं। कृष्ण के समान श्याम घटाओं को भी देखकर ये नेत्र अब इधर-उधर छिपते फिरते हैं। इस सब का कारण आप है। जब से आप व्रज में पधारे हैं तभी से ये काले रंग से इतने डर गये हैं कि हमारे प्रबोध देने पर भी हमारा विश्वास नहीं करते। यदि ये हमारा कहना मान जाते तो शायद हम आपकी बतायी चाल पर भी चलतीं। पर क्या करें ये तो इस आशंका से पहले ही कहीं जाकर छिप रहे। तात्पर्य यह है कि निर्गुण को अपनाकर ये आँखें कैसे तृप्त हो सकेंगी। ये तो उसी रूप को देखने के लिये मचलती हैं। अन्त में सूर की गोपियों ने उद्धव से कहा कि वास्तव में तुम्हारे संदेश की अवहेलना का कारण हमारी आँखों का सत्याग्रह है। पर तुम तो बड़े चन्ट ठहरे, तुम क्यों यह मानने लगे। तुम तो हमारे ही सिर अपराध रक्खोगे और वहाँ जाकर यही शिकायत करोगे कि गोपियों ने तुम्हारा सन्देश माना।

७२ उद्धव द्वारा निर्गुण उपदेश को सुनकर गोपियाँ उनसे कहने लगीं कि—उद्धव! हमने नेत्रों से जो वह रूप देखा तो संसार में अपना जन्म सफल समझा। वे सुन्दर नेत्र जो चंचल खंजनों के समान हमारे मन को अनुरक्त करते थे। वे नेत्र जो कमल, मृगनयन और मछली के समान शोभाशाली थे, जो श्वेत, लाल और काले रंग के थे वे सुन्दर नयन हमारे मन को भला कैसे न आकर्षित करते? फिर कानों में सुन्दर रत्न जटिल कुण्डल जिनकी आकर्षक आभा निर्मल कपोलों पर झलकती हुई मोहक प्रतीत होती थी। मानो सूर्य का प्रतिबिम्ब मुकुट में पड़कर इस छवि को ढूँढ निकालने का यत्न करता हो। अधरों पर मुरली, टेढ़ी भौंहें तथा त्रिभंगी मुद्रा में उनका खड़ा होना। वक्षस्थल पर विराजमान मोतियों की माला नील पर्वत से धरणी की ओर गिरती हुई गंगा के समान सुशोभित थी। अन्यवेश का वर्णन करना व्यर्थ है। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग पर केसर की रचना सुशोभित थी। यह शोभा अवर्णनीय है इसकी अच्छी अनुभूति तो देखने से ही हो सकती है क्योंकि कहने वाली वाणी तथा देखने वाले और ही अर्थात् नेत्र हैं। अन्य की अनुभूति

अन्य द्वारा वर्णन नहीं की जा सकती। (मिलाइये—गिरा अनयन नय बिनु बानी—तुलसी)

विशेष—इस पद में रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमाअलकार हैं।

७२ उद्धव द्वारा निर्गुण सन्देश सुनकर गोपियाँ कहती हैं कि जब हमारे नयनों में नन्दनन्दन बसे हैं और हम उन्हीं के ध्यान में सदा रत रहती हैं तो निर्गुण के लिए कहाँ स्थान है ? हमारे लिए निर्गुण एक तुच्छ वस्तु होने से उपादेय नहीं है। आप अपने बहुमूल्य निर्गुण को उचित पारखियों के पास ले जाइये ('जो जाको गुन जानही सो तेहि आदर देत ! कोकिल अम्बहि लेत है काक निबोरी हेत।') इस लिए आपको यह निर्गुणोपदेश ज्ञानियों के सामने रखना चाहिए। इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—नयनन—ध्यान,

उद्धव हमारे नेत्रों में सदा नदनदन का ध्यान समाया रहता है। उसके सिवा कोई हमारी आँखों में जँचता ही नहीं। इसलिये आप यह उपदेश वह दें जहाँ लोग निर्गुण के ज्ञान से परिचित हों। बात यह है कि गुण की क उस गुण के पारखी ही कर सकते हैं, जो उसकी परख नहीं जानते उनके लि तो वे दोष ही हो जाते हैं। (किसी ने उचित ही कहा है—गुणा गुण ज्ञे गुणा भवन्ति ते निर्गुण प्राप्य भवन्ति दोषाः)

उद्धव ! एक तो हम अभाग्यवश वैसे ही अपनी हस्त रेखाओं पर उन आने की अवधि के दिन सँभालती और अपनी किस्मत पर कुड़कुड़ाया करत हैं और उस पर भी आप ये सनातन वियोग की कड़ुवी बातें कहकर हमा प्राणों को मारे डालते हैं। परन्तु कोई कुछ भी करे हमारा अवलम्बन तो वह रूप माधुरी है जिसमें हमने करोड़ों चन्द्रों के प्रकाश से चमचमाते मुखके औ करोड़ों सूर्यों से जगमगाते हुए आभूषणों के दर्शन किए हैं। करोड़ों काम देवों के समान उस छबि पर हमने अपने को निछावर करके उन्हें समर्पि कर चुकी हैं। जिनकी भ्रूलताएँ धनुष की शोभावाली है। जिनको दर्शन शक्ति उस भ्रूलता-धनुष का आकर्षण है जो अपने बाके कमल से कोमल नयनों से कटाक्ष रूपी कोमल बाणों की वर्षा करता है। कौन है ऐसा जो उन बाणों से आहत होकर आत्मसमर्पण न करदे। उन प्रियतम की शावकी गर्द

में रत्नों के हार और वक्षस्थल पर सरल सुन्दर कौस्तुभमणि सुशोभित है। जिनके प्रलम्ब भुज घुटनों तक पहुँचने वाले अत्यन्त रमणीय हैं और जिनके पाणिपद पीयूष पायोधि हैं। उनके सर्वाङ्ग सुन्दर श्यामल शरीर पर पीतांबर से जो शोभा उमँगती है उसका वर्णन करने की किसमें शक्ति है? ऐसा प्रतीत होता है कि मानों श्याम मेघों में कान्तिमयी सौदामिनी नृत्य कर रही हो। ऐसे सर्वाङ्गसुन्दर गोपाल से आलिङ्गन कर हमने उनके अधरासव का पान किया है। (सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं) ऐसे रूप माधुर्य को छोड़कर क्या कोई हमारा अन्य रक्षक हो सकता है। इसलिए हम वियोग की विपदा में अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य की शरण नहीं जा सकतीं। वही पीतपट-धारी हमारी इस विपद में भी रक्षा करेगा।

विशेष—उपमा (चन्द्र-भान) प्रतीप (कोटिमन्मथ–दान) सांग रूपक (भृकुटि—बान) वाचकलुप्तोपमा (कम्बुग्रीवा), वस्तूत्प्रेक्षा (मनहु —दुतिमान) इस प्रकार इस पद में पाँच अलंकार हैं।

७४ पात्रापात्र विवेक से शून्य उद्धव के बारबार योग का उपदेश देने पर गोपियाँ उनकी खिल्ली उड़ा रही हैं। पहली दो पंक्तियों का अर्थ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य लक्षणामूलं ध्वनि के आधार पर बिलकुल विपरीत हो जायगा यही ध्वनि सूर के काव्य का प्राण है। गोपियाँ आपस में कहती हैं—देन—श्रमी को।—

उद्धव साहब अच्छी सलाह देने आए हैं। चलोरी! चतुर सखियो! सबकी सब चलके सत्संग लाभ की कीर्ति के अधिकारी होलें! अरे! यह सूक्ष्म सुन्दर वस्त्र और आभूषण छोड़ने की कहते हैं तथा सबको गेहादि सभी के स्नेह को तिलांजलि देने के लिए बता रहे हैं। इनके उपदेशानुसार सिर र जटाएँ, सारे शरीर पर भस्म लगाना होगा और करना होगा नीरस नेर्गुण का ध्यान। मेरे विचार से तो युवतियों को वैराग्य सिखा कर सबके नेह से विमुख होने का उपदेश देकर उनके पतियों को वियोग दुःख देते फेरते हैं। उनको आहत करने के लिए ये शर-समूह अपनाये हुए हैं। इन्हीं शर-समूहों के पिंजड़े में आवृत होने से ये काले हो रहे हैं। अब तो ये इतने पक्के हो गये हैं कि इनके हृदय में तनिक भी शंका और संकोच नहीं होता।

बात यह है कि जिसको जन्म से जो स्वभाव पड़ जाता है उसके लिए वह कभी भले-बुरे का विचार एवं शंका नहीं करता। (सूर कहते हैं) जैसे साँप काटता है तो उस काटने से क्या उसके मुँह में अमृत थोड़े ही पड़ जाता है पर उसका जन्म जात स्वभाव है इसी से वह काटता है।

विशेष—उत्प्रेक्षा और दृष्टान्त अलंकार है।

७५ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि पहले तो कृष्ण ने ऐसी गाढ़ी प्रीति की और अब निर्गुण को अपनाकर भुला देने के लिए संदेश भेज रहे हैं। यह तो निष्ठुरता है। वे कहती हैं—

उद्धव! कृष्ण का पूर्व प्रगाढ़ प्रेम और यह विस्मरण का संदेश सुनकर हमें बड़ा पछतावा हो रहा है। प्रेम करके पीछे गले में कटार भोंकने के समान कठोर व्यवहार कर रहे हैं। यह कार्य तो उनका वैसा ही है जैसा कि एक शिकारी का जो पहले तो कपट पूर्वक अन्न कण चुगाता है और बाद में जीव जब लुब्ध हो जाता है तो उनके साथ अभद्र व्यवहार करता है। अब हमको मालूम हुआ कि कृष्ण ने सचमुच हमारे लिए शिकारी का बाना धारण करके हमें भूल भुलइयों में डालकर हमारा सर्वनाश करने का विचार किया था। इसीलिए उन्होंने मधुर मुरली का लासा तीलियों में लगाके मयूर पख के चँदोओं की टट्टी में हम निर्दोष पक्षियों को फसा लिया! पश्चात् अपनी बाँकी चितवन की आग जलादी जिसके सन्ताप से हम अपने शरीर को सभाल न सकीं। हमें उस आग में छटपटाते छोड़कर स्वयं मधुवन को चलते बने और हमारी खैर खबर भी न ली। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव! फिर हमारे मनोरथ के कल्पतरु में कोई शाखा (अंकुर) न निकला। वह मनोरथ मिट्टी में मिल गया।

विशेष—उपमा और साँगरूपक अलंकार है।

७६ निर्गुण-संदेश अत्यन्त दाहक है अतएव कृष्ण द्वारा भेजी हुई संदेश पत्रिका कोई पढ़ना नहीं चाहती। प्रथम तो जब केवल चिट्ठी की बात सुनी तब गोपियाँ बहुत उमगित हुईं और हुलस के चिट्ठी लेकर छाती से लगाली। जैसा कि पहले—'निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार बार लावति छाती' में वर्णन किया है। परन्तु जब उसके लेख को जान गई तब वही पत्री दाहक हो,

गई। इसी भाव को प्रकट करता हुआ कि कवि कहता है—कि गोपियों ने कहा–ब्रज में इस संदेश पत्रिका को कोई नहीं पढ़ता। अनन्त-वियोग-दायिनी कठोर छुरी सी तीखी इस पत्री को नन्द नन्दन बार-बार क्यों लिख-लिख भेजते हैं। क्या आपको नहीं मालूम कि यह चिट्ठी का कागज बड़ा कोमल है। इसके सन्देश की व्यथा से हमारे नेत्र छलछला आए हैं और हाथ की उँगलियाँ सन्तप्त हैं। यदि हम संतप्त उँगलियों से छूलेंगी तो यह छूते ही जल जायगी और साश्रु नेत्रों से देखते ही यह भीग जावेगी। भावार्थ यह है कि इसका छूना और देखना भी असह्य है। उद्धव! सुनो कठोर कामशरों का प्रहार करने वाले इन अक्षरों को समझ कर हम क्या करेंगे? हम तो श्याम सुन्दर को देखे ही जीती हैं। हम उन्हीं के चरणों में दिन रात रत रहती हैं।

विशेष—लुप्तोपमा अलंकार है। नयन सजल—विलोकत भीजै में अक्रमत्व दोष है।

७७ अनधिकारी लोगों को निर्गुण और योग का पाठ पढ़ाना उपहासास्पद है। इसीलिए गोपियाँ उनकी इस बेतुकी बात पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं—

उद्धव तुमने मुक्ति को मंदे बाजार में लाकर उतारा है। तुम सगुन विचार के नहीं चले वरना लाभ जरूर होता परन्तु यहाँ आने से तो तुम्हें टोटा ही टोटा है। तुम्हारे पास पूंजी भी जो कुछ है सो यही है। इसमें टोटा पड़ा कि दिवाला निकला। इसलिये लाभ चाहो तो इसे कहीं और जाकर बेचो, शायद अच्छे गाहक मिलें और तुम्हारा सौदा लाभ से बिक जाय। अथवा तुम इसे वहाँ जाकर बेचो जहाँ वह विषबेल कुब्जा है। वह इसके गुणों को भली प्रकार जानती है और इसीलिए वह इसकी परख कर सकेगी। तुम्हें भी लाभ होगा। हम पास ही रहने वाले वृन्दावन और उनकी रंगरेलियों को ठुकराकर इसके लिये क्यों जान खपायें? इसलिए तुम क्यों इसे सिर पर रखकर घर घर फेरी लगा रहे हो। सूरदास कहते हैं कि वे सब सखियाँ एक मत होकर उद्धव से कहने लगीं कि हमारा अद्भुत छविशाली गिरधारी जो आज कल मथुरा में हैं हमने उनसे गलबाहीं डाल के आलिंगन किया है। उस आनन्द के सम्मुख हम और किसी सुख को कुछ नहीं समझतीं। इसलिए हमारे लिये यह आप

का 'निर्गुण मत फीको' ही है।

७८ योग का उपदेश और उसकी साधना को सुनकर गोपियों ने उद्धव से कहा कि श्रीकृष्ण के सगुणरूप से प्रेम करके ही आपकी सम्पूर्ण योग साधनाएँ पूरी कर चुकीं फिर उन्हीं साधनों का उपदेश हमारे लिये पिष्टपेषण मात्र है। वे कहती हैं—

अरे मधुप! हमने गोकुलनाथ नन्दनन्दन की आराधना की है। हमने मनसा वाचा कर्मणा हरि से ही पतिव्रत धर्म निभा के प्रेम के योग और तप को सिद्ध किया है। आपकी योग आराधना के समान ही हमने भी प्रेम योग साधना में माता-पिता और अन्य हितैषियों के प्रेम से नाता तोड़कर तथा सपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले वैदिक पथ को छोड़ कर, सासारिक सुख दु:खों की भ्राति को पार कर लिया है। अर्थात् जिस प्रकार योगी द्वन्द्वातीत हो जाता है ठीक उसी प्रकार हम भी सुख दुख की भ्राति से मुक्त हो चुकी हैं। योगी जिसप्रकार द्वंद्वातीत होकर 'सम दु:ख सुखः स्वस्थ.' होता है उसी प्रकार 'मानापमानायो स्तुल्य.'भी होता है। गोपियाँ पहली अवस्था की सिद्धि बताकर दूसरी मानापमान में तुल्यता की सिद्धि भी प्रेम योग द्वारा वर्णन करती हैं। उनका कहना है कि हमने प्रेमयोग द्वारा चचल मन को स्थिर कर लिया है इसी लिए हम मान एव अपमान दोनोंसे परम सतुष्ट रहती हैं। सकोच का आसन बना कर कुलशील प्राणायाम सिद्ध किया है। ससार की सम्पूर्ण हितकारी क्रियाओं का परित्याग कर सच्ची सन्यासि जनोचित निःस्पृहता प्राप्त करली है (काम्यानां कर्मणां न्यास सन्यास कवयोविदुः—गीता)। प्रेम योग के साथ २ हमने प्रेम तप को भी सिद्ध किया है। योगियों की पचाग्नि तप की साधना हमने भी की है। हमारे प्रेम तप की साधना मे चतुर्दिक की अग्नि का कार्य चारों ओर विद्यमान हमारे बड़े जनों की लज्जा ने सम्पन्न किया और पचाग्नि तप में सूर्य के स्थान में हमारे प्रेम तप की साधना में वियोग जन्य अदर्शन है। जहाँ-तहाँ चलते हुए उपहासों का धूम्र पीकर निरन्तर कानों में आने वाले अपयश की हम अवहेलना करते रहे हैं। अपने शरीर को भुला के (भौतिक स्थिति को निमग्न करके) एक अखण्ड निश्चल समाधि मे रत रही हैं। इस समाधि में हमें अपने इष्टदेव की प्रत्येक अङ्ग माधुरी के दर्शन हुए हैं। ये दर्शन हमने

निर्निमेष नेत्रों से इतनी तन्मयता से किए कि अब रात और दिन सोते और जागते वही अद्भुत ज्योति आभासित रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम लोग युजान अवस्था को पार करके अब युक्तावस्था को सिद्ध कर चुकी हैं। अतएव हमारे लिए अब साधनों को अपनाना कोई अर्थ नहीं रखता। दो प्रकार के योगियों के लिये देखिए—युक्तस्य सर्वदा भान चिन्त.रुहकृतोऽपरः न्याय सिद्धान्त मुक्तावली। हमने उनकी भ्रू भंग पर ही त्रिकुटी साधना तथा उनके नयनों को अपने निर्निमेष नेत्रों से देखकर नाटक साधना में सिद्धि प्राप्ति करली है। उनके स्मित प्रकाश से युक्त कुण्डल और मुख रूप सूर्य चन्द्र से अनुराग करके अधरों पर रक्खी हुई मुरलीके मधुर स्वर रूपी योगियो के अन हद शब्द का हमने अनवरत श्रवण किया है। उनकी राग भरी वचनावली का रस ही हमारे लिए सदा आनन्ददायी मोक्ष सुख रहा है। हमारे प्रेम योग का मत्र कामदेव का मत्र है जिसमे सर्वथा हरि ही का ज्ञान एव ध्यान रहता है। सूर कहते हैं कि गोपियां ने उद्धव से पूछा कि अलि! बताओ फिर हम किसी और को गुरु क्यों बनाएँ और तुम्हारे इस फीके मत को यहाँ कौन सुने।

विशेष—साग रूपक अलकार है।

७९ बार-बार मना करने पर भी जब उद्धव निर्गुण का उपदेश देने से विरत न हुए तो गोपियाँ झल्ला उठीं और 'आरत कहा न करै कुकरमू' के अनुसार अपने पूजनीय अतिथि को कथनीय एव अकथनीय सभी प्रकार की बातें सुनाने लगीं। उन्होंने कहा :—

उद्धव! जो कुछ भी तुम्हारे दिल में हो उसे कहने में कसर न रक्खो। बेधड़क होके कहते जाओ। तुम्हें तो मालूम पड़ता है किसी ने जादू टोना करके पागल बना दिया है। फिर क्या है—दिनभर बकते रहो। तुमने जिसके विषय में जो बात कही है उसे यहा किसी ने स्वीकार भी किया है? तुम्हारा कथन तो यहा के लोगों ने इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। वह आँधी में उड़नेवाले भूसे के समान हवा में उड़ गया, उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिला। अब तुम व्यर्थ श्रम क्यों कर रहे हो। तुम्हारा कथन यहाँ अरण्यरोदन के समान निरर्थक है। खेद तो यह है कि तुम ऐसे गए बीते हो कि इतने पर भी तो नहीं समझते।

विशेष—इस पद में लोकोक्ति अलंकार है ।

८० निरवधिक वियोग दुःख के बीज वपन करने वाले योग का उपदेश उद्धव के मुख से सुनकर गोपियां अत्यन्त निराश हुईं । जिनके कृष्ण वर्ण को देखकर वे उनसे मिलनेके लिए उमगित हुई थीं उनके हाथों अपनी ऐसी दुर्दशा देख कर बड़ी व्यथित हुई । एकाएक उन्हें कृष्ण वर्ण मुफलकसुत अक्रूर की याद आ गई जो कृष्ण को नन्द व्रज से मथुरा ले गए थे। वे उद्धव को लज्जित करने के लिए आपस में कहने लगीं—

अच्छा अब हमें अच्छी तरह मालूम पड़ गया । हाय जिनसे बड़ी आशा हमारे हृदय में लगी थी वह भी बात खुल गई अर्थात् देख लिया कि यह आशा भी निराशा में परिणत होगई । अरे सखि ! वे अक्रूर और ये उद्धव दोनों की खूब जोड़ी मिली है । उन्होंने तो तब हमारे साथ वह किया जिसे अपने मुँह से कहना भी बुरा है अर्थात् वे यहाँ से श्रीकृष्ण को मथुरा ले गए। अब ये हजरत हमसे सगुण छीन करके मिट्टी पकड़ा रहे हैं। ऊपर से मृदुल पर मन में वज्र के समान कठोर ये लोग देखने में ही भोले लगते हैं । उस मथुरा से जो-जो आते हैं वे सब एक ही थैली के चट्टेबट्टे हैं। (बिलकुल एक से हैं) सूर कहते हैं कि एक गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखि ! मैं तो तुमसे पहले से ही कहती रही हूँ कि काले कभी अपने सगे नहीं होते । चाहे अपना सिर उतार के उनके समर्पण कर दो पर वे तो अपनी घात में ही रहते हैं ।

८१ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम्हारा यह योग का उपदेश हमारे दृढ़ प्रेम को शिथिल नहीं कर सकता । तुम यह योग जिनसे लाए हो उन्हीं को वापिस दे देना । अगर कभी जरूरत होगी तो किसी आते-जाते के हाथ मगा लेंगी । इसका यह भाव कदापि नहीं है कि गोपियों को कभी उसकी आवश्यकता पड़ेगी ही और वे उसे मगावेंगी हीं । भाव यही है कि इसकी हमें जरूरत नहीं है । शिष्टतापूर्ण भाषा से इसी व्यंग्यार्थ को तीव्र करने का प्रयत्न किया गया है । गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

अच्छा तो मधुकर ! तुम्हारी समझ से हमारा और श्रीकृष्ण का सम्बन्ध योग तक ही रहा है । क्यों बेकार में बकबक करते हो, यहाँ से दूर क्यों नहीं हो जाते । जब हम लोगों ने साथ-साथ आसव पान किया था तब तुम क

चले गये थे ? आज जो तुम निर्गुण का उपदेश देने आए हो सो हमे नहीं अच्छा लगता। तुम अपनी लचरदलीलों से हमारे दृढ अन्तस में निर्गुण का सिक्का जमाना चाहते हो सो यह तुम्हारा प्रयत्न ऐसा ही है जैसा कि कच्चे धागे से किसी के कलेवर को बाँधने या कमल तन्तुओं से मदोन्मत्त हाथी को पकड़ने का प्रयत्न। (व्याल बाल मृणालतन्तुभिरसौ रोद्धु समुज्जृम्भते, छेत्तु वज्र मणीन् शिरीष कुसुम प्रान्तेन सनह्यते। इत्यादि भर्तृहरि) यह योग जहाँ से लाए हो उन्हीं सूर के प्रभु श्रीकृष्ण को सौंप देना। जब कभी जरूरत पड़ेगी हम किसी आते-जाते के हाथ मंगा लेंगी।

विशेष — इस पद्य में उपमालंकार है।

८२ निराकारोपासना के लिए उद्धव का विशेष आग्रह देखकर सखियाँ राधा से व्यग्य करके उद्धव को बनाने की चेष्टा कर रही हैं। गोपियों में से कोई एक राधा से कह रही है कि यह श्रीकृष्ण के सगुण रूप की आराधना के निषेध का अर्थ यह है कि मोहन ने अपना रूप मागा है। जब वे यहाँ ब्रज मे रहते थे तब तुमने उनके रूप को पी लिया है और उस रूप के अभाव में वे निराकार हो गए हैं। राधा इसका उत्तर देती हुई कहती है कि हे सखि ! क्यों, तुम्हें नहीं मालूम कि वे मोहन भी तो मेरे शुद्ध एव विशद मन को अपनी बाकी चितवन से चुरा ले गए हैं। आज ये उद्धव हाथों में सूप लेकर खूब फटक कर हमसे बदला लेने के लिए चल दिए और उनका रूप लेके हमारी गई हुई चीज हमें न सौंप करके हमें कुए मे ढकेल रहे हैं। तात्पर्य यह है कि वे आत्मसात् किए हुए मोहन के रूप को खूब फटककर उसके कण कण को हमसे वापिस ले जाने का आग्रह कर रहे हैं। पर जब हम इनसे कहती हैं कि भाई हमारी चीज ? तो ये उसकी परवाह ही नहीं करते। इनके लेखे हम कुए में गिरें। सूर कहते हैं कि राधा ने सखियों से कहा कि उद्धव को यह विदित होना चाहिए कि लेन देन में सब बराबर हैं, इसमे राजा और रंक का भेद नहीं चल सकता। इसलिए दुनिया का सौदा साफ है इस हाथ दे उस हाथ ले। सो हमारे मन को वापिस करो और उनका रूप हमसे ले जाओ।

विशेष—पद्य में परिवृत्ति अलंकार है।

८३ विपत्ति के समय अपने प्रियजनों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार न पाकर

मनुष्य और भी अधिक व्यथित होता है। वह अपने समान अन्य लोगों की याद करके तथा उसके प्रियजनो के व्यवहार की अपने लोगों के व्यवहार से तुलना करने लगता है। इसीलिए जब अवधि बीतने पर भी कृष्ण न आए तो गोपियां खिन्न हुई । कृष्ण के सदेशहर उद्धव को देखकर कुछ धीरज बाधा परन्तु उनके द्वारा योग का सदेश पाकर उनका विषाद चरम सीमा को पहुँच गया। वे सोचने लगीं कि वियोगव्यथा को दूर करने का प्रयत्न तो एक ओर रहा हाय ! सहानुभूति के दो शब्द भी न कहला भेजे। उल्टे यह निर्गुणाराधना का उपदेश ! इसी समय उन्ह वियोगापन्न सीता की याद हो आई और वे सीता के वियोग दुःख को मिटाने के लिए किए गए राम के प्रयत्नों की याद कर कर उनकी कृष्ण से तुलना करने लग गई। उन्होंने कहा—

हमारे प्रियतम कृष्ण से तो सीता का पति राम कहीं अच्छा था। जो सीता की वियोग व्यथा को मिटाने केलिए भाई लक्ष्मण को साथ लेकर बन बन भटक्ते फिरे और समुद्र को एक बीता के समान अनायास ही पार करके लका पहुचे। वहा रावण को मारकर लका जलवाकर मिट्टी में मिला दी। इतने कठिन प्रयत्नों को करके उन्होंने निशाचरों से भयभीत सीता का मुह देखकर ही चैन लिया। प्रेमी से मिलने के लिए प्रियतम के ये कठिन आयोजन कितने सराहनीय हैं। उन्होंने कृष्ण के समान किसी उद्धव सघाती दूत से गीता और शास्त्रों के ज्ञान का सन्देशा भेजकर सीता को और भी अधिक व्यथित करने की कभी नहीं सोची। अब यह सन्देशा पाकर उस कुब्जारसिक का क्या भरोसा किया जा सकता है ? जब प्रेम का नशा चढा था तब इस निठुरता का विचार कहाँ किया था ? करतीं भी कैसे ? जब पीते हैं तब होश ही कहाँ रहता है ? अब जो किया उसे भोगना ही है। चलो यह कौन कम है कि उन्होंने सदेश मे योग लिखा भेजा है। न मानो तो सखि ! यह उनका प देख लो। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा अरे भाई ! वह माखन का लोभी प्रेम की परिपाटी को क्या जान सकता है। वे तो भाई उन लोगों मे से जिनका सिद्धान्त है—मरते जो हैं उन्हें मरजाने दो, घी की चुपड़ी खाने दो उन्हें तो दुनियाँ के मजे से काम है।

८४ प्रेमी अपने प्रियतम से प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। प्रेम

ो शिथिल करने वाली योग और वैराग्य की भावनाएँ भी उसे प्रियतम की दासीनता ही प्रतीत होती है। इसीलिए उद्धव से कृष्ण का योग-सदेशा ाकर गोपियों ने समझ लिया कि वे उनसे उदासीन हैं। इस निठुर व्यापार । व्यथित होकर वे अपने किए पर आठ-आठ आँसू बहाकर पश्चात्ताप करती ुई कहती हैं—

हमने जो निठुर से प्रेम किया तो उसका परिणाम दुःख होना ही चाहिए। में आज मालूम पड़ा कि उनका वह प्रारम्भिक प्रगाढ़ प्रेम हमारे मन को रा लेने के लिए एक छल मात्र था। हाय! उन्होंने प्रेम करके हमें ऐसा आनन्दित किया मानो काल के मुँह से निकाल लिया हो परन्तु आज इस सत वियोग का निर्देश करके मानो फिर हमें मौत के मुँह में ढकेल रहे हैं। आज उनके इस व्यवहार से मेरे अन्तस को जो दुःख हुआ है वह वर्णनातीत है, उसे ो कोई भुक्त भोगी ही जान सकता है। उनके कच्चे प्रेम के लिए मैं व्यर्थ ही रो-रो के आँखें लाल करती रही। सूर कहते हैं कि इन पश्चात्ताप की बातों को करके वह राधा उद्धव के आगे बुक्का फाड़के रो पड़ी।

विशेष—लोकोक्ति अलकार है।

८८. प्रियतम के अभाव में सभी ससार सूना लगता है। ससार की रमणीयता मन की रमणीयता पर निर्भर है। अगर मन चगा तो कठौती में गंगा प्रवाहित होती है और यदि मन चगा नहीं तो गगा में भी गगा नहीं दिखाई देती। आनन्दकन्द नन्दनन्दन के सहवास में जो चीजें सुखदाई थीं वे ही उनके विरह में काटखाने को दौड़ती हैं। इसी भाव को व्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

गोपाल के विरह में कुंज भी बैरी हो रहे हैं। उनके सहवास से लताएँ अत्यन्त शीतल लगती थीं पर अब उनके विरह में ये कठोर लपटों से समूह बन गई हैं। कलकलनादिनी कालिन्दी का बहना अब व्यर्थ है, पक्षियों का कलरव व्यर्थ है, कमला का विकास और उन पर भ्रमरों का गुंजन सब निरर्थक है। शीतल पवन, कपूर एवं सजीवनी चन्द्र-किरणें सूर्य के समान भूँजे डालती हैं। उद्धव! माधव से कहना कि विरह छुरी हमें काट के हमारा

अङ्ग भङ्ग कर रही है। सूर के प्रभु श्याम की प्रतीक्षा करते करते आँखें गुंजा के समान लाल हो गई हैं।

(विरह मे आनन्ददायी शीतल पदार्थ भी सन्तापदायी हो जाते हैं ऐसी कवि लोकप्रसिद्धि है। इस प्रकार के वर्णन भारतीय सँस्कृत और हिन्दी साहित्य में भरे पड़े हैं। विरहाग्नि का प्रचण्ड रूप जायसी ने बड़ा व्यापक दिखाया है। मिलाइए—अस पर जरा विरह कर गठा, मेघ साम भए धूम जो उठा। दाढा राहु केतु भा दाधा सूरुज जरा चाँद जरि आधा। औ सब नखत तराईं जरईं टूटहिं लूक, धरनि महँ परहीं। विरह साँस तस निकसै झारा, दहि दहि परवत होंहि अँगारा। इत्यादि)।

देखिए सस्कृत में एक विरहणी की उक्ति—सम्प्रत्य योग्य स्थिति रेव देव करा हिमांशोरपि तापयन्ति। पुनश्च श्रीहर्ष की दमयन्ती का कथन—अयि विधु परिपृच्छ गुरो कुत स्फुटमशिक्ष्यत दाहवदान्यता इत्यादि।

विशेष—इस पद्य में अतिशयोक्ति एव उपमालकार है।

८६ कृष्ण के सदेश पाकर उन्हें प्रति सन्देश भेजना शिष्टाचार का तक़ाज़ा है। परन्तु निर्मोही को प्रेम का प्रति-सन्देश भेजना कहाँ तक उचित होगा और वह भी ऐसे के हाथों सन्देश भेजना जो विरक्त है, प्रेम पन्थ से विमुख है। जिसके पास वियोग से छटपटाती हुई अबलाओं के लिए सहानुभूति के दो शब्द तक नहीं है। ऐसे हृदय शून्य व्यक्ति के लिए प्रेम सन्देश निरर्थक ही है। गोपियाँ पहले ही कह चुकी हैं 'तुमसों प्रेम कथा को कहिबो मनहु काटिबो घास।' वस्तुत गोपियों के सम्मुख प्रेम का प्रति सन्देश भेजने में उद्धव की शुष्क मुद्रा ही सबसे बड़ी विभीषिका है। इसीलिए वे कहती हैं—

अब सन्देश किस प्रकार से कहूँ। प्रियतम की निष्ठुरता जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब उसके लिए प्रेम का प्रतिसन्देश देना निरर्थक हो जाता है। इस निष्ठुर सन्देश को सुनकर यह शरीर चलबसना चाहता है पर मेरे नेत्र अभी तक इस पर पहरा लगाये रहे हैं कि कहीं भाग न जावें। परन्तु इस प्रकार मार-मार कर मेरा पर कब तक बिठाया जा सकता है। इन आँखों से इसका पहरा कब तक लगाया जा सकता है। हृदय म प्रति सन्देश देने के हेतु विचार उठते हैं। बड़ी कठिनाई से में उन्हें सोच सोच के उठाती हूँ परन्तु

थन के लिए मुँह मे आते ही वे उद्धव को देखते ही विलीन हो जाते हैं और मैं तथा विचार सब विशृङ्खल एव विलीन हो जाते हैं। ऐ चतुर सखियो अब तो कुछ ऐसी शिक्षा दो कि जिसके प्रियतम से भेंट हो सके। मेरी राय मे तो सूर के प्रभु श्याम के सखा उधव से भी निहोरे करके ही निर्वाह होना सम्भव है। भले ही ये हृदयहीन हों तो भी हमारा काम तो तभी बन सकता है जब कि हम इनसे अनुनय विनय करें। अपनी गरज हो तो गधे को भी बाप कहना पड़ता है नीति भी यही कहती है—स्कन्धेनापिवहेच्छत्रु कालमासाद्य बुद्धिमान्। इसलिए आओ उद्धव से ही विनती करें ताकि वे किसी तरकीब से प्रियतम से भेंट करादें।

८७ उद्धव के चले जाने के अनन्तर फिर ब्रज में कृष्ण की कोई खबर नहीं मिली। अब गोपियों की आशा बिलकुल टूट गई। वे निरवलम्ब होकर दुःख मग्न हो गईं। ऐसी अवस्था में राधा ने उन्हें बुला भेजने की एक युक्ति निकाली। उसने पथिकों से कहा कि मथुरा जाकर उनके द्वार पर यह पुकार कर कह देना कि यमुना में कालिय नाग फिर से आ गया है। सम्भव है कि उनके अन्तस् में लोकरक्षक भावना उद्दीप्त हो जाय और वे फिर से उसके वध के लिए पधार तो इस बहाने से उनसे भेंट हो जायगी। इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई विरहोन्मत्त राधा कह रही है —

ब्रज में फिर से वह बात भी न चली। तब उद्धव उनका सदेश लाये तो थे चाहे वह हमारा अनभिमत ही रहा हो। इसीलिए वह कहती है कि वह जो एक बार पुण्डरीकाक्ष कृष्ण ने उद्धव के हाथ चिट्ठी पठवाई थी वह भी चर्चा ब्रज म फिर न सुनी गई। हे राहगीर। मैं निहोरे करती हू कि तुम मथुरा म जहाँ कृष्ण रहते हैं जाओ और उनके द्वारपर खड़े होकर पुकार लगाना कि यमुना में काली नाग फिर आ गया है। पर क्या कृष्ण इस खबर को सुनकर आ जावेंगे ? क्यों नहीं ? उनकी पुरातन प्रीति को देखकर तो यही भरोसा होता है। हम पर जब उन यदुनाथ की कृपा थी उस समय की उनकी अनेक अभिलाषाओं से प्रतिपालित प्रेम का क्या ठिकाना था। यदि वनस्थली में विहार करते समय फूलों को देखकर हम उनके लिये मनचलाती तो वे ऊँचे पेड़ों पर लटकते हुए फूलों का हम गोद म लेकर डाली झुका के ले देते थे।

पर सरि। हमारे जैसी उनके छोटी बड़ी न जाने कितनी हैं। (मिलाइये—साहब तुम जनि बीसरौ लाख लोग मिलि जाहिं हमसे तुमको बहुत हैं तुमसे हमको नाहिं)। सूर कहते हैं कि इस प्रकार से पुराने प्रेम का स्मरण करके राधा का हृदय व्यथित हो गया।

८८ मानव हृदय का स्वभाव है कि विरोधी परिस्थितियों के उपस्थित होने पर वह अपने प्रियतम के लिए और भी अधिक उत्कंठित हो जाता है। इसी कारण उद्धव के मुख से निर्गुण का सदेश सुनकर गोपियों के हृदय में प्रेम और भी तीव्र हो उठा और उनके नेत्र उस सर्वाङ्ग सुन्दर कृष्ण को देखने के लिए अकुलाने लगे। अतएव गोपियाँ उद्धव के निर्गुणोपदेश से व्यथित होके कहने लगीं—

उद्धव बताओं कि इन अपने नेत्रों को कैसे रोकूँ? तुम्हारी बातें सुनकर गुणों की याद करके ये उन्हें देखने की उत्कण्ठा से और भी अधिक सन्तप्त होते हैं। हमारे ये नेत्र उनके सुन्दर मुखचन्द्र के लिए कुमुद और चकोर हैं जिन्होंने उसे देखकर ही विकसित होना सीखा है और जो उसी ओर एकटक देखकर ही सन्तुष्ट होते हैं। ये नेत्र उन सजल घनश्याम की रूप माधुरी के लिए परम प्यासे मयूर और चातक हैं और उनके चरण कमलों पर अटल अनुराग करनहारे ये भ्रमर और हस हैं। यदि उनका गतिविलास (लीला-पूर्णगमन) जल प्रवाह है तो ये हमारे नेत्र उसी जल प्रवाह के मीन हैं। उनके उरस्थल पर चमकते हुये मणि प्रभाकर के लिए ये नेत्र चक्रवाक हैं और उनकी मुरली माधुरी के लिए मृग है। इस प्रकार हमारे नेत्र उनकी प्रत्यङ्ग व्यापिनी रूप माधुरी पर मुग्ध रहे हैं और उस रूप के अभाव मे सारा ससार सूना प्रतीत होता है। सूर के प्रभु श्री नन्दन का सर्वांग सौन्दर्य सर्वथा अद्वितीय है। यदि वह अद्भुत शोभावान् न होता तो ससार का सौन्दर्य उनके अभाव में फीका न पड़ता। वस्तुतः वही सौन्दर्य तो सासारिक सौन्दर्य का मूल है उसके सन्निधान से ही ससार सुन्दर है। उसके हट जाने पर इस असार ससार में रमणीयता कहाँ?

विशेष—इस पद में रूपक अलंकार है।

८६. प्रेमी के वियोग में मानव हृदय का उन्माद इतना बढ़ जाता है कि उसका विवेक जाता रहता है। इस उन्माद दशा में वियोगियों के विविध व्यापारों में से एक यह भी है कि वे अपने प्रेमी से अपने हृदय की दशा का निवेदन करें। चिट्ठियाँ लिखें और संदेश भेजें। गोपियों ने भी कृष्ण के वियोग में यही किया। अनेक संदेश भेजे परन्तु कोई भी उत्तर न मिला। इस उत्तर न मिलने का कारण कल्पित करती हुई गोपियाँ कह रही हैं—

हमारे संदेशों से तो मथुरा के कुए भर गए। जो भी राहगीर यहाँ से एक बार निकले उन्होंने फिर आने का नाम नहीं लिया। ऐसा मालूम होता है कि कृष्ण ने उन्हें समझा बुझा दिया जिससे कि वे फिर इधर नहीं आए या शायद बीच में ही मर गए। नन्द नन्दन अपने तो भेजते नहीं हमारे भी समेट कर अपने ही पास रख लिए। कृष्ण के पत्र न लिखने का कारण बताती हुई वे कहती हैं कि शायद वहाँ मथुरा में स्याही भी चुक गई, कागज भी गल गये और दावानल से शरकंडे भी जलकर भस्म हो गए फिर बताओ चिट्ठी कैसे लिखी जाय, विशेष कर तब जब कि नेत्रों के पलक कपाट भी बंद हो रहे हैं। साधनों का अभाव लिखने में बाधा उपस्थित कर रहा है।

विशेष—अतिशयोक्ति एवं रूपक अलंकार है।

६०—प्रेमी का हृदय अपने इष्ट से प्रेम पाकर ही पुलकित होता है और यदि उसे प्रेम नहीं मिलता तो वह अस्वस्थ रहकर अन्त में प्रेमी से विमुख हो जाता है। यह है प्रेम की सामान्य परिपाटी परन्तु दृढ़ प्रेम एक तरफ होकर भी प्रेमी से अवहेलना होने पर भी अटल रहता है। गोपियों का प्रेम जैसा कि वे इस पद में वर्णन करती हैं दूसरे प्रकार का अर्थात् दृढ प्रेम है। अतएव उनके इष्ट श्रीकृष्ण से प्रेम न पाकर भी वे निरुत्साहित नहीं होतीं। वे उद्धव से कहती हैं—

हे मधुकर! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण से प्रेम कैसा? प्रेम तो वहीं सफल है जहाँ वह दोनों ओर समान हो। परन्तु यहाँ तो प्रेम एक ओर से ही है। हमारे प्रियतम की रीति तो जल सूरज और बादल की सी है। उनसे प्रेम करने वालों मछली कमल और चातक की आयु प्रेम साधना में ही बीत जाती है और उन्हें प्रियतम का प्यार नहीं मिल पाता। मीन को जल के विछोह में

तड़पते ही रहना होता है और कमल सूर्य के अभाव में जलकर ही दम तोड़ते है। चातक भी जन्म भर पिउपिउ की पुकार करके भी अपने प्रियतम जलद के प्रेम से वंचित रहता है। किन्तु हे शठ ! प्रेम की यह पद्धति तो नहीं है यह सब जानते हुए भी वे अपने प्रेम में अटल रहते हैं। उनके आग्रहपूर्ण मन इस प्रेम का ऐसा निर्वाह करते हैं कि प्रियतम का प्यार पाने में पराजित होकर भी वे विजयी हैं। जिस प्रकार युद्धभूमि में सच्चे योद्धा सिर कटने के बाद भी केवल धड़ से ही लड़ते हुए प्रतिष्ठा पाते हैं, मर जाने पर भी विरुद प्रशस्ति के अधिकारी होते हैं उसी प्रकार मीनादि भी अपने अटल प्रेम के कारण पराजित होकर भी विजयी हैं। सूर कहते हैं क्यों न हो प्रेम का पारावार प्रियतम से की हुई अवहेलनाओं की बालू की दीवालों के समान अकिंचित्कर विचारों के बन्धन मे थोड़े ही रह सकता है। सच्चा प्रेम प्रियतम से पुरस्कार न पाकर आराधना का आदर्श बन जाता है जो भक्ति पथ के पथिकों के लिए प्रज्वलित दीपशिखा का काम करता है।

विशेष—इस पद में क्रमालकार और निदर्शनालंकार हैं।

६१ अपने प्रियतम के प्रेम में दृढ़ता न देखकर गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हुईं। व्रज में रहते हुए तो कृष्ण ने प्रेम दिखाया पर मथुरा जाकर बिलकुल निर्मोही हो गए। यथार्थ में लालन पालन करने वाले नन्द यशोदा से नाता तोड़ के अपने माँ बाप से जा मिले। यह भला प्रेम की पुजारिनों को कैसे सह्य होता। इसलिए कृष्ण की कृतघ्नता पर फब्तियाँ कसती हुई गोपियाँ उद्धव से कहने लगी—

अरे भई उद्धव ! मथुरावासियों का कौन विश्वास करे। उनके मन में कुछ और तथा मुख (वचन) में कुछ और होता है। कुछ सोचते और कुछ करते हैं। बना-बनाकर चिट्ठियाँ लिख भेजते हैं। केवल स्वार्थ के मित्र हैं। जिस प्रकार कौआ बड़े चाव से चुग्गा खिला के कोयल के बच्चों को पालता है पर बसन्त आने पर वे कुहू-कुहू करके अपने कोकिल कुल में जा मिलते हैं ठीक इसी प्रकार नन्द-यशोदा ने चाव से कृष्ण को पाला पर जब यौवन का बसन्त आया और वे किसी योग्य हुए तो अपने माँ-बाप के यहाँ चले गए। ऐसे ही जैसे भौंरा पुष्पों का अशेष गन्ध लेकर चलता बनता है, फिर लौटकर उनको

खैर-खबर भी नहीं लेता ऐसा ही कृष्ण ने हमारे (गोपियों के) साथ किया। मनमानी रँगरेलियाँ करके फिर बात भी न पूछी। सूर कहते हैं कि वस्तुतः श्याम शरीर वालों से मन लगाने से पश्चाताप को छोड़कर और कुछ नहीं हाथ लगता। इसलिए उनसे सम्बन्ध न रखना ही श्रेयस्कर है।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

६२ श्रीकृष्ण से आये हुए योग के सन्देश को सुनकर गोपियाँ बड़ी विस्मित हुई। उनके मन को खुद हथिया के अब योग बताना कितना बेतुका है। योग चित्त-वृत्ति के निरोध का नाम है परन्तु जब उस वृत्ति का आश्रय ही कृष्ण ने ले लिया फिर योगका आधान कहाँ और कैसे हो सकता है। आधान छीन-कर आधेय सौंपना सरासर अनीति है। इसीलिए गोपियाँ आपस में कह रही हैं—

कृष्णजी राजनीति (कूटनीति) के पंडित हो गए हैं। तुमने उद्धव की बात कुछ समझी ? इसका कुछ निष्कर्ष निकाल पाया ? उनकी बातों को समझना सहज नहीं है। एक तो वे यों ही बड़े चतुर थे फिर प्रेम-प्रदर्शन में तो उनकी चतुरता और भी अधिक निखर आई है। उनकी प्रतिभा का महत्त्व तो तभी समझ लिया जब उन्होंने युवतियों के लिए योग भेजा। सखी ! सचमुच पुराने लोग बड़े भले होते हैं जो बेचारे पराई भलाई करने के लिए सब कुछ छोड़कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। भावार्थ यह है कि ये जो उद्धव सब काम धन्धा छोड़कर इधर-उधर घूम रहे हैं सो इन्हें भला न समझो, ये जरूर कोई दाव पेच है। खैर जो हो पर यह तो देखो कि उन्होंने चलते समय जो हमारे चित्त चुराये थे वे तो हम आज तक न लौटा सकीं फिर इस योग का आधान कहाँ है ? हमारे मनोवृत्ति के आधार को हमसे छीन योग अपनाने को कहा जा रहा है यह कितना बड़ा अन्याय है। परन्तु जो दूसरों को मोहित करके नीति रीति को तिलांजलि देने पर विवश कर देते हैं उनसे नीति-पालन की आशा करना व्यर्थ है। परन्तु कूटनीति को राजनीति कहना अनीति है। सूर कहते हैं कि राजनीति तो राजधर्म के पालन को कहते हैं और राज-धर्म का यथार्थतः पालन वहीं सम्भव है जहाँ कि प्रजा नहीं सताई जाती। (मिलाइये—राजा प्रकृति रञ्जनात्—कालिदास)।

६३ सन्देश में हम सहानुभूति के दो शब्दों की आशा कर रही थीं पर मिला

नीरस योग। इससे सांत्वना के स्थान पर सन्ताप बढ़ रहा है। इसीलिए गोपी उद्धव के सम्मुख अपनी सखियों से कह रही है—

इस योग के ज्ञान को सुनते ही मेरे शरीर में अग्नि व्याप गई। यों पह ही हम विरहानल से सुलग रही थीं कि उद्धव ने योग का उपदेश देकर औ और फूँक दिया फिर क्या था लौ फूट निकली। हमारे लिए योग और कुब के लिए भोग। कैसी बेतुकी बात है। उद्धव! तुम्हें यह शिक्षा किसने दी सिंह भी हाथी के माँस को छोड़कर घास खाता है यह अनहोनी (केहरि व नहिं चरि सके जो व्रत करे पचास) बात सुन रही हूँ। तात्पर्य यह है कि अब सगुणमती निर्गुण को कभी नहीं अपना सकतीं। विधि के विधान की बा ही दूसरी है जो उसने निश्चित करके लिखदी वह कर्म रेखा कैसे मिट सक है? यह वियोग संकट और कृष्ण की उदासीनता सब कुछ मिलकर भी ह अपने व्रत से विचलित नहीं कर सकता। यों रूप-रंग से यही अनुमान होता है कि भगवान् ने हमारे लिए भोग और कुब्जा के लिए योग बनाया होगा प श्रीकृष्ण की कृपा विधि के लेख का भी विरोध कर सकती है। उनकी जिस प भी कृपा हो जाय उसे सभी सिद्धियाँ हो जाती हैं। वस्तुतः सिद्धि भगवत् कृपा पर निर्भर है लौकिक या अलौकिक उपकरणों पर नहीं।

विशेष—अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

६४ जब उद्धव ने योग का सन्देश गोपियों के सम्मुख रखा तो वे बड़ी विस्मित हुईं। सोचने लगीं आखिर यह अघटनीय घटना घटी कैसे? उन्होंने अनेक मनगढ़ंत कल्पनाओं के आधार पर उसके कारणों का अन्दाज लगाया। उन्हीं कारणों में से कुछ कारण इस पद में वर्णन किए गए हैं। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

तुम्हारे ज्ञानोपदेश का रहस्य अब खुला! वह हमारा प्रियतम राजकीय गति विधियों को क्या जाने। आखिर बेचारा अहीर ही तो ठहरा। हम सबको अज्ञानी जानकर वे बिचारे छोड़ गए और हमें शायद ज्ञानी बनाने के लिए यह ज्ञान भिजवा दिया और उन्हें अकेली कुब्जा ही ज्ञानी दिखाई दी इसलिये उसी से मन लगा बैठे। पर वास्तव में बात ऐसी नहीं थी यह उन्हें बाद में मालूम पड़ा। पर अब पछताने से क्या होता है? सो बेचारे खिसियाकर लज्जा

के मारे अब यहाँ नहीं आते। (और खिसियाना भांड दिवाली गाते वह भी शान बघारने लगे)। परन्तु उद्धव ! हम विश्वास दिलाती हैं कि इसके लिए बनाएंगी नहीं तुम जाकर उन्हें बाँह पकड़कर लिवा लाओ। भले ही कृष्ण लाखों ब्याहलें और कुबरी सरीखी दसों को घर में रख लें पर अन्त को कृष्ण रहेंगे हमारे ही। इस प्रकार से कहती हुई गोपी दूसरी से यह सोच कर कि कहीं उद्धव उन्हें जाके यह सब जलता न दें ताकि वे और भी सतर्क हो जायें और फिर न आवें—रोककर कहती है कि सखी ! सुनो अभी से कुछ मत कहो। माधव को आ जाने दो और जब वे सूर के स्वामी श्रीकृष्ण मिल जायँ तो खूब जी भरकर मजाक कर लेना।

विशेष—अन्त अहीर विचारों से प्रियतम विषयक रति को अप्रिय शब्दों से व्यक्त करने के कारण बिब्बोक नामक हाव है।

६५. गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे अन्तःकरण में कृष्ण ऐसे अड़ गए हैं कि निकल ही नहीं सकते फिर दूसरे के लिए यहाँ स्थान कहाँ से आ सकता है। वे भले हों या बुरे हम उन्हें छोड़ नहीं सकते। इसी भाव को अभिव्यक्त करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं—

उद्धव हमारे हृदय में माखन चोर गड़ रहे हैं। योग को अपनाने के लिए उन्हें उखाड़ भी फेंके पर क्या करें वे किसी भी प्रकार नहीं निकलते। बात यह है उद्धव कि वे हृदय में जाके तिरछे होके फँस रहे हैं इसलिए अन्तर्वट को बिना फोड़े वे नहीं निकल सकते। भाव यह है कि कृष्ण की बाँकी अदाएं हृदय में ऐसी जम गई हैं कि उन्हें अलग करना हमारे हृदय को तोड़ फोड़ के नष्ट करना है। पर यदि कहो कि वे तो गँवार अहीर हैं उनसे प्रेम करना हमें फबता नहीं तो हमारा कहना यही है कि यशोदा पुत्र यद्यपि अहीर है तो भी हमसे छोड़े नहीं जा सकते। यदि वे अहीर हैं तो हम भी तो अहीरिन ही हैं। इससे क्या ? अब तो वे महाकुलीन यदुवंशी हैं इसलिये तुम्हारा प्रेम तुम्हारे सम में होना चाहिये ? इसका उत्तर देती हुई गोपियाँ कहती हैं—वे अभी मथुरा जाके यदुवंशी कुल के बन गये अवश्य पर हमें बड़े नहीं लगते। जिनके वे पुत्र कहला रहे हैं वे वसुदेव और देवकी कौन हैं उनसे हमारी जान पहिचान नहीं है। हम तो उन्हें नन्द यशोदा का प्रियलाल समझती हैं और उनका

कृत्रिम महत्व हमारे प्रेम में बाधक नहीं हो सकता। सूर कहते हैं कि गोपियों ने अन्त में साफ साफ कह दिया कि हमें कृष्ण को बिना देखे चैन नहीं, हमें इस वियोग में भी और कोई सूझता ही नहीं है। हम क्या करें लाचार हैं।

६६ सगुणोपासना को तिलाञ्जलि देके निर्गुण को अपनाना असम्भव है विशेषकर गोपियों के लिए। वैसे भी निर्गुण पथ बड़ा गहन और कठिन है। ऐसी परिस्थिति में गोपियाँ कहती हैं कि हम अपने सगुण को निर्गुण से किसी प्रकार नहीं बदल सकतीं। वे उद्धव से कहती हैं—

अरे! हम गोपाल को कैसे दे सकती हैं अर्थात् उन्हें अपने मन से कैसे हटा सकती हैं? और उद्धव की चिकनी चुपड़ी बातों से निर्गुण को कैसे अपना सकती हैं। उद्धव हमको निर्गुणोपासना के बाद धर्मार्थ काम मोक्ष सभी परम पुरुषार्थों की प्राप्ति बताते हैं परन्तु यह नहीं सोचते यह असि धारा व्रत कितना कठोर है। आखिर उसे हम पायें कहाँ? उसकी व्यापकता पर मनन करते हुए शास्त्र नेति नेति कह के गाते हैं अर्थात् वह असीम और हम ससीम हैं। ससीम को असीम की प्राप्ति कैसे हो सकती है। यदि यह कहो कि मन में उसका मनन करना ही उसकी प्राप्ति है तो वह भी शास्त्रसगत नहीं है। यदि विचार करके देखा जाय तो मन भी वहाँ भटकता ही रहता है कभी लक्ष्य पर तो पहुँचता नहीं। इसीलिए तो उपनिषदों में कहा है—यन्मनसान मनुते। इसलिये सूर की गोपियाँ कहती हैं कि मनसा भी अचिन्तनीय उस निर्गुण के लालच में सगुण श्याम को कौन छोड़ सकता है और सखी! इस सरल मार्ग को छोड़कर उस कठोर दुर्गुण पथ से कौन हृदय तक पहुँच सकता है। किसकी इतनी ताब है!

६७ कृष्ण के वियोग में गोपियों का सौन्दर्य विदा हो गया। उनके नेत्रों को अब विविध उपमानों की समता देकर वर्णन करना अनुचित है। वास्तव में ब्रजलोचन बिना उनके लोचनों के लिये प्रसिद्ध उपमानों में से किसी से साम्य करना अन्याय है। इसीलिए गोपिया उद्धव से कहती हैं—

हमारे नेत्र अब एक भी उपमा ग्रहण करने योग्य नहीं। सदा से कवि लोग नेत्रों के लिये विविध उपमान प्रस्तुत करते चले आए हैं परन्तु उन्होंने हमारी वियोगावस्था के नेत्रों का स्मरण करके कोई उपमान नहीं

चुना। नेत्रों के लिए कवि लोगों के प्रसिद्ध उपमान चकोर से यदि हमारे नेत्रों की समता की जाय तो वह मिथ्या है। क्योंकि यदि ये चकोर होते तो उस प्रियतम के मुखचन्द्र के बिना कैसे जीते परन्तु ये उनके अभाव में भी जी रहे हैं अतः इनको चकोर कहना उसके नाम पर बट्टा लगाना है। ये भ्रमर होते तो श्रीकृष्ण के मुख रूपी कमल कोष से बिछुड़ने पर यों ही निठल्ले न बैठे रहते अपितु जहाँ भी वह कमल है वहीं उड़ जाते । इनका तीसरा उपमान है खजन सो वह भी ठीक नहीं। यदि ये लोगों के मन को प्रसन्न करने के लिए खजन कहे जावें तो भी अनुपयुक्त है। खजन किसी के पास जाने पर यों ही आसानी से पकड़ में नहीं आता वह वहाँ से उचटकर भाग जाता है। परन्तु हमारे ये नेत्र कभी भागने का उपक्रम नहीं करते और काम के पास आते ही उनके हाथों बिक जाते हैं। नेत्रों के लिए एक और उपमान मृग चुना है। वह भी हमारी आँखों के लिए ठीक नहीं जँचता। क्योंकि यदि ये मृग होते तो आज जब कि उद्धव व्याध बनकर शिकार करने आए हैं तब इन्हें इनके देखते देखते बन में ऐसी जगह भाग जाना चाहिए था जहाँ इनके साथ कोई न लग पाता । (विशेष द्रष्टव्य—नेत्रों का उपमान यद्यपि मृग के नयन हैं परन्तु मृगों के नयनों का साम्य अधिकतर 'मृगनयनी' इस लुप्तोपमा द्वारा व्यक्त किया जाता है। अत एव लुप्त पद नयन का विचार न करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मृग ही नयनों का उपमान है । इसी आधार पर यह कल्पना युक्ति सगत ठहरती है) वस्तुतः ब्रजलोचन श्रीकृष्ण के अभाव म हमारे य नेत्र कैसे ! अर्थात् न त नाम ही न रहे फिर इनके लिए कोई उपमान कैसे घटित हो सकता है। यह सोच कर हुए प्रतिक्षण हमारा दुःख बढाता ही जाता है। सूरदास कहते हैं कि गोपियो ने नेत्रों के सब उपमानों को अनुपयुक्त बताकर अन्त म कहा कि हमारी वियोगावस्था में इन नेत्रों के लिए अशत उपयुक्त एक ही उपमान है और वह है मीन। क्योंकि ये मीन के समान पानी का साथ कभी नहीं छोड़ते। वियोग दुःख में आँसुओं से प्लावित नेत्रों के गढ्ढों में ही ये मत्स्य समान शबल नेत्रों की पुतलियाँ रहती हैं।

विशेष—इस पद में रूपक तथा हीनोपमालंकार है।

६८ अभिमत होते हुए भी अतिथि के आग्रह को अस्वीकार कर देना अखर पड़ता है। परन्तु विवशता में सभी मर्यादाएँ टूट जाती हैं। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम आपके कथन खूब समझती हैं। आप हमारे अहित की नहीं कहते पर क्या करें हमारी आँखें नहीं मानतीं। हम विवश हैं। इन नेत्रों का हाल बड़ा विचित्र है—

उन्होंने हरि जू के मुख को देखकर पलक मारना भी भुला दिया। पलक एवं पट से अनावृत होने के कारण ये पुतलियाँ उस दिन से नंगी ही रह रही हैं। इन्होंने उस दिन से घूँघट के वस्त्र को तिलांजलि दे दी और नंगी उघारी रात दिन गलियों में ही (कृष्ण के दर्शन की आशा में) घूमती रहती हैं। प्रियतम की रूपकांति की ओर टकटकी लगाकर देखती हुई ये अपनी स्वाभाविक समाधि में तल्लीन रहती हैं। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि हम अपनी सुमति से जब विचार करती हैं तो आपके वचनों का मर्म अन्तःकरण से समझ लेती हैं। हम जानती हैं कि आपका कथन अहितकारी नहीं है। परंतु करें तो क्या करें ये हमारे हठी नेन हमारा कहना ही नहीं मानते। हमारे लाख समझाने पर भी ये लोभी नेत्र उसी रूप माधुरी पर मस्त रहते हैं और किसी भी प्रकार उसे छोड़कर आपके हितकारी वचनों पर चलना नहीं चाहते। यही विवशता है कि हमें आपके कथन की अवहेलना करनी पड़ रही है।

विशेष—इस पद में उत्प्रेक्षालंकार है।

६६ वियोग की व्यथा मर्मान्तिक होती है और बढ़ते २ इतनी बढ़ जाती है कि वियोगी की जान पर आ बनती है। इसी दशा में वियोगी अपने हित लोगों के लिये विशेष चिन्ता का पात्र बन जाता है। वे लोग उसका विविध प्रकार से उपचार करते हैं। परन्तु ये उपचार सन्ताप को कम करने के बजाय उसे और भी बढ़ा देते हैं और हितू अपने 'नारद कुपीणो वानरं वाक्र' वाले उपचारों को देखकर विस्मित एवं वंचित होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाते हैं। प्रस्तुत पद में वियोगिनी राधा के इसी प्रकार के उपचारों का वर्णन है। वियोगिनी के मन बहलाव के लिए गान वाद्य का आयोजन किया गया है। वीणा के तार झनझनाकर एक मादक मोदकता उड़ेलने लगे। पर यह

ो ? 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' वा
योगिनी चिल्ला उठी—

हाथ में रखी हुई वीणा को दूर हटा दो ।
नों से चन्द्र के रथ में जुते हुए मृग रुक गए
ता और रात नहीं बीतती । लोगों को यह बात
नोद के साधन भी मनोव्यथा को उकसाने वाले
था की तीव्रता में यह सब संभव है और वियो
नी जा सकती । प्रेम पाश के बन्धन की व्यथा कोई भुक्त भोगी ही जान
कता है। 'जाके पाँव न फटी बिवाई सो क्या जाने पीर पराई।' ऐ सखी।
ब से कमलनयन प्रियतम कृष्ण बिछुड़े हैं तब से आँखों से आँसू गिरना
रुकता नहीं । यह शीतल चन्द्रमा भी अंगारे बरसाता है । (मिलाइए—चंदनं
शीतलं लोके चन्दना दपि चंद्रमाः' परन्तु वियोगियो के लिए 'करा हिमांशो-
पि तापयन्ति', दधिसुत किरन भानु भइ भुंजै—सूर) फिर बताओ धैर्य कैसे
धरा जा सकता है । उपचारों से वियोग व्यथा बढ़ने पर सूर कहते हैं कि हे
भु तुम्हारे वियोग से पीड़ित लोगों का कोई इलाज नहीं । सभी उपचार
यर्थ हैं । (राम वियोगी न जिए जिएँ तो बौराहोहिं—कबीर ।

विशेष—इस पद्य में अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।

१०० प्रोषितपतिका राधा की विषण्ण मूर्त्ति और उस पर 'छतेद्वार भिवा-
हमम्' है निर्गुण का उपदेश । इससे उसकी क्या दशा हुई होगी यह सहृदय
वयं जान सकते हैं । गोपियाँ राधा की अवस्था और उस पर उद्धव के निर्गु-
णोपदेश के प्रभाव को वर्णन करती हुई कहती हैं—

वृषभानु की पुत्री राधा नितान्त मलीन है । उसने अपनी साढ़ी को इस-
लिए नहीं धुलवाया कि रति केलि के समय वह साड़ी प्रियतम कृष्ण के स्वेद
से आलिंगनावस्था में भीग चुकी है । धुलने पर उसका महत्त्व भी धुल जाने
का भय है । वह सदा नीचे मुँह किए रहती है, ऊपर को नहीं देखती । उसकी
मुद्रा पराजय के कारण शिथिल हुए जुआरी की मुद्रा के समान है । बिखरे हुए
बाल और कुंभलाए हुए मुख से वह चन्द्रकिरणों से आहत कमलिनी सी श्री
हीन होरही है । श्रीकृष्ण के योग संदेश को सुनकर वह अनायास ही मर गई।

६८ अभिमत विरहिणी और उस पर भी मधुकर की भयकर मार। फिर
घटता है। पडती। सूर कहते हैं कि अकेली राधा ही नहीं अपितु श्याम के
कहती हैं सभी श्याम को प्यार करनेवाली व्रज बनिताएँ इसी प्रकार जीरही हैं।
कग विशेष—उत्प्रेक्षा और उपमालङ्कार है।

१०१ गोपियों के सगुण के प्रति आग्रह को देखकर उद्धव अवश्य विस्मित
हो रहे होंगे परन्तु गोपियाँ कहती हैं कि जिसने सगुण का स्वाद ले लिया उसे
और कुछ नहीं सुहाता। पर हाँ यह जरूर है कि यह प्रेम भी एक बड़ी बला
है। वह सचमुच भाग्यशाली है जो इस प्रेमपाश में पड़े ही नहीं। उसके लिए
ज्ञान और वैराग्य की बातें करना आसान है। गोपियाँ कहती हैं—उद्धव!
सचमुच तुम बड़े भाग्यशाली हो। क्योंकि तुम स्नेह के बन्धन से सदा दूर
रहते हो और तुम्हारा मन कहीं आसक्त नहीं होता। जिस प्रकार कमल पत्र
पानी मे रहते हुए भी जल के द्रव से अलग रहता है उसी प्रकार तुम भी (पद्म
पत्र मिवाम्भसा) रागादि के प्रपच रूप इस विधि प्रपच में रहते हुए भी उसके
आसक्ति आदि से सर्वथा अछूते हो। तुम वह चिकने घड़े हो जिसे पानी में
डुबा देने पर भी उस पर पानी का तनिक भी असर नहीं होता। तुम धन्य हो
जिन्होने प्रेम नदी में प्रवेश ही नहीं किया और तुम्हारी आँख किसी सौन्दर्य
में नहीं उलझी। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) परन्तु हम तो भोली
भाली अबलाएँ हैं (तुम तो सबल होने से इन चीजों से बचे रहे) जो प्रिय
तम की रूप माधुरी पर गुड़ पर चीटीं की तरह एकदम आसक्त होगई।

विशेष—इस पद म रूपक और उपमालङ्कार है।

१०२ उद्धव से निर्गुण का उपदेश सुनकर गोपियाँ कहती हैं कि हमारे मन
पर श्याम रग ऐसा गाढ़ा चढ रहा है कि धुल नहीं सकता। फिर यह निर्गुण
का रग कैसे चढ सकता है। यदि कहो उसी पर निर्गुण का रग भी चढ़ा
दिया जाय तो हानि है क्या? यह कैसे सम्भव है क्योंकि 'कारी कामरी' पर
दूसरा रग कैसे चढ सकता है। कोई भी रग उससे मिलकर श्याम रग को ही
पक्का करेगा। अतएव वे कहती हैं—

हे उद्धव! हमारा मन अब और अन्यासक्त नहीं हो सकता। इस पर
श्याम का रग पहले ही चढ चुका है और श्याम रग ऐसा पका रग होता है

कि लाख धोने पर भी नहीं छुट सकता। 'धोएहूँ सौ बेर के काजर होय न सेत' वाली बात है। इसलिए भलाई इसी में है कि कृष्ण अब कपट बचनों को छोड़ कर वही करें जो शुरू से करते रहे हैं। प्रेम की सरस बातें ही हमारे लिए हितकर होंगी यह नीरस योग हमारे किस काम का है? अरे मधुप! हमें यह योग तो इस प्रकार हेय लगता है जैसे तुम्हें चंपा का फूल। सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी चपा भ्रमर को अच्छा नहीं लगता। किसी ने ठीक ही कहा है—'चंपा तोमें तीन गुण रूप रंग अरु बास। अवगुण तोमें एक है भँवर न आवे पास'। इसी प्रकार सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी योग हमें नहीं रुचता। जो भाग्य का लेख है वह अब कैसे मिटाया जा सकता है। हाथ की रेखायें अमिट हैं। इसलिए आप ही बताएँ कि क्या तरकीब की जाय कि जिससे यह भाग्य का लेख मिट सके। पुराने लोग तो यह कह गए हैं—'यत्कि चिद्विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः'। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि अच्छा हो आप हमें श्याम मुख के दर्शन करावें क्योंकि वही मुख हमारे जीवन का आधार है।

विशेष—उपमालङ्कार।

१०३ उद्धव ने ब्रज में आकर गोपियों को अपना परिचय देते हुए अपने को श्रीकृष्ण का सेवक बताया। अब उनके मुख से योग और निर्गुण की बातें सुनकर वे सोचने लगीं कि यह दास कैसा कि जो अपने स्वामी को छोड़कर दूसरों के गीत गाता है। यह तो वही बात हुई कि 'खाएं खसम का और गीत गाएँ भैया के' पर यह तो आदर्श स्वामिभक्ति नहीं है। गोपियाँ अपने प्रेम को अपरिपक्व और आदर्श की सीमा से बहुत नीचे देख के पश्चात्ताप करती हुई उद्धव से कहती हैं—

उद्धव! न तो हमीं लोग सच्चे अर्थ में हरि के वियोगी हैं और न तुम्हीं उनके यथार्थतः दास हो। हम लोग तो सच्चे वियोगी इसलिए नहीं कि कम से कम नाम मात्र को ही सही पर हमारे अन्तस् में प्राण रह तो रहे हैं और तुम आदर्श सेवक इसलिए नहीं कि हरि को छोड़कर शून्य की सेवा करते हो। आदर्श वियोगी मीन है जो पानी से बिछुड़ते ही जीवन की आशा छोड़के मरण की शरण लेते हैं। और आदर्श दास्य पपीहा है जो प्यासे रहकर भी

अपने दास्य भाव का सदा निर्वाह करता है। किसी ने ठीक ही कहा है--एक एव खगो मानी चिरजीवतु चातक.। म्रियते वा पिपासाया याचते वा पुरन्दरम्। सच्चा प्रेम था राजा दशरथ का जिन्होंने प्रियतम राम के बनवास जाते ही उनके वियोग में प्राण त्याग दिये। हमारा प्रेम और वियोग सब विडम्बना ही है। यद्यपि हमने भी ससार के उपहास की अवहेलना करके इस के प्रभु श्याम से दृढ प्रेम करने का दावा किया था पर उनके वियोग में इन प्राणों का परित्याग न करके,उस प्रेम को बदनाम ही किया है।

विशेष--उदाहरण अलङ्कार है।

१०४ उद्धव के बार-बार योग का उपदेश देने पर अत्यन्त व्यथित होकर गोपियाँ कहने लगीं—उद्धव! जो तुमने निर्गुण और योग की बात कही है उसे फिर मत कहना। यदि तुम हमारा जीवन चाहते हो तो बस अब चुप ही हो जाओ वरना तुम्हारे मर्मान्तक व्यथादायी उपदेशों से हमारा प्राणान्त ही होना निश्चित है। तुम्हारे वचनों से हमारे प्राणों पर चोट लगती है और तुम हँसी समझ रहे हो। सचमुच इस विरह व्यथित जीवन से तो काशी करवट ले के (काशी जाके अपने को आरे से चिरवाके) प्राण देदेना कहीं अच्छा है। हमारा अभाग्य कि जब कृष्ण पूरब गए तब उन्होंने यह योग हमारे लिए लिख भेजा। इसकी व्यथा से हमारा शरीर जलकर भस्म ही होकर रहा। अब जो आप कह रहे हैं वह केवल श्मशान को जगा रहे हैं। उद्धव! हम निर्जीव ही हो चुकी हैं इसलिए या तो उस सौन्दर्य राशि को लाकर मिलादो या हमें अपने साथ ले चलो। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि यदि तुमने किसी तरह हमें उनसे न मिलाया तो हमारा मरण ही समझो और इसकी हत्या तुम्हारे सिर लगेगी। इसलिए इस पाप से बचने के लिए उन्हें लाकर मिलादो इसी में भलाई है।

१०५ गोपियों के बार-बार मना करने पर भी उद्धव अपनी ही धुन में गाये जा रहे हैं—इस पर गोपियाँ व्यग्य करती हुई उद्धव से कहती हैं—

उद्धव! तुम हमें वियोग का प्रतिकार बताने आए हो पर पहले अपना तो इलाज करो। हम तुम्हारी भलाई की कहती हैं पर तुम्हें अहित की लगती है। इसलिए तुम हमारी न मानकर अपनी ही हाके जा रहे हो। हम हृदय से

कहती हैं कि तुम जाके कुछ अपना इलाज करो। कुछ कहना चाहते हो और कुछ कह डालते हो। यह तुम्हारी जक जक अच्छा लक्षण नहीं है। अब हम चुप ही रहेंगे क्योंकि जबाब भले को दिया जाता है पागलों और सन्निपात के बकवादियों को नहीं। हम तुमसे तो हार मान गई हैं। मालूम ऐसा ही होता है कि इसी जक-जक की बीमारी के कारण कृष्ण ने तुम्हें इधर खेद दिया। तुम जल्दी ही इन्हीं पैरों मथुरा चले जाओ क्योंकि तुम्हारा शरीर रोग ग्रस्त है और घर पर तीमारदारी अच्छी होगी। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव को परामर्श देते हुए कहा किसी अच्छे वैद्य को तलाश करके इलाज प्रारम्भ करदो क्योंकि तुम्हारा रोग असाध्य हो रहा है और तुम मरणासन्न हो रहे हो।

१०६ अपने दिनों को इस प्रकार गिरा हुआ तथा कुब्जा को सौभाग्यवती देख कर गोपियाँ झल्ला उठीं और उद्धव से कहने लगीं—

उद्धव! जिसके भाग्य में जो लिखा है वही उसे भोगना होता है। यह हमारा अभाग्य है कि कृष्ण ने कुब्जा को अपनी पटरानी बना कर हमारे लिए यह वैराग्य का सँदेशा भेजा है। देखो भाग्य का खेल कि ब्रज सुन्दरियाँ तो वियोग व्यथा से उन्मत्त हो छटपटाती फिरती हैं और दासी के 'माथ सुहाग को टीको' लगाया जा रहा है। लोग कहते हैं कि राजाओं के होते गुलामों को टीका नहीं होता पर भाग्य सब करा देता है। इतना उद्धव से कह कर गोपियाँ रह गईं। इतने में एक गोपी बोली सखी! अबकी बार कुब्जा और कृष्ण की जोड़ी कौए और हंस की जोड़ी के समान खूब मिली है। दासी के घर श्याम के प्रेम की शहनाइयाँ बज रही हैं। आज वह खुशी से श्याम के अनुराग में सराबोर होकर बारहमासी फाग खेल रही है। आनन्द में सदा होली और दिवाली है-'सदा दिवाली साहु की जो घर गेहूँ होयँ' वाली बात है। यह अपने अपने भाग्य की बात है वहाँ वह प्रेम महोत्सव और यहाँ आप हमारे प्रेम का बाग काटने जोग की बेल पौड़ाने आए हैं। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि तुम हमसे प्रेम छुड़ाके योग अपनाने की आशा छोड़ दो क्योंकि बुद्धिमान लोग कभी गन्ने को छोड़के उसके आगों को नहीं चूसते। सो हम लोग इतने मूर्ख नहीं कि मधुर श्याम को

छोड़के इस स्वादरहित निर्गुण को ग्रहण करलें। (आचार्य शुक्ल ने आग व अर्थ आक=मदार किया है। परन्तु गन्ना छोड़कर अकौआ या मदार किसी के चूसने के देना ठीक नहीं जँचता। व्रजभाषा में गन्ने के अगले भाग को आग कहते हैं इसी अर्थ में हमें विशेष चमत्कार जँचता है)।

विशेष—रूपक अलकार है।

१०७ नदनंदन पर सर्वस्व निछावर करके प्रेम करने वाली व्रजबनिताओं लिए रूखा योग का सदेश भेजकर कृष्ण ने एक अपूर्व रहस्य का उद्घाटन किया है। गोपियाँ कहती हैं कि आज दिन तक उनके अङ्ग प्रत्यङ्गों के लिए कवियों द्वारा प्रस्तुत किए हुए उपमानों को हम केवल उनके सौंदर्य के प्रतीक ही समझतीं थीं। पर आज पता चला कि वे उपमान साभिप्राय थे और उनके अन्दर कृष्ण के चरित का प्रतिबिम्ब था। अतएव वे कहती हैं—

उद्धव! हमें अब समझ पड़ा कि नदनदन के अङ्ग प्रत्यङ्ग के वर्णन करने के लिये कवियों ने जो उपमाएँ दी हैं वे न्यायसगत हैं। उनके बाले बालों को भ्रमर कहना केवल उनके रूप साम्य को ही व्यक्त करने के लिये नहीं है अपितु, उसमें भ्रमर का साधर्म्य भी निहित है। जिस प्रकार भौंरा चक्कर काट काटकर भोली-भाली मालतियों को भरमाकर उनसे रगरेलिया करके जब उन्हें नितांत नीरस कर देता है तो अविलम्ब ही वहा से नौ दो ग्यारह हो जाता है। इसी प्रकार उन्होंने अपने चकरदार (छल्लेदार) कुटिल कुन्तलों से इन व्रजबनिता मालतियों को मुग्ध करके खूब भोग किया और जब ये शिथिल होगईं तो चलते बने। ऐसे ही उनके मुख को 'चन्द्रवर्ण' कहकर कवियों ने न्याय ही किया है। चद्र का भी साधर्म्य उनके मुख में पूर्णतया घटित होता है। बेचारी कुमुदिनी चद्र की ओर सदा टकटकी बाधकर निहारती रहती है यहाँ तक कि यदि कोई खींचकर उसे नीचे झुकाने का प्रयत्न करे तो भी वह नीचे नीचे नहीं झुकती। क्योंकि वह थोड़ी देर के लिये भी अपने प्रियतम का अदर्शन नहीं चाहती परन्तु जिस पर वह इतना मरती है वह इस कदर निठुर है कि उससे स्नेह नहीं करता और स्वय हिमकर होते हुए भी अनुरक्त कुमुदिनी को अन्त में हिम के हाथों अपनी जान से हाथ धोने पड़ते हैं। यही हाल कृष्ण के मुख चन्द्र का भी है जो उसे देखे जीती थी उन्हीं व्रजबनिताओं को अपने मुख के सन्देश से

मारे डाल रहे हैं। केश और मुख ही क्या उनके समस्त कलेवर के लिये घन-श्याम की उपमा भी श्यामघन के साधर्म्य से भी पूर्णतया युक्त है। सूर कहते हैं कि श्यामघन की सेवा चातक रात-दिन करता है, उसी की पुकार करते-करते उसकी वाणी क्षीण हो जाती है परन्तु निर्मोही बादल उसे क्या पुरस्कार देता है? उस बेचारे मूढ़ चातक के मुँह में उसकी दी हुई एक बूँद भी नहीं जाती। यों इतना देता है कि जल थल सब एक कर देता है पर अपने भक्त को एक बूँद देने में भी कृपणता दिखाता है ! इतनी निठुरता देखकर भी चातक उसकी वे रुखाई पर ध्यान नहीं देता यही बेचारे की मूर्खता है। इसी प्रकार रात दिन कृष्ण का नाम लेने वाली हम वनिताओं को वे तनिक भी दर्शन नहीं देना चाहते।

विशेष—इस पद में काव्यलिंग अलंकार है।

१०८ उद्धव के मुँह से योग का सदेश पाकर युवतियाँ कभी झींकतीं, कभी रोतीं, कभी उद्धव को फटकारतीं और कभी उनसे अनुनय विनय करती हैं। विविध प्रकार की शङ्का और सदेहों ने उनके चित्त में ऐसा खंभार पैदा कर दिया है कि उनका मन अनेक भाव तरंगों में डूबता उतराता चलायमान रहता है। कभी अपने प्रेम की दृढ़ता की शेखी और कभी अपनी व्यथा का कच्चा चिट्ठा उनके सम्मुख खोलकर रखती हैं। लक्ष्य यह है कि ये किसी न किसी तरह पसीजकर उनके प्रियतम को लाके उनसे मिला दें। इस पद मे गोपियां बड़ी दीनता से अपनी प्रेम कहानी कहकर उद्धव को द्रवित करने का प्रयत्न कर रही हैं। वे कहती हैं—

उद्धव ! हम नितान्त अनाथ हैं। जिस प्रकार शहद का छत्ता तोड़ने के बाद मधु मक्खियाँ निराश्रय हो जाती हैं उसी प्रकार व्रजनाथ श्रीकृष्ण के चले जाने पर हम निराश्रय हैं। हाय! उस अधरामृत की नन्ही स्पृहा को बाल्यकाल से सहेजकर संचित किया था। पर उस संचित मधुर मनोरथ को वह बहेलिया सुफलक का पुत्र अक्रूर तोड़ ले गया। जब वे लेजा रहे थे तब भला हमें चेत कहाँ रहा था। चेत लाने के लिये ज्योंही हम अपनी आखें हाथों से मल रही थीं त्यों ही वे हमारे हरि जू को दूर ले गए। हम पीछे भी चलीं पर उन्होंने रथ के नीचे धूल उड़ाकर हमें रोकने में सफलता प्राप्त की। हम निराश हो

गई और हमारे मनोरथ अधूरे। उद्धव! हमने संचयशील कृपण के समान भोगों की स्पृहाओं का सदा संचय ही किया और भोग कभी नहीं किया। सूर कहते हैं कि गोपियों ने अंत में उद्धव से कहा कि हम भोग करतीं भी कैसे। भाग्य में तो विधाता ने कुब्जा के मुख से योग का उपदेश लिखा था।

विशेष—इस पद में उपमा अलंकार है।

१०६ पात्र और परिस्थिति के अनुकूल होने पर ही उपदेश सार्थक होता है। व्रज की गोपियाँ योगोपदेश की अनुरूप पात्र नहीं है यह वे पहले कह चुकी है। अब वे उद्धव को व्रज की दशा दिखाके यह निवेदन करती हैं कि यहाँ की दशा भी आपके योगोपदेश के अनुरूप नहीं हैं। वे कहती हैं—

उद्धव! पहले व्रज की दशा पर भी कुछ विचार कर लो उसके बाद तुम अपनी योग सिद्धि की कथा का बखान करो तो समीचीन होगा। (बे मौके की बात बे मजा होती है। किसी ने ठीक ही कहा है—नीकी हू फीकी लगे बिन अवसर की बात। जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात।) नन्दनन्दन ने तुम्हें किस कारण यहाँ भेजा है उसका आशय मन में सोचो और समझो। भाव यह है कि नद नदन ने शायद तुम्हें विरह व्यथिताओं को सान्त्वना देने के लिये भेजा होगा और उसी सात्वना का एक उपाय यह उपदेश भी बताया होगा। पर लक्ष्य सात्वना देना ही रहा होगा न चाहते हुए भी ज़बरदस्ती योग लादना नहीं। तुम विचार से काम न लेकर अपनी ही गाए चले जा रहे हो। ज़रा तो सोचो कि वियोग व्यथा और अध्यात्मवाद में कितना अतर है। एक जमीन की ओर खींचती है तो दूसरा आसमान की ओर खींचता है। वियोगी आसक्ति को ही सर्वस्व मानता है और परमार्थ अनासक्ति सिखाता है। तुम तो श्याम के निजी दासों में से हो। सदा उनके पास रहते हो। तुम्हें उनका आशय समझने का अभ्यास होगा। साथ ही उनके वियोग के दुःख का अनुमान करने में भी तुम अवश्य समर्थ होंगे। तब फिर पानी में डूबते हुए को बार बार झागों का सहारा लेनेके लिए क्यों आग्रह कर रहे हो? तुम जानते हो कि वे अत्यन्त सुन्दर मनोहर मुख वाले हैं उन्हें हम कैसे भुला सकती हैं। हम तुम्हारी सब योग की प्रक्रियाओं और सब प्रकार की मुक्ति के आनन्द को उस मुरली की माधुरी पर बलि करने को प्रस्तुत हैं—क्योंकि मुरली की माधुरी के आगे

ारे योग और मुक्ति सब नगण्य हैं। जिसके हृदय में श्याम सुन्दर रूप घन
स करते हैं और फिर भला वह निर्गुण का बखान कैसेकर सकता है। गोपियों
इस अनन्यता पर मुग्ध होकर कृष्ण के अनन्योपासक सूर कहते हैं कि उसके
ान माचे किस काम की अर्थात् उसका न होना ही अच्छा जिसे अपने इष्ट-
। के अतिरिक्त कोई और भी अच्छा लगता है।

विशेष—इस पद में रूपक अलकार है।

।० जब गोपियों ने निर्गुण और निराकार की उपासना के लिए आपत्ति
ाई तो उन्हें समझाया गया कि वह ब्रह्म विश्वरूप है और घट २ वासी है।
टे चाहो तो उस अतर्यामी को अपने प्रियतम के रूप में अपने हृदय में देखो
ार वियोग व्यथा से मुक्ति प्राप्त करो। निराकारवादी कहा करते हैं—"दिल
भीतर है सदा तस्वीर यार की जब ज़रा गर्दन झुकाई देख ली"। तब फिर
उ प्रियतम का दर्शन हृदय में कराना एक वियोग के लिये हित की बात ही
ी जायगी। इस बात का विरोध करती हुई गोपियाँ कहती हैं—

उद्धव! तुम्हारी यह बात कि वे घट-घट वासी हैं हमें कैसे हितकारी लगे।
। कहते हो कि वे हृदय में हैं और हम विरहानल के दाह से सतत होरही हैं।
द हराम है। चारों ओर (टुकुर टुकुर) निहारती हुई रातें काटती हैं।
ने असह्य सताप को वे हृदय से निकाल कर ठण्डा क्यों नहीं करते? यदि
यही हैं तो इस सन्ताप को अवश्य शान्त करते और हम सुख की नींद
ातीं। पर ऐसा नहीं है इसलिए तुम्हारा यह कथन कि 'हिरदय माँझ हरी'
लकुल असत्य है। इसलिए भैया! तुम्हारे निहोरे करती हैं तुम हमें इसी
ार अवधि की आशा रूप जल की थाह के सहारे बना रहने दो। अर्थात्
वधि पूरी होने पर उनके मिलन की आशा में हमें जीवन बिताना अच्छा
गता है क्योंकि वहाँ आशा का सहारा तो है। (आशा ही वियोग में स्त्रियों
सुकुमार हृदय को सँभालने वाली होती है। देखिए—आशाबन्धः कुसुम
ृश प्रायशोह्यङ्गनाना, सद्यःपाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रुणाद्धि। मेघदूत।)
सलिए उद्धव! हमें आशा के सहारे कालयापन कर लेने दो और अथाह
र्गुण के समुद्र में मत डुबाओ। भाव यह है कि अवधि के समाप्त होने की
ाशा जीवन यापन का एक अच्छा सहारा है। निर्गुण को अपनाने का अर्थ

है पुनर्मिलन की आशा का भंग। आशा के अभाव के कारण ही निर्गुण को समुद्र कहा है। यदि आप हठवश हमें इस समुद्र में डुबाकर ही दम लेना चाहते हैं तो एक बात सोच लीजिए कि फिर हम कभी आप लोगों के चाहने पर भी नहीं मिलेंगी। उसी समुद्र में ऐसी विलीन हो जायँगी कि नामो निशां मिट जायगा। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से अन्त में निवेदन किया कि जो जिससे प्रेम करे उसका उससे निर्वाह करना (निभाना) ही अच्छा है। क्योंकि यह अपनी रुचि की बात होती है। जिसमें रुचि होती है उसी में पुरुष का आग्रह होता है। देखो इतने तालाब और नदियाँ हैं पर चातक का उनसे क्या सरोकार ?

विशेष—रूपक और उदाहरण अलकार हैं।

१११ उद्धव का दिया हुआ योग का उपदेश निरर्थक होगया। बेचारे बड़ी आशा से ब्रज में आए थे। सोचा था कि मथुरा में तो हमारा ज्ञान का सिक्का जमा हुआ ही है चलो ब्रज में भी हमारे ब्रह्मवाद की तूती बोलेगी। पर नक्कार खाने में तूती की आवाज क्या करती। इसलिए हुआ क्या ? निराशा से मुँह। गोपियों ने उन्हें इस उपदेश के लिए खूब छकाया। यहाँ वे इन्हें चिढ़ाती हुई कह रही हैं—उद्धव ! तुमने भी ब्रज में खूब दूकान लगाई पर तुम्हारी यह निर्गुण की गठरी यहाँ निरर्थक ही रही। चलो अब इसे उठाते क्यों नहीं ! तुम मनमानी नफा लेने के लिए सब चीजें मँहगी भर लाये थे। हम गँवार सीधे-साधे और गरीब लोग इस मँहगी चीज को ले के क्या करेंगे ? यह तो ज्ञानियों की चीज है। तुम अपनी इन चीजों को बड़े शहरों में ले जा कर बेचो वहाँ तुम्हें इनके ग्राहक मिल जावेंगे। हम तो सस्ते के गाहक हैं ग्वालिन ही तो ठहरीं। यदि दूध दही बेचो तो ,अभी सब की सब लेने को तैयार हैं। (सूर कहते हैं कि) गोपियों ने कहा कि यहाँ इनका कोई गाहक नहीं है। हमें देना तो हमारी जान में जबर्दस्ती का मेड़ना होगा। इसलिए अच्छा है कहीं और चल-फिर के देखो।

विशेष—समासोक्ति अलकार है।

११२ राधा उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण मथुरा जाके रूखे हो गये हैं। जब तक वे गोकुल रहे तब तक तो उन्होंने ऐसा प्यार किया कि उसका वर्णन

रना कठिन है। प्रेम की बातें गुप्त रक्खी जाती हैं। कहने से उनका रस क्षीण हो जाता है। इसलिए राधा कहती हैं कि—

उद्धव! आज हम तुमसे एक रहस्य कहरही हैं। देखो इसे किसी से कहना मत। यह बात हमारे और तुम्हारे बीच में ही रहनी चाहिये। कम से कम इतनी सी प्रार्थना तो तुम्हें मान ही लेनी चाहिए। एक बार की बात है कि वृन्दावन में खेलते हुए मेरे पाँव में काँटा लग गया तो कृष्ण ने अपने हाथ से काँटा लेकर सहज स्वभाव से काटा निकाला। एक और दिन की बात कि वन में विहार करते हुए मैंने उनसे कहा कि भूख लगी है। बस फिर क्या था, वे सौंदर्यराशि इतने कृपालु हुए कि पके फल देखके एकदम पेड़ पर चढ़ गए। सो गोकुल में रहते हुए तो उनकी और हमारी ऐसी मुहब्बत रही है पर हाय! क्या किया जाय कि मथुरा रह कर वे सूर के प्रभु श्याम सब कुछ भूल गए।

११३ कृष्ण के विरह में मर्मान्तक व्यथा होने पर भी और प्रियतम के निठुर होने पर भी गोपियों को योग किसी भी तरह ग्राह्य नहीं है। इसीलिए वे उद्धव से कह रही हैं—हे मधुकर! तू योग की बात रहने दे। श्यामसुन्दर की बाते सुना सुना के हमारे सन्तप्त शरीर को शीतल कर। गुणों से शून्य निर्गुण की बात सुनकर सुन्दरियों को बुरा लगता है। क्योंकि कागज की नाव पर चढकर लम्बी-चौड़ी नदी को कोई नहीं पार कर सकता। अर्थात् निर्गुण के अवलब से इस कठिन भवसागर को कोई नहीं पार सकता। निरालम्ब मन की रागात्मिका वृत्ति को टिकाने के लिए किसी ठोस आश्रय की आवश्यकता होती है। हम अपनी ओर (देख) तथा अपने कपड़े की ओर देखकर उसके अनुसार पैर फैलाती हैं। ठीक भी यही है—तेते पाँइ पसारिए जेती लाँबी सौर। ऐसे पाँय नहीं फैलाना चाहिये कि चद्दर के बाहर निकल जायँ। अपनी समझ के अनुरूप ही किसी मार्ग को अपनाना चाहिए। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि सगुण के वियोग में एक एक क्षण कल्प के समान बीत रहा है। यह वियोग-व्यथा सगुण रूप के मिलने पर ही शान्त होगी, निर्गुण के उपदेश से नहीं। इसलिए इसे छोड़कर सगुण की कथा कहो जिससे शान्ति मिले।

विशेष—निदर्शना और लोकोक्ति अलकार है।

११४ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि आपके निर्गुण सन्देश का प्रभाव ह॰ हृदय पर नहीं जम सकता क्योंकि उस पर कृष्ण भक्ति का प्रभाव इतना अ॰ चढ़ा है कि और कोई बात भाती ही नहीं है। एक ही चीज़ भिन्न २ व्यक्ति में भिन्न २ गुण दिखाती है। "भटा एक को पित करे करे एक को बाय' इसलिए आपके लिए लाभप्रद होने पर भी योग हमारे लिए अग्राह्य है॰ इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इसी आशय को प्रकट करती हुई ये उद्धव॰ कहती हैं—

उद्धव! आप तो काफी बुद्धिमान हैं आपको तो यह जानना चाहिए कि॰ जो पहले ही से श्याम रंग में रंग चुकी हैं उन पर दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता। हमारी श्याम (श्याम) के प्रति आसक्ति इतनी गहरी है कि कोई दूसरा भाता ही नहीं। काले रंग पर कोई रंग नहीं चढ़ता। विराट् के दो नेत्र चन्द्र और सूरज हैं। वेद दोनों का महत्व समान रूपसे प्रतिपादित करता है। परन्तु चकोर को देखो उन दोनों में भेद भाव रखता है। चन्द्र को प्रियतम और सूर्य को शत्रु समझता है। इसलिये विरहिणी विरह के सेवन में ही खुश हैं। हम आपके चरण छूकर निवेदन करती हैं कि आप हमें यों ही विरह रत ही रहने दें और आपको आपका पूर्ण ज्ञान मुबारक हो। यह तो अपने मनमाने की बात है, प्रेम निर्वाह में भी सीमाएं हैं। मेंढक जल से बिछुड़ जाने पर वायु भक्षण करके अपना जीवन यापन करता है परंतु मछली उसके अभाव में बरबस प्राण ही दे देती है। हमारा अनुराग श्याम के प्रति इतना गाढ़ा है कि हम सदा यही सोचती रहती हैं कि हमारे ये नयन रूपी भ्रमर श्याम के कमल बदन के मकरन्द का कब पान करेंगे? अर्थात् हम कृष्ण की अनुपम छवि देखने का आनद कब लूटेंगी। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि-उद्धव! गोपियों की यह प्रतिज्ञा है कि विरानी (दूसरे) चीज योगको नहीं छू सकतीं।

विशेष—इस पद में श्लेष और रूपक अलकार है।

११५ गोपियाँ बसन्त के आगमन में भी योग का उपदेश सुनकर उद्धव से कहती हैं कि—अरे उद्धव! तुम्हें कुछ बसन्त की भी खबर है? वह देखो वन में कोयल कूक कर बसन्त के आगमन की सूचना दे रही है। ऐसे सुहावने और उत्तेजक समय में भी तुम हमें मुँह पर भस्म लगाने की शिक्षा दे रहे हो

हैं यह भी नहीं मालूम कि बसन्तोत्सव में मुँह पर अबीर और गुलाल
गाया जाता है। हम तुम्हारे उपदेशानुसार सब कुछ छोड़ के पाषाण
लाओं पर आरूढ़ होकर अवश्य सिंघी फूंकती परन्तु क्या करें हमें तो काम
ीं चैन लेने देता। वह तो पपीहा के बोलों को लेकर अपने कुसुमबाणों से
न पर सदा चोट करता है। हम तो (प्रेम में) नितांत पगली अहीरिन हैं।
र योग के पात्र तो ज्ञानी हैं। कृपया उन्हीं को इसकी शिक्षा दें तो उचित
गा। यदि कहो कि तुम्हारे प्रियतम ही जब योग पर विशेष बल दे रहे हैं तो
न क्या करें तो इसका जवाब यह है कि तुम नहीं जानते कि कृष्ण यथार्थतः
गी है या भोगी! हम हैं उनकी नस-नस से जानकार। इसलिए हमारे
गे उन्हें योगी कहकर हमारे ऊपर रौब डालना व्यर्थ हैं। हमारे आगे
नका यह बनावटी रूप नहीं टिक सकता क्योंकि हम उनकी रग २ से वाकिफ
। भला कोई माईं के आगे ननिहाल की शेखी क्या बघार सकता है।
ई उसके नानी और नाना तक को खूब जानती है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है
क नानी के आगे ननिऔरे की बातें। इस योग की चर्चा छोड़ो हमें तो
यामसुन्दर की मनोहर मूर्त्ति के ही कीर्तिगान भाते हैं। (सूर की गोपियां
हती हैं) तुम्हारी मुक्ति का आनन्द उस मुरली की तानों के आनन्द की तुलना
से कर सकता है!

विशेष—अपन्हुति और लोकोक्ति अलङ्कार हैं।

१६ उद्धव के योग को सुनकर गोपियाँ उनसे पात्रानुसार योग का उपदेश
ने का आग्रह कर रही हैं। वे कहती हैं कि—

उद्धव! हम तो ज्ञान से रहित हैं और हमारी बुद्धि भी अपरिष्कृत है।
ोग के मर्म को पहिचानने वाली शहर की रहने वाली नवयुवतियाँ हो सकती
। वे अपनी शिक्षा और ज्ञान के सहारे इतनी प्रगतिशील हो सकती हैं कि
स योग को परखके इसे अपनायें, पर हम नहीं। भला कभी किसी ने स्वर्ण मृग
ी देखा है। (यदि कोई सीता का उदाहरण देके कह उठे 'हाँ' तो हंसकर
त्तर में कहती हैं) देखा भी हो तो कभी उसे रस्सी से बाँध के पकड़ा भी है
ाकि निश्चय हो जाता कि वह सोने का ही है। ऐ मधुकर! तुम्हीं बताओ
भी किसी ने पानी को मथके मक्खन नकाल कर अपनी मटकी भरी है?

बिना भित्तिरूप आश्रय के किसी ने कभी कोई चित्र भी खींच पाया है ? क्या किसी ने कभी आकाश को झोली में बांध पाया है ? यदि कभी किसी ने दुरा ग्रह से भुसी को फटका भी तो क्या कुछ दाने भी निकाल पाये ? उद्धव तुम्हारा भी यह कार्य ऐसा ही असम्भव है। हम तुम्हारी बलि जाती हैं। हम पर कृपा करो हम तो अल्प बुद्धि वाली अबलाएं हैं। हमारी आँखों ने तो सूर के श्याम मुखचन्द्र को चकोरी की तन्मयता से देखना सीखा है। उन की ओर इकटक देखने का अभ्यास किया है।

विशेष—इस पद में निदर्शना, रूपक और उपमालंकार है।

११७ कृष्ण के वियोग की व्यथा गोपियों के लिए सर्वथा असह्य है। इस लिए वे उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! पुण्डरीकाक्ष कृष्ण के बिना रहना कितना व्यथा दायक है इसे हम जानती हैं। एक तो हमें वे अनाथ करके छोड़ गए और उस पर भी योग द्वारा अनवधिक वियोग की व्यथा देना कितना असह्य है ? जिस प्रकार उजड़े खेड़े की मूर्त्ति को कोई नहीं पूजता, न कोई उसका सम्मान करता है ऐसे ही गोपाल से परित्यक्त हम लोग संसार में अपमान और अवहेलना की पात्र हैं। इसकी कठिन व्यथा को कौन जान सकता है ? हम इस प्रकार तन से मलीन होकर भी मन में उन पुण्डरीकाक्ष से मिलने की आशा रख के जी रही हैं। सूरदास के स्वामी उन कृष्ण को बिना देखे हमारे तृषित नेत्र उनके दर्शनाशा की पिपासा में मरे जारहे हैं। तुम्हारी सहृदयता इसी म है इन तृषित नेत्रों को जीवन दो।

विशेष—इस पद में उपमालङ्कार है।

११८ जब उद्धव का योगोपदेश इस प्रकार व्रजवनिताओं द्वारा दुत्कार दिया गया तो वे बड़े निराश हुए। उनके निराश एव खिन्न चित्त को देखकर गोपियों ने उन्हें समझाया कि तुम्हारे योग का निरादर तुम्हारे ही अविवेक का फल है इसम हमारा दोष नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई वे उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! तुमने यह तो सोचा होता कि योग का अधिकारी कौन है। तुम अपने इस योग को वापिस क्यों नहीं ले जाते ? इसमें दुःख मानने की क्या बात है ? यह योग हमारे योग्य नहीं। यह तो वेद और उपनिषदों के मतानुसार ज्ञानी महापुरुषों के लिए ही है। हम व्रज की रहने वा

अबलाएं हैं हमसे यह नहीं संभल सकता। यहाँ इसे सुनने वाला कौन है ? तुम किसे यह उपदेश दे रहे हो। तुम्हारी उपदेश कथा को समझने वाला यहाँ है कौन ? सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से अपनी अपात्रता के साथ-साथ यह भी कहा कि हमारा मन भी यहाँ नहीं है इसलिए प्रयत्न करने पर भी हम इसे सुन समझ नहीं सकतीं। हमारा मन तो इस प्रकार निर्जीव है जिस प्रकार साँप की केंचुली। अर्थात् जिस प्रकार साँप निकल के चला जाता है और उसकी निर्जीव केंचुली पड़ी रह जाती है इसी प्रकार असली मन श्याम के साथ चला गया और यह मन की केंचुली हमारे अन्तस् में रह गई है जो किसी काम की नहीं है।

विशेष—इस पद में उपमालंकार है।

११६ उद्धव द्वारा प्रस्तुत किया हुआ योग किसी प्रकार से ग्राह्य भी हो सकता था परन्तु गोपियाँ कहती हैं कि लाख समझाने पर भी हमारा मन बार बार उचटकर नन्दलाल के चरणों में ही पहुँच जाता है। वे कहती हैं—उद्धव जो योग की बात तुमने हमसे कही हैं वह हमने बड़ी कड़ाई के साथ अपने मनको समझाई। हम अनेक युक्ति और यत्नों से उसे पकड़ कर उस अच्छे मार्ग के पन्थ तक लाए पर वह तो उस मार्ग को छोड़के भटकता हुआ जहाज के पक्षी के समान हरि के ही पास जा लगा। तुम जिसे अति-हितकारी बताते हो वह हम सब को अहितकारी प्रतीत होता है। नदी और ताल के पानी से हवन करने से क्या आग कभी तृप्त हो सकती है वह तो हवि के हवन से ही सन्तुष्ट होती है। इसलिए अब ऐसा उपदेश दो जिससे प्राणों में जान पड़े। किसी प्रकार एक बार सूर के प्रभु कृष्ण मिल जावें फिर तुम जो चाहो सो करना पर कम से कम एक बार उन्हें जरूर मिलादो।

विशेष—इस पद में उपमा एवं दृष्टान्त अलकार है।

१२० गोपियाँ उद्धव के लाये हुए योग को अपके लिए नितान्त अग्राह्य बताती हैं। इस निरर्थक चीज को भी उद्धव परमावश्यक समझे बैठे हैं। इस लिए वे उन्हें बनाती हुई कह रही हैं—उद्धव ! देखो इस योग को कहीं भूल न जाना। इसे खूब अच्छी तरह गाँठ में बाँध लो। देखो कहीं गाँठ छूट न पड़े नहीं तो योग कहीं गिर जायगा और तुम हाथ मलते रह जाओगे। यह

चीज बड़ी अनुलनीय है। मधुकर ! इसका रहस्य तुम्हें छोड़कर और कोई नहीं जानता। यह ब्रजवासियों के काम की नहीं है। इसके लिए तो तुम्हारे ही यहाँ जगह है। देखिए जो हमारे प्रियतम ने बड़े प्यार के साथ हमारे लिए भेजा है वह हम तुम्हें भेंट कर रही हैं। क्योंकि (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि) हमारे लिए तो यह जहर भरे हुए नारियल के समान है और हम इसे हाथ जोड़कर दूर से नमस्कार करती हैं।

विशेष—इस पद में उपमालंकार है।

१२१ गोपियों ने जब इस प्रकार से योग को दुरदुराया तो उद्धव ने कहा होगा कि तुम योग को अपनाती नहीं और कृष्ण भी अब आने से रहे। फिर तुम्हारे निरवलम्ब मन के लिए मरण को छोड़कर अन्यत्र शरण कहाँ है ? इसीलिए हम तो तुम्हें जीवनोपाय बताने आए थे। आगे तुम्हारी इच्छा। इसके प्रत्युत्तर में गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव ! सच्ची प्रीति मरण की परवाह नहीं करती। प्रीति के कारण ही पतंगा आग में कूद कर प्राण दे देता है और जलते हुए अपने अङ्गों को जरा भी आग से हटाता नहीं है। प्रीति के कारण ही कबूतर आकाश में ऊँचा चढ़ जाता है और गिरते हुए फिर अपनी सँभार नहीं करता। प्रीति के वश भौंरा केतकी के फूलों में निवास करता है तथा उसके काँटों की चोट की परवाह नहीं करता मिलाइये—डरै न काहू दुष्ट सों जाहि प्रेम की बान। भौंर न छोड़े केतकी तीखे कण्टक जान ॥ सच्ची प्रीति पानी और दूध के मिलन के समान है जो ऐसे एक रस मिलते हैं कि आत्मभाव को बिलकुल जला डालते हैं। वे बिलकुल अभिन्न और एक हो जाते हैं कि जरा भी पार्थक्य नहीं रहता। इसी दूध और पानी की मित्रता का वर्णन करते हुए भर्तृहरि लिखते हैं—क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताःपुरा तेऽखिलाः क्षीरेतापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशानौ हुतः। द्रष्टुं पावक मुन्मनस्तद भव दृष्ट्वा तु मित्रापद. युक्तं तेन जलेन शाम्यति सता मैत्री पुनस्त्वीदृशी) अतः ऐसी है पानी और दूध की प्रीति। हिरण की भी सरस नाद से सच्ची प्रीति है—जिस सरस नाद पर मोहित होकर वह ऐसा आत्म-विभोर हो जाता है कि शिकारी द्वारा बाण मारने की वह किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करता। इसी प्रकार सच्चा प्रेम माता का पुत्र के प्रति होता है। माता बच्चे के प्रेम में अपना

र्वस्व त्याग देती है। गोपियों ने उद्धव से कहा कि उद्धव! गोपियों का प्रेम
भी सूर के श्याम से इसी प्रकार का है। बताओ यह कैसे हटाया जा सकता
है। निर्गुण के उपदेश से उसका हटाना सर्वथा असंभव है।

विशेष—इस पद में दीपक अलङ्कार है।

१७२ योग का उपदेश गोपियों को कृष्ण की अनुरागमयी प्रकृति के इतना
विपरीत लगता है कि वे उद्धव पर घोर अविश्वास करती हुई कहती हैं—

उद्धव! जाओ हम तुम्हें खूब जान चुके हैं। श्याम ने तुमको यहाँ नहीं
भेजा है। हो सकता है उन्होंने योग का संदेश किसी दूसरे पर पहुँचाने के
लिए कहा हो और तुम जाते जाते रास्ते में भटक के यहाँ दूसरे स्थान पर आ
पहुँचे हो। जरा सोचो तो तुम व्रजवासियों के लिए योग का उपदेश दे रहे हो
तुम्हें बात करने का भी शऊर नहीं है। तुम्हें नहीं मालूम किस मण्डली में कैसी
बात करनी चाहिये। हमें तो तुम्हारा ज्ञान बहुत बड़ा नहीं जँच रहा है। तुम
तो एक नए ढंग के अज्ञानी हो अर्थात् ज्ञान का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए
भी निरे अज्ञानी हो। हमसे जो कुछ तुमने कहा है उसे मन में रखकर जरा
विचार तो करके देखो। कहाँ तो अबलाएँ और कहाँ योगियों की नग्नता की
दशा, जरा सोचकर दोनों की संगति मिला करके तो देखो। तुम्हें अपनी
कसम है सच बताना हम यह आखिरी बात तुमसे पूछती हैं। क्या जब सूर
के श्याम ने तुम्हें यहाँ भेजा था तब कुछ मुसकराये भी थे? यदि हाँ तो उस
मुसकराहट के व्यंग्यार्थ को समझने की चेष्टा करो तो अच्छा हो।

१७३ गोपियां कहती हैं कि हमारे लिए अननुरूप और कृष्ण की प्रकृति के
इतना विरुद्ध यह योग तुम से सुनकर हमें कृष्ण की मसखरी याद आरही है।
हमारा विचार है कि तुम्हें भी बहुरूपिया बनाकर दूसरों को डराने की आदत
है। जो कुछ कहते हो सो हृदय से नहीं गले के ऊपर से ही कह रहे हो।
गोपियां इसी आशय से उद्धव से कह रही हैं—

उद्धव! तुम सचमुच ही श्याम के सखा हो। हमें मालूम होता है कि
तुमने राह के बीच से ही यह मित्र बनने का स्वाँग भर लिया है। कुछ भी
हो पर तुम भी अपने विचारों में कच्चे प्रतीत होते हो। जैसी तुमने हमसे कही
यदि कहीं और किसी से कहते तो तुम्हें कहने की ऐसी सजा मिलती कि पछ

ना पड़ता। यहाँ तो हम लोग समझ रहे हैं कि यह सब तुम स्वांग भरकर नावटी बातें कर रहे हो। वरना जो तुम्हारी बातें सच करके ग्रहण करतीं तो म अपने प्रियतम को छोड़कर दूसरे पति को अपनाने को कहने से उपलब्ध अच्छा पुजापा प्राप्त करते अर्थात् तुम्हारी खूब धुम पूजा होती। अब अच्छाई इसी में है कि तुम इन्हीं पैरों मथुरा को पधार जाओ। यह योग यहाँ कहाँ लिए घूमते हो। सूर कहते हैं कि उद्धव ने ज्योंही गोपियों का यह कथन सुना त्योंही उनके सामने सिर झुका दिया। उनके कथन से उनकी आँखें खुल गई और पश्चात्ताप करते हुए उन्होंने क्षमायाचना की। गोपियाँ उद्धव के लिए उपदेश्य नहीं रह गई वे एक यथार्थ आदर्श बन गई जिससे उद्धव की शिरोधरा श्रद्धा से स्वतः झुक गई।

विशेष—वक्रोक्ति अलङ्कार है।

१२४ गोपियाँ उद्धव से प्रार्थना करती हैं कि कृपया कृष्ण से आप ब्रज की यथार्थ दशा वर्णन कर दें ताकि वे यहाँ पधारें और हमें पुनर्जीवन प्राप्त हो। वे कहती हैं कि—उद्धवजी! आप ब्रज की दशा देखे तो जा रहे हैं। आप श्रीकृष्ण से इस विरह के उपद्रव को ठीक-ठीक वर्णन कर देना। कहना कि आपके वियोग में ब्रजवासियों के नेत्रों से कुछ दिखाई नहीं देता, न कानों से कुछ सुनाई पड़ता है। श्याम के बिना सब आंसुओं की बाढ़ में डूबे जा रहे हैं और साधारण बात भी लोगों को दु:सह ध्वनि के समान असह्य है। आना है तो शीघ्र ही आइये ताकि ब्रजवासियों के शरीर में प्राणों का पुन: प्रवेश हो जाय। हे सूर के प्रभु (श्रीकृष्ण) यदि समय चूककर मिले तो बाद में पछताना पड़ेगा। क्योंकि जिनसे मिलने के लिए आप पधारेंगे वे रहेंगे ही नहीं।

विशेष—अतिशयोक्ति अलकार है।

१२५ योग के दुरदुराने से निराश हुए उद्धव को गोपियां परामर्श दे रही हैं कि आप निराश न हों। आप यह योग शहर में ले जावें। वहाँ इसके ग्राहक आपको मिल जायँगे। इसी आशय से वे कह रही हैं—

हे उद्धव! तुम शीघ्र ही मथुरा जाओ। देखो अपना योग सभाल कर रख लो। इसे ले जाकर वहीं बेचो जहां लाभ की आशा है। हम तो श्याम की वियोगिनी अबलाएँ हैं। हरि के बिना हमारा गुजारा और कहाँ हो सकता है।

तुम्हें व्यवसाय वहीं करना चाहिये जहाँ पर कम से कम तुम्हारी लगाई हुई पूंजी तो वसूल हो ही जाय कुछ लाभ भी खास हो। यदि व्रज में नहीं बिका तो कोई बात नहीं। निराश मत होओ नागरी स्त्रियों को जाकर बेचो। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव को आशा बँधाते हुए कहा कि तुम पछतावा न करो। नागरी स्त्रियाँ इसे सुनते ही ग्रहण कर लेंगी।

विशेष—इस पद में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

१२६ योग का उपदेश सुनकर गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि—हे उद्धव! अब हमें कुछ २ समझ में आया है। आप जो हमारे लिये योग लाये हो यह आपने बड़ा ही अच्छा किया। एक तो हम वैसे ही श्रीकृष्ण के वियोग में जल रही थीं आपके इस सन्देश को सुनकर अब और भी जल रही हैं। अब यहाँ से चलते बनिए। अब जले पर नमक मत छिड़को। हमें तो तुम्हें देखके डर लगता है। हमारे प्रियतम कृष्ण ने तुम्हें चतुर समझके तुम्हारे हाथ जोग की पत्री दी परन्तु तुमने आकर उनकी आशा को निराशा में परिणत कर दिया। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव! हम तो तुम्हारी बात सुनकर दहल गई हैं।

१२७ उद्धव के योग सन्देश को सुनकर गोपियाँ अत्यन्त व्यथित हुईं। वे दुःखित होकर उन्हें बुरा भला कहने लगीं। वे कहती हैं—

उद्धव! तुम्हारी बात हमने सुनली। धन्य है तुम्हें! तुम कृष्ण की कुशलता क्या लाए तुमने तो यहाँ घर-घर में गड़बड़ी मचादी। उद्धव के कथन की यह आलोचना सुनकर एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि अरे इसे कहने भी दो हमारा क्या बिगाड़ लेगा। थोड़ी देर में ही इसका कथन यों ही प्रभावहीन होकर विस्मृत हो जायगा। जिस प्रकार कोई चीज़ जल कर राख बनकर उड़ जाती है ठीक इसी प्रकार इसका भी उपदेश हवा में उड़ जायगा। हमने तो इन्हें आते ही जान लिया था कि ये बड़े हजरत हैं हमेशा खूब ओछा तोलने वाले हैं अर्थात् सदा अन्याय और कपट की बातें करने वाले हैं। जिन के लिये हम कहने सुनने के सोच (संकोच) में रहीं अर्थात् जिन्हें कुछ भी कहने में हम संकोच करती रहीं वे बहुत अमूल्य गुणी निकले अर्थात् वे बड़े

घुटे हुये निकले। सूर कहते हैं कि अन्त में वह बोली कि हमने इनकी जाति पहिचान ली, ये बड़े लबार और बकवादी हैं।

१२८ उद्धव के योग सदेश को सुनकर गोपिया कहती हैं कि योग हमें किसी भी दशा में अभिमत नहीं। जिस प्रकार मधुप पद्म को छोड़कर गाव मे रहना नहीं पसन्द करता उसी प्रकार हम कृष्ण से अलग होकर किसी की उपासना नहीं अपना सकती हैं। इसीलिए वे कहती हैं—

हे उद्धव! ऐसी बात मत कहो। हमारे बार-बार मना करने पर भी तुम अपनी ही जोते चले जा रहे हो। जैसे सन्निपात मे किसी को जक लग जाती है और वह अण्डबण्ड बके ही चला जाता है। ठीक इसी प्रकार तुम भी अनर्गल प्रलाप किए जा रहे हो। तुम्हारे मुँह से सीधी बात नहीं निकलती। रोगी वैद्य दूसरे की चिकित्सा क्या करेगा इसलिए उद्धव! तुम पहले अपना इलाज करो तब औरों को शिक्षा दो। 'रासि पराई रासता अपना खाया खेत। औरन को परबोधता मुख में परया रेत' वाली बात मत करो। मेरी कही मानो तो कहीं जम करके घर क्यों नहीं बना लो? इस प्रकार चक्कर काटते रहने से क्या लाभ? यदि तुम पद्म पराग को छोड़कर कहीं गाव में निवास करलो तो (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि) हम भी क्षणभर का उनका सामीप्य छोड़कर तुम्हारे कथन का पालन करके देखेंगी। इस पद में भ्रमर और उद्धव के अभिन्न होने से गोपिया उनमें भ्रमर का आरोप करके कहती हैं कि यदि तुम पद्म के पराग से उदासीन होकर दिखादो तो हम भी उन्हें छोड़ देंगी। परन्तु इस पद्य में मधुपवाची शब्द कोई नहीं है। अतएव यदि उद्धव के ही लिए इस कथन को लेने का आग्रह हो तो इन पक्तियों का यह अर्थ करना उचित होगा कि उद्धव यदि तुम उनके चरणकमल के पराग से उदासीनता करके दिखादो तो हम भी यह करके देखेंगी। इस अर्थ के लिए ५६ वें पद में आई हुई निम्नलिखित पक्तिया विशेष द्रष्टव्य हैं—'मन जु तिहारो हरि चरनन तर अचल रहत दिन-रात। सूर स्याम ते जोग अधिक केहि कहि आवत बात।' ......परन्तु फिर भी प्रथम अर्थ अधिक अच्छा है। इस प्रकार का उद्धव और मधुप में अभेद कितने ही पदों में पहले आ चुका है। देखिए—पद ११६, उद्धव से कहना प्रारभ किया और पद के बीच में उनके लिए मधुप संबोधन भी किया है।

विशेष—त्रिदोष का अर्थ यहाँ सन्निपात है। इसमें रोगी के तीनों दोष वात, पित्त और कफ प्रबल रहते हैं और वह बेहोश होकर ऑय बॉय शॉय बका करता है।

१२६ योग का उपदेश सुनाने वाले उद्धव को गोपियाँ बनाती हैं और उसे स्वीकार करने म अपनी विवशता प्रकट करती हुई कहती हैं कि—उद्धव, आपकी चातुरी की कलई तो खूब खुल गई है। आप स्त्रियो के लिए योग लाए हैं। आपकी महत्ता और बुद्धिमत्ता तो इसीसे प्रकट हो गई। अरे ज्ञान उसे कहते हैं कि जिसका पार शास्त्रों ने भी नहीं पाया है। नेत्रों के बीच त्रिकुटी की सिद्धि करके जिस ज्योति का अनुमान करते हैं वह आसान नहीं है। उसके लिये प्राणायाम पूर्वक सूर्य की ओर एक टक देखना होता है तथा मन को बिलकुल मारके रखना पड़ता है। इतनी बड़ी साधना उस कल्पित आनन्द के लिए आपके अनुरोध के कारण हम अवश्य करतीं। परन्तु (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि) हम कर तो करें क्या ? मन वो हमारे पास है ही नहीं। वह तो हमारा साथ छोड़कर हम भुला कर चला गया है।

विशेष—काकु-वक्रोक्ति अलङ्कार है।

१३० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम आपके योग का निरादर करके आपका अपमान नहीं करना चाहती हैं। यदि किसी प्रकार हमारा मन फिर से हमें मिल जावे तो हम आपके कथन को मानने के लिए प्रस्तुत हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! हम आपका आदेश पालन करने म विवश हैं क्योंकि हमारा मन हमारे अधिकार में नहीं। वह तो वे हाथ हो चुका है। जब प्रियतम रथारूढ होके मथुरा सिधारे तब वे हमारे मन को भी साथ ले गए। अन्यथा क्या हम कभी भी इस योग को ठुकराने की धृष्टता करतीं जिसे आप हमारे लिये बड़े चाव से लाए हैं। हमें आपसे कुछ नहीं कहना है। हम तो श्याम की करतूत पर झींक रही हैं कि हमारे मन को लेकर वह योग भेज रहे हैं। यदि योग करना था तो मन का भी वापिस भेजना था। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव स कहा कि उद्धव ! तुम्हारी एक नहीं करोड़ों सौगन्द खाती हैं कि हम अब भी तैयार हैं परन्तु हमारा मन हमें वापिस मिल जाय। शायद तुम्हारे पास हो। श्याम ने योग भेजते समय मन भी हमारा तुम्हारे हाथों वापिस

किया होगा। यदि ऐसा है तो कृपया वह हमारा मन हमें दे दो फिर जो कहोगे हम करने को तैयार होंगी परन्तु बिना मन के तुम्हीं बताओ कि योग कहाँ और कैसे रक्खा जाय।

१३१ योग की नीरसता सगुणोपासना की सरसता के आगे अकिंचित्कर है। इसी विषय का प्रतिपादन करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! योग तो हमने सुना है कि बड़ा कठिन है। आपके कथन को सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य है। आप तो अपने मनमें इसे सुलभ माने बैठे हो। जिसकी रूप रेखा नहीं उसी निर्गुण निराकार का उपदेश तुम हमें दे रहे हो। (वेदों में ईश्वर का निराकार होना—सपर्यगाच्छुक्रमकायम व्रणमस्ना विरँशुद्धमपोप विद्धम्। आदि-न तस्य प्रतिभा अस्ति। 'एष अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः' आदि मन्त्रों मे वर्णन किया गया है। इससे व्यक्त होता है कि उसकी कोई रूप रेखा नहीं है)। उद्धव! अपना हाल बताओ कि तुम उस प्रकार के रूपरेखा विहीन निराकार का दर्शन कभी भी कर पाते हो, क्या तुम्हारा निर्गुण भी हमारे श्याम के समान अधरों पर मुरली रखकर बजाता है? क्या कभी बन बन घूम कर गौओ को चराता है। क्या वह भी कभी विशाल नेत्रो और बाँकी भौंहों से देखता है? क्या कभी तुम्हारा निर्गुण भी हमारे प्रियतम के समान नटवर वेष धारण करके त्रिभंगी मुद्रा में पीताम्बर धारण करके सुशोभित होता है? सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से पूछा कि सच कहना कि जिस प्रकार हमारे प्रियतम हमें सुखी करते हैं उसी तरह क्या वह निर्गुण भी तुम्हें आनन्दित करता है? भावार्थ यह है कि वह इस प्रकार का ऐन्द्रियिक आनन्द दे ही नहीं सकता। स्वय उपनिषद् कहती है—पराचिखानि व्यतृणत्स्वयम्भू स्त स्यात् पराङ् पश्यतिनान्तरात्मन् आदि।

१३२ जैसा रोगी हो वैसा ही उपचार होना चाहिए और जैसा पात्र हो वैसा ही उपदेश उचित होता है। उद्धव के योग को अपने अनुरूप न देख कर गोपियाँ उनसे कहती हैं कि उद्धव! हमारे योग्य शिक्षा दीजिए। आपका यह उपदेश हमारे अनुरूप न होने से हमें अग्नि से भी अधिक संतापकारी प्रतीत होता है। फिर बताइये हम इसका पालन कैसे करें? आप ही बताइये यहाँ इतनी गोपियों में इस योग को सीखने की अधिकारिणी कौनसी है? यह योग

मत उनको फबता है जो कि विरक्त योगी और यती हैं; सासारिक माया मोह से रहित हैं। जो कपूर और चन्दन का शरीर पर लेप करते रहे हैं उन्हें भभूत लगाना कैसे भावेगा ? सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि तुम स्वयं सोचकर देखो कि अन्धी आँखों में काजल क्या अच्छा लगेगा ? ज्ञानचक्षु से विहीन पुरुषों के लिए योग कैसे उचित ठहर सकता है ?

१३३ योग का उपदेश गोपियों के लिये नितान्त विपरीत है। प्रवृत्ति में आसक्त और ज्ञान से शून्य भी यदि बातों से निवृत्ति पथ पर लाये जा सकें तब तो विन्ध्याचल भी सागर में तैर सकता है (विन्ध्यस्तरेत्सागरम्) अतएव वे उद्धव से कहती हैं कि—

अरे उद्धव ! तुम उल्टी बातें क्यों कर रहे हो, तुम युवतियों को योग सिखाने आये हो। यह तो उलटो रीति है। तुम्हारी अनीति पूर्ण बातें तो ऐसी हैं जैसी गायों को हलादि में जोतना और बैलों से दूध दुहना। अर्थात् जिस प्रकार गैयों को जोतना और बैलों से दूध दुहना असम्भव और हास्यास्पद है इसी प्रकार युवतियों से योग की आशा करना एक दुराशा मात्र है। भला चकवाक का चन्द्र से क्या वास्ता। वह तो सूर्य से प्रसन्न होता है। इसी तरह चकोर का सूर्य से क्या रिश्ता वह तो चाद पर मरता है। यदि पत्थर जल में तैरने लगे और लकड़ी डूबने लगे तो हम आपकी इन बातों को भी नीति संगत मान सकती हैं। सूर कहते हैं कि आखिर गोपियाँ उद्धव के उपदेश को किस प्रकार नीति एव युक्ति संगत कह सकतीं हैं। ये तो श्याम के अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य से सर्वथा विजित अर्थात् परास्त हो चुकी हैं।

विशेष—इस पद मे निदर्शनालङ्कार है।

१३४ गोपियाँ फिर उद्धव को यही सलाह देती हैं कि पात्र के अनुरूप उपदेश देने मे ही बुद्धिमत्ता है। पात्रापात्र के विवेक से शून्य उपदेश पर कोई कान नहीं करता। वह अरण्यरोदन (भयो जो वन को रोयो) के समान निरर्थक होता है। इसलिए गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि—

उद्धव ! पहले युवतियों की ओर आँखें खोलकर देखलो तब हृदय मे खूब सोच समझकर अपनी यह योग की पोटली हमारे सामने फैलाओ। जरा सोचो जिन केशों को केशव अपने हाथों से अनेक सुगंधित तैलादि से सजाते

थे उन्हीं में तुम भभूत घोलके जटाओं के साथ लगाने आए हो। जिन मुखों पर कस्तूरी और चदन का उबटन होता रहा है; जिन्हें क्षण-क्षण में धोया और माजा जाता था उन्हीं मुखों पर राख लिपटाने को कह रहे हो, यह हमें कैसे रुचिकर हो सकता है। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि हमारे इन नेत्रों को तभी तृप्ति होती है जब कि ये काजल लगाके श्याम रूपी शशी के दर्शन करते हैं। उन्हें तुम सूर्य की ओर देखने की आयोजना कर रहे हो, यह सुन-सुन के ये दुख रही हैं।

विशेष—इस पद में रूपक अलङ्कार है।

१३५ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि योग की जगह हमें तो कृष्ण से मिलन की जुगत बताओ। बिना उनके हमारा जीवन खतरे में है। तुम उन्हें हमसे मिलाकर सुयश के पात्र बनने की चेष्टा करो। वे कहती हैं कि उद्धव! तुम हमें ज्ञानाजनशलाका के स्थान पर यथार्थतः अजन दो अर्थात् कृष्ण दर्शन कराओ। जिनसे हमारा प्रेम जुड़ा हुआ है उस श्याम रग के काजल को यहाँ क्यों नहीं लाते? हे मधुकर हम रात दिन उनके विरहानल से सतप्त होती रहती हैं। हमें घरबार की कौन कहे यह तन भी नहीं सुहाता। जल से बिछुड़ी हुई मछलियों के समान हम भी उनसे विमुख होके मर रही हैं। इस मरण व्यथा का वर्णन करना असम्भव है। यह सब होते हुए भी हमने अपने दृढ सकल्प को खूब दृढता से पकड़ रक्खा है। स्नेह को सुरक्षित रखने के लिये हमने उसे दृढ सकल्प के साथ इसी प्रकार बाध दिया है जैसे कपूर को सुरक्षित रखने के लिये खड़िया के साथ मिलाकर बाध रखते हैं। इसलिये उद्धव तुम कम से कम एक बार सूर के स्वामी श्याम को मिलादो और हमें जिलाने की कीर्ति कमा लो।

विशेष—इस पद में रूपकातिशयोक्ति तथा उपमालकार है।

१३६ उद्धव का योग संदेश इतना उपहासास्पद है कि गोपियाँ उनकी इस बेतुकी बात पर ऐसी दुरवस्था में ही हँस पड़ीं और कहने लगीं कि उद्धव तुमने यहाँ आकर बड़ा अच्छा किया। इन बेढङ्गी बातों को बार बार कहकर इस कठिन दुःख में भी ब्रज के लोगों को हँसा दिया। हा! अब हमारा रमणीय वृन्दावन में रहने का सुख निरर्थक है और निरर्थक है दही भात का कलेऊ।

क्योंकि कृष्ण तो कुब्जा पर लट्टू हैं। दोनों ही एक तार मिले हैं। खैर जो होना था सो हुआ अब कृपा करके मयूर परव का मुकुट, मुरली तथा पीताम्बर आदि हमारा व्रज का सामान भिजवा दीजिए और अपनी भेजी हुई जटा समूह, मुद्रा भस्म और अधारी उन्हें ले जाके सौंप दीजिये। वे ठहरे बड़े आदमी और आप हैं उनके मित्र! आप लोगों के लिये अनीति करना बड़ा सहज है (देखिये—समरथ को नहि दोष गुसाईं —तुलसी) सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि कृष्ण के क्या कहने हैं, उनके सभी ढंग भले ही कहने चाहिये (हों चाहे कैसे ही)। देखो न उनकी बेढङ्गी बातें—दुनियाँ तो पतित पावन गंगाजल से प्रेम करती हैं पर आप यम की बहिन कालिन्दी के जल से। हो भी क्यों न "मुरारे स्तृतीयः पन्था।"

विशेष—इस पद में परिवृत्ति अलंकार है।

१३७ गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव! हाय तुमसे हमारा वासना रहित शुद्ध प्रेम भी नहीं देखा जा सकता। जो योग का उपदेश देकर इसे उखाड़ फेंकना चाहते हो। जहाँ बुराई हो उसे दूर करो। इसलिये वे उनसे पूछती हैं कि उद्धव! हम तुमसे एक रहस्य पूछ रही हैं। तुम बड़े ज्ञान पाड़े हो। सबके मन की जानने का दावा किए बैठे हो तो सचमुच तुम्हें घट घट का ज्ञान है या यों ही ठगमूरी बाँधे डोल रहे हो अर्थात् ठग विद्या जमाकर भोले भाले लोगों को बहकाते फिरते हो। यदि जानते हो तो तुम्हें मालूम होना चाहिये कि कृष्ण का पीताम्बर ही पीत ध्वजा है जो उनके हृदय में विद्यमान कुछ न कुछ राग की विद्यमानता को बताता है। उधर कुब्जा की लाल ध्वजा है जिससे राग का व्यभिचार प्रकट होता है। अर्थात् कुबड़ी का राग इतना रजोगुण परिपूर्ण है कि वह जग जाहिर हो रहा है परन्तु व्रजजनों की सतोगुण की वैजयन्ती फहरा रही है। उनका शुद्ध सात्विक प्रेम है। परन्तु उद्धव! तुम्हारे यहाँ वह शुद्ध सात्विक प्रेम अपयश का कारण समझा जाता है जिससे तुम्हारे कृष्ण पल्ला छुड़ाना चाहते हैं। और कुब्जा का राग सदोष होने पर भी वह उन्हें प्यारी लगती है। उनकी मुहब्बत मन बहलाव के लिए लिए है परन्तु यहाँ सब शीलवान हैं और प्रेम का अटल व्रत धारण करने वाले हैं। भावार्थ यह है कि हमारे लिये प्रेम मन बहलाव की वस्तु नहीं है। वह हमारे जीवन का एक

ठोस आधार है। साथ ही हमने प्रेम के अग्ल व्रत को शील के साथ साथ निभाने का निश्चय किया है। यदि दोनों में से एक बात भी शिथिल हो हो जाती तो हम भी अपने मन बहलाव के लिए तुम्हारे निर्गुण को ही अपना लेतीं। यह सब होते हुए भी उद्धव ! हमारे प्रेम को त्याज्य बता रहे हैं। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि वास्तव म बात यह है कि उद्धव झूठी बातें बनाने में और लबारपन म अपना जोड़ नहीं रखते। इसीलिए तो निर्दोष को त्याज्य और सदोष को उपादेय करके बखान रहे हैं।

विशेष—प्रतिवस्तूपमालङ्कार है।

१३८ कुब्जा और कृष्ण के प्रेम पर व्यग्य करते हुए गोपियों ने उद्धव से कहा—

उद्धव ! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। यह तो अपने मन की रुचि की बात है। किसी को कुछ अच्छा लगता है तो किसी को कुछ। कितने ही सङ्कट क्यों न हों पर अपना प्यारा प्यारा ही लगता है। पतंगा दीप में जल जाता है परन्तु वह यह जानकर भी हटता नहीं है। बार २ दीपक से लिपटता ही जाता है। प्यारा कहीं भी रहे परतु उसे चाहने वाला सदा उसी को ध्यान में रखता है। हे मधुकर ! देखो चकोर पृथ्वी पर रहता है और उसका प्रिय तम चद्रमा आकाश में घूमता है। परतु वह सदा उसी की ओर अपने नेत्रों से देखता रहता है उसे दूसरा नहीं भाता। हमारा भी ध्यान कृष्ण पर ऐसा ही अटल है। वे भले ही न आवें पर हमारी आँखें दूसरे को नहीं देखना चाहतीं। देश और काल प्रेमी के प्रेम में न तो प्रतिबध ही उपस्थित कर सकते हैं और न उन्हें उत्तेजना ही दे सकते हैं। मेंढक सदा पानी में रहता है और कमल का पड़ौसी है पर कमल क पास भी नहीं फटकता परतु भौंरा कमल के प्रेम पाश म बँध जाता है। अपने तीक्ष्ण दाँतो से लकड़ी तक को काट कर उसमें घर बना लेता है परन्तु प्रेमवश कमल की कोमल पखड़ियों को काटता नही उनके भीतर बद हो रहता है। और उद्धव ! रात दिन पानी बरस कर पृथ्वी को तृप्त कर देता है पर पपीहा फिर भी स्वाति की बूँद के लिए ही रट लगाए रहता है। हमारा प्रेम ऐसा दृढ़ है तो कृष्ण को इससे क्या सेही अमृत फलों की अवहेलना करके कड़ुइ घीया के लिये ललचाया करती है इसी

प्रकार कृष्ण का कुब्जा पर अनुराग है और इन अटल प्रेमिका गोपियों को देखकर वे शर्माते हैं। इनके प्रति प्रेम नहीं दिखाते।

विशेष—अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(मिलाइए—काठफोरि घर कियो इत्यादि। बन्धनानिखलु सन्ति बहूनि प्रेम रज्जु कृत बन्धनमन्यत् दारु भेद निपुणोऽपि षडङ्घ्रिर्भवति पङ्कज कोशनिबद्धः)

१३६ राधा उद्धव से कहती हैं कि जब कृष्ण ब्रज में थे तो उनसे कितना प्यार करते थे कि उसकी सुध आते ही वे आज भी व्यथित हो जाती हैं। वे कहती हैं उद्धव ! कृष्ण जी के प्रेम की व्यथा बड़ी दाहक है। कहाँ वह प्रेम और कहाँ आज यह रूखा संदेशा ! जब वे यमुना कूल के कुंजों में हमसे रंग रेलियाँ करते हुए सब सुध बुध खो बैठते थे उस विस्मृति की याद अब उन्हें भूल गई। ब्रज में रहते हुए नए पेड़ों की छाया में वे हमें गोद में भर लेते थे। यमुना कूल के कुंजों में प्रकट की हुई उस प्रीति का हम कैसे वर्णन करें ? वे हमारी बाँहें पकड़ कर बन में झूलते थे वह अद्भुत शोभा आज भी हमारे नयनों को तृप्त कर रही है। सूर कहते हैं कि राधा ने व्यथित होकर कहा कि उन्होंने जो अपने हाथों मेरे वक्ष स्थल पर माला भेंट की थी वह तो याद आते ही एक कसक उठा देती है।

१४० अपने प्रेम की दृढ़ता और सात्विकता का वर्णन करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे मधुकर ! हम वे वेलें नहीं हैं जिन्हें तुम बिना प्रेम के ही अपनाते और त्यागते रहते हो। उनके कुसुमों के मधु का ले लेकर खिलवाड़ करते हो। हम तो वे वेलें हैं जिन्हें बलवीर के भाई कृष्ण ने बाल्यकाल से ही अपना स्नेह जल देकर पाला पोसा है। प्रातःकाल ही उठकर यदि प्रियतम का स्पर्श न मिला तो विकसित होने में भी अपनी हित हानि समझने वाली हैं। ऐसी ये लताएँ वन में विहार करती हुई श्याम तमाल (कृष्ण) से उलझ चुकी हैं। हमारे प्रेम पुष्प का मधु और पराग केवल गोपाल मधुप के लिए ही है। ये लताएँ ऐसी धीर (दृढ़) हैं कि योग की वायु इन्हें विचलित नहीं कर सकती। क्योंकि श्याम तमाल के न होने पर भी उसकी रूप शाखा उन्हें सहारा दे रही हैं। इसीलिए (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा) हमारे हृदय ऐसे दृढ़ हैं कि

उनका पराग झड़ नहीं सकता और दूसरा कोई उसका उपभोग कर नहीं सकता। ये लताएँ केवल पुण्डरीकाक्ष से प्रेम करने वाली हैं।

विशेष—इस पद में अन्योक्ति एव रूपक अलकार है।

१४१ उद्धव से निर्गुण का उपदेश सुनकर गोपिया उनसे कह रही हैं कि यह निर्गुण आराधना और योग साधना उनके अनुरूप नहीं है। उनके मन में कृष्ण का अनुराग है फिर उसमें निर्गुण कैसे समा सकता है? सगुण रूप अधिक उपयोगी है इसलिए उसे निकाल फेंकना बुद्धिमत्ता नहीं है। अतएव वे कहती हैं कि उद्धव! श्रीकृष्ण हमारे भगवान् हैं जिनका ध्यान हम अपने हृदय के अन्दर करती हैं। उनको छोड़कर अन्य के सामने हमने कभी सिर नहीं झुकाया। योगियों को योग का उपदेश जाकर सुनाओ जिनके शायद दस बीस मन होंगे, किसी एक मन में योग भी पड़ा रहेगा। भाव यह है कि जिनका मन किसी एक जगह स्थिर नहीं हुआ है इधर उधर भटकता फिरता है उनके लिए योग का उपदेश सार्थक हो सकता है। यहाँ तो तीसों दिन अर्थात् सदा ही यह एक मन उस एक मूर्त्ति में सलग्न रहता है। उद्धव! तुम अपने निर्गुणोपदेश को इधर उधर बखेर कर क्यों नष्ट करते फिरते हो? जहाँ उपयोग नहीं वहाँ इसका उपदेश देकर इसे नष्ट करना ही है। तुम्हारे योग में ईश की प्राप्ति है। हमें सगुणोपासना में श्याम की प्राप्ति हुई है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि प्रभुवर नन्दनन्दन से बढ़कर और कौन जगदीश्वर हो सकता है। उस सर्वश्रेष्ठ जगदीश्वर को हम प्राप्त कर चुकी हैं फिर हमें कौन प्राप्य रहा जिसके लिए हम योग साधन को अपनावें।

१४२ गोपियों के बार-बार मना करने पर भी उद्धव! योग का गीत गाते ही रहे। तब गोपियों ने झल्लाकर योग साधना की निरर्थकता बताते हुए उद्धव से कहा कि—हे मधुकर! आप श्याम जू के मित्र हैं। श्याम के उपासकों को आपका श्याम के समान ही आदर करना चाहिए। अतएव आपके उपदेश पर हम जो कुछ टीका टिप्पणी कर रही हैं उसके लिए आप हमें क्षमा करें। हम प्रणाम पूर्वक आपके सम्मुख निवेदन करने की धृष्टता कर रही हैं। कृपया बताइए कि क्या कभी कोई सोने की चिड़िया को अपनी डोरी से बाध कर उससे खेल सका है? आकाश में उड़ते हुए धूओं के घर में कोई अपनी बैठक

बना सका है ? आकाश से तारे तोड़कर पृथ्वी पर ले आना किसी के वश की बात नहीं। बौर की माला अपने हाथ से किसी ने नही गूथ पाई। बिना पानी के नाव चलती भी कभी किसी ने नही देखी और उस नाव पर बैठ कर कोई नही गया। इसी प्रकार कृष्ण से दृढ़ प्रेम की प्रतिज्ञा करके फिर किसकी ताब है जो समाधि लगा सके। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि आप जानते हैं कि यह असम्भव है फिर बार बार उसी उपदेश को सुनाने के लिए आने में कौनसी बुद्धिमत्ता है ? जाइए अपना काम देखिए।

विशेष—इस पद में निदर्शनालङ्कार है।

१४३ गोपियाँ योग की अनुपयुक्तता बताती हुई उद्धव से पुनः कह रही हैं कि अरे मधुकर ! जरा सोचो तो मन कोई दस बीस थोड़े ही है ? वह तो एक ही है कि उसे भी श्रीकृष्ण जी अपने साथ ले गये हैं, अब आप योग की शिक्षा किसे दे रहे हैं ? अरे धूर्त ! बेतुकी बात करने वाले स्वयं रस के लोभी ! जरा औरतों की दशा देख के बात करो। विरहाग्नि से शरीर को सन्तप्त करके बार बार जले पर नमक क्यों छिड़क रहे हो ? अध्यात्मवाद का उपदेश देके परमार्थ सिद्धि की राह बताने से हमारी विरह व्यथा नही मिट सकती। भला सनिपात की उग्र अवस्था में जब कफ घर घराने लग जाता है तब उसे दही खिलाना कहाँ तक उचित है ? यह तो उसके सर्वनाश का ही कारण होगा। इसी प्रकार विरह में परमार्थ का उपदेश हमारे लिये उलटा पड़ेगा। हृदय को शान्ति नहीं और अधिक सन्ताप ही बढ़ेगा। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि जब हृदय में सुन्दर सलोनी श्याम की मूर्ति व्याप्त हो तो उसे छोड़कर निर्गुण के दुस्तर सागर का अवगाहन कर सकना किसकी सामर्थ्य है। अतएव आपका यह निर्गुण का उपदेश हमारे लिए सर्वथा निरर्थक है।

विशेष—इस पद में निदर्शनालङ्कार है।

१४४ गोपियाँ निर्गुण गाथा से व्याकुल होके उद्धव से उसके लिए मना करती हुई कहती हैं। अरे मधुकर ! इन बेढंगी बातों को बन्द करो। तुम बार बार वही शिक्षा देते हो जिससे हमें दुःख प्राप्त होता है। हम तो प्रतिदिन प्रात. काल उठ कर तथा नित्य नहाते सोते सभी समय तुम्हें शुभ आशीर्वाद देती हैं परन्तु तुम रातदिन अपने मन में हम ब्रज युवतियों के लिये नए दाव

पेच सोचते रहते हो। तुम से न जाने बार बार वही बात कैसे कही जाती है कम से कम इस सम्बन्ध से ही कुछ जान लेते तो अच्छा था। (सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि) तुम कम से कम यह जानकर कि जो श्याम रंग में रंगी हुई हैं उन पर फिर लाल रंग चढ़ना असम्भव है चुप रह जाते तो अच्छा था।

१४५ गोपियाँ उद्धव से अपने प्रेम की दृढ़ता के विषय में कह रही हैं। वे कहती हैं कि हमारा प्रेम भ्रमर के प्रेम के समान कपट पूर्ण नहीं है। उसमें स्थिरता और गम्भीरता है। इसीलिए वे प्रियतम के वियोग से इतनी दुखी हैं। यदि भ्रमर की भांति वे भी बहुरंगी होती तो इतनी व्याकुलता न होती इसीलिये वे कहती हैं कि हे मधुप! तुम्हारा परिचय (प्रेम) हमारे प्रेम से दूसरे प्रकार का है। तुम्हारा जो प्रेम फूलों के प्रति है उसमें फूलों की मर्यादा नहीं बंधी है। एक फूल के गंध और मधु का स्वाद लेके दूसरे पर जा बैठे और दूसरे से फिर तीसरे पर। यह बन्धन नहीं कि एक के नीरस होने पर तुम्हें वियोग सतावे क्योंकि तुम्हारे लिए एक नहीं अनेक हैं। अनेक वन और उपवनों में अनेक पुष्पों में से एक जो कुम्हला भी जाय तो भी उन की कमी नहीं है। वन में अनेक सघन फूल फूले हैं किसी पर भी जाकर अपना मनोविनोद कर सकते हो। परन्तु यहाँ तो एक ही आधार है वह भी हमें प्राप्त नहीं है। अतएव हमारा हृदय कामानल से सतप्त क्यों न हो? तुम आके सान्त्वना देने की जगह हमारे जले हुए हृदय पर नमक छिड़क रहे हो। इस योग का सन्देश हमारे हाथ में देके हमारे तन में और भी जहर चढा दिया है। जिनकी शिरोमणि छिन गई हो उन में कान्ति कहाँ से आ सकती है। शायद इसी कान्ति हीनता को अपने हृदय म अनुमान करके सूर के प्रभु नदनन्दन ब्रज छोड़ गए हैं। वे तो आभा के साथी हैं चमक दमक और रूप के साथी हैं पर हमारा तो और कोई अवलम्ब ही नहीं है। हम क्या करें?

विशेष—अन्योक्ति अलकार है।

१४६ श्री कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे मधुकर! श्याम हमारे चोर हैं। उन्होंने अपनी माधुरी मूरति की झलक दिखाके और नयनों के कटाक्ष से हमारा मन चुरा लिया है। हमने

उन्हें हृदय में सम्पूर्ण प्रेम और प्रीति के बन्धनों से बाँधकर रक्खा परन्तु वे सब बन्धन छुड़ाके चलते बने और प्रत्युपहार में अपना मन्दहास दे गए। हम रात को सोते-सोते उनकी इस माधुरी को सोच-सोच के चौंक पड़ीं। अर्थात् रात को उसी माधुरी मुस्कान के चक्कर में पड़ी रहीं कि प्रातः मुझे ये दूत महाशय मिले। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कृष्ण के दूत उद्धव से कहा कि देखो भाई नंदकिशोर अपने मदस्मित से हमारा सर्वस्व ले गये हैं। आप न्याय करना चाहते हैं तो उन्हें बुलाके हमारा माल पहले वापस कराइये

१४७ योग का उपदेश और निर्गुण की आराधना गोपियों के लिए कभी भी अनुरूप नहीं हो सकती है ! इस बेतुकी बात पर उन्हें अत्यन्त दुःख होता है इसलिये उद्धव से कह रही हैं—अरे मधुप ! जरा सोच-समझ के मुँह से बात निकाला करो। तुमने तो नशा पी रक्खा है इसलिए तुम विवेकशून्य हो रहे हो कुछ भी सूझता नहीं है। ज्ञान के गर्व से यों ही अकड़ रहे हो। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि जो मध्यस्थ होता है उसका सत्य बोलना कर्तव्य होता है। मुँह देखकर न्याय करना मध्यस्थ का काम नहीं है। चाहे राजा हो या रंक किसी की लल्लो चप्पो या लगालेसी की बात कहना मध्यस्थता के विरुद्ध है। परन्तु तुम्हारा अजब हाल है तुम कुछ कहना चाहते और मुँह से कुछ निकलता है। दूसरों की निंदा करने वाले हो इसीलिए तुम दोषमुक्त नहीं, अपितु दोषी ही ठहरोगे। ब्रज की युवतियों को योग सिखाके तुमने अच्छी कीर्ति कमाई है। हम भौंरे को खूब जानती हैं। वह बड़ा रसिया है उसे ये योग की युक्तियाँ कहाँ से मिल गईं ? उसके इतना अधिक रसिक होने के कारण ही परम गुरुविधाता ने उसका सिर मुँड़वाके खार पोतकर मुँह काला कर दिया है। परंतु विधाता ने सब करम कर दिए फिर भी उसकी आँखें नहीं खुलीं। जो कोई दूसरे के लिए कुआ खोदता है वह स्वयं उसी कुए में गिरता है। दूसरे की बुराई करने वाले के हाथ स्वयं बुराई लगती है। (देखिये खाड़ खने जो और को ताको कूप तयार) मधुकर ! तुम्ह सगा तो मिल गई पर तुम बाज नहीं आये। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि कृष्ण हमारे घट-घट के वासी हैं हमारी व्यथा को जानते हैं। फिर भी ऐसे दूतों को भेजकर हमारी छीछालेदर में योग देते हैं तो अब हम किससे शिका-

यत करें क्योंकि भाई ! "राजा हो चोरी करे न्याय कौन पै जाय" वाली बात है। अतएव किसी की भी शिकायत करना व्यर्थ ही है। वरना उस समय अक्रूर ने कृष्ण को मथुरा ले जाके और अब इन उद्धव ने योग का सदेशा देके जैसे हमारे हृदय को सतप्त किया है वह हमी जानती हैं।

१४८ कोई गोपी उद्धव से कहती है कि हम लोग किसी न किसी तरह आपके योग को अपनाकर आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत हैं। परन्तु हमारी आखें तो साथ देती ही नहीं हैं। ये तो सगुण के लिए ही मचली रहती हैं। ये उनसे कहती हैं कि मधुकर ! तुम जो बताओ हम करने को तयार हैं। हमारे प्रियतम कृष्णजी ने कृपा करके यह निर्गुणोपासना हमारे लिए भेजी है तो मैं भी उनकी आज्ञा पालन के लिए प्रस्तुत हूँ। रात दिन श्याम-श्याम रटने वाली रसना को काटके नौ टुकड़े करके उसे निर्गुण के हाथ सौंप सकती हैं। परन्तु तुम बुरा न मानो हमारी आँखें हमारे काबू में नहीं हैं। तुम्हारी बताई हुई आराधना बड़ी कठोर है। उसमें जिस ज्योति का दर्शन बताते हो वह भी बड़ी अजीब है। इसलिए मैं फिर से तुमसे कह रही हूँ कि सूर के प्रभु श्याम से कह देना कि बड़ी विषम समस्या है। तुम्हारा योग हमारे लिए ऐसा दुःखदायी है जैसे केले को बेर का पड़ोस दुःखदायी होता है। इसलिए इस का अभी से निराकरण होना उचित है वरना फिर तो पछताना ही होगा। केर बेर के सग के विषय में कबीर कहते हैं—कह कबीर कैसे निभै केर बेर को सग, वे डोलत रस आपने उनके फाटत अङ्ग। केरा तबहिं न चेतिया जब ढिंग लागी बेर। अबके चेते क्या भया काटन लीन्हीं घेर॥

विशेष—इस पद मे लुप्तोपमालंकार है।

१४९ उद्धव ने जब कृष्ण के प्रेम को हटाकर गोपियों से निर्गुणोपासना की बात कही तो उन्होंने उत्तर दिया कि उपदेश देना उसीका सफल है जो उस को करके दिखाये। तुम कृष्ण के प्रेम को हृदय से हटाने का उपदेश दे रहे हो परन्तु स्वय उनके प्रेम में लवलीन हो। इस तरह तुम्हारे 'मनस्यन्यद वचस्यन्यद्' है। ऐसी परिस्थिति मे तुम्हारा उपदेश किस प्रकार कारगर हो सकता है। इसलिये हे मधुकर! तुम तब औरों को शिक्षा दो जब पहले प्रेम की गभीरता पर खूब अच्छी तरह विचार कर लो। जब तुम्हारे लगेगी तब इसकी गंभीरता

को समझ पावोगे। तब पता लगेगा कि स्नेह का घाव बड़ा कठिन होता है। तुम भी इस बात को समझते तो हो पर जान बूझ कर अनजान बन रहे हो। तुम्हारा भी मन श्रीकृष्ण के चरणों में ही अब भी विद्यमान है केवल शरीर मात्र से यहाँ गोकुल पधारे हो। यदि मन भी यहाँ तुम्हारे साथ होता तो तुम औचित्यानौचित्य का विवेक करने में अवश्य समर्थ होते और इस प्रकार आँय बायं शायं न बकते। वास्तव में बात भी ऐसी ही है कि पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्ण से वियुक्त होके किसी को शान्ति नहीं मिल सकती। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि उद्धव! यदि हमारा कथन निराधार एवं मिथ्या है तो हम तब जाने जो तुम अब यहीं रहो मथुरा कभी न जाओ क्योंकि सांसारिक माया मोह तो सब झूठा ही है फिर तुम्हारी मथुरा और वहाँ पर विद्यमान हरि से ममता क्यों है? इसलिए जिस माया मोह को हमें त्यागने के लिये कह रहे हो उसका परित्याग करके हमारी ही तरह तुम भी सदा के लिये कृष्ण वियोगी बन जाओ। यदि स्वयं उस ममता का परित्याग नहीं कर सकते तब तो हमें आपके लिए यही कहना पड़ेगा कि—

परोपदेश पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्

धर्मे स्वीय मनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः। अथवा तुलसी के शब्दों में "पर उपदेश कुशल बहुतेरे जे आचरहिं ते नर न घनेरे।" (*रामचरितमानस*)

१५० उद्धव के निर्गुणोपदेश सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि महाराज यह निर्गुणोपदेश हमारे कल्याण के लिए नहीं है। यह तो कृष्ण को कुब्जा के साथ प्रेम निभाने की छूट देने का प्रपंच रचा गया है। इस वास्तविकता को समझ लेने पर हमें और भी अधिक दुःख होता है। इसी आशय से वे उद्धव से कहती हैं कि हे मधुकर! तुम बात की वास्तविकता तो जानते नहीं। बार-बार ऐंड़ी बेंड़ी बातें करके हमारे हृदय को जला रहे हो। इससे तो तुम रास्ता नापो तो अच्छा है। तुम जानते हो कि जिस हृदय में यशोदानन्दन कृष्ण निवास करते हैं उसमें निर्गुण के लिए स्थान कहाँ मिल सकता है। और निर्गुण को छोड़ कर सगुण में हमारी आसक्ति होना ऐसा ही है जैसा कि हे मधुप! तुम्हारा वन २ के फूल और पत्तियों में भटक कर उन्हें परित्याग करके सब बल्लियों से विहार करके अन्त में कमल की पखड़ियों में आश्रय

लेना है। तुम सब फूलों को छोड़ के कमल में आश्रय लेते हो और हमारा मन सब पथों को छोड़के अन्त में कृष्ण चरणों में आश्रय प्राप्त करता है। ये सब बातें हमारे समझाने की नहीं हैं तुम भी ये सब समझते हो परन्तु फिर भी अपनी ही कहे जारहे हो। सूर की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यह सब समझ बूझ के भी तुम्हारे आग्रह का कारण हमें समझ में आगया। यह सब निर्गुण उपदेश हमारे कल्याण के लिए नहीं अपितु इसलिए है कि यदि कहीं कृष्ण हमारी व्यथा से द्रवित होके व्रज आगए तो कुबरी महारानी की कुशलता कैसे रह सकेगी? उसकी कुशलता के लिए ही यह प्रपंच रचा जारहा है।

१५१ कृष्ण की वियोग व्यथा को असह्यता वर्णन करती हुईं गोपियां कहती हैं—

हे कृष्ण? तुम्हारा प्रेम प्रेम है या तलवार है। हे श्याम! तुम्हारी उस तलवार की कटाक्ष रूपी तीव्र धार से सभी व्रजाङ्गनाएं घायल हो रही हैं। यद्यपि वे आरत होके वृन्दावन के धर्म क्षेत्र में धराशायी हो रही हैं पर फिर भी हार नहीं मानती अर्थात् तुम्हारे वियोग में सब करम हो जाने पर भी वे तुम्हारे वियोग का परित्याग नहीं कर सकतीं। वे क्षत विक्षत होके पुण्य रण भूमि में रोती चिल्लाती रहीं और तुम्हारे चन्द्र मुख की शोभा-पानी को पी पी करके अपने जीवन की रक्षा करती रहीं। सूर कहते हैं कि गोपियों ने अन्त में कहा कि हम इस अवस्था में भी उस सुन्दर श्याम की मनोहारी मूर्ति की शोभा को सदा देख २ जीती रहेंगी। अब बहुत गई थोड़ी रही! इसके लिए अब यों ही जीने दो हमें बिलकुल मार न डालो। वियोग सन्ताप में जलते हुए प्रेम को निभाना हमारे लिए कहीं अच्छा है। इसमें मर कर भी हमें अमरता की प्राप्ति होगी और प्रेम तोड़के निर्गुण को अपनाने में हमारा कलङ्क पूर्ण मरण होगा जो हमे स्वीकार नहीं है।

विशेष—इस पद में रूपक अलकार है।

१५२ गोपियाँ उद्धव से निर्गुण का उपदेश सुनके कहती हैं कि हमारा मन मनाने पर भी तुम्हारी बात मानने को तयार नहीं। इसलिए तुम हमें ऐसे ही रहने दो हमें कल्याण नहीं चाहिए हम तो इस वियोग में ही खुश हैं। वे कहती हैं कि हे मधुकर! तुम्हारे कथन को मनाने पर भी कौन मानने को तैयार

है अर्थात् कोई नही है। हम उस रसिक शिरोमणि से नाता तोड़ के उस निर्गुण से प्रेम किस प्रकार से जोड़े ! वह तुम्हारा अविनाशी अत्यन्त अगम्य तथा अप्रत्यक्ष निर्गुण प्रेम के रस को पहचानने की क्षमता कहाँ रखता है। जन्मजन्मान्तरों की साधना के पश्चात् भी वह निर्मोही अपने उपासकों को दर्शन नहीं देता। इससे अधिक हृदय हीनता क्या हो सक्ती है ? इसलिएहमें तो तुम्हारी बात जचती नहीं है। तुम अपनी समाधि की बातें उन्हें सिखाओ जो ज्ञानी है। हमें तो तुम ब्रज में कृष्ण विरह के सन्निपात में उन्मत्त जीवन ही व्यतीत करने दो इसी मे हमारे लिए अच्छाई है। हम सोते जागते स्वप्न में या प्रत्यक्ष मे सभी दशाओं में उन्हीं को पति मान के रही हैं और रहेंगी। हम तो बाल-गोपाल के लीला सागर में अभिन्न होके ऐसी सन रही हैं कि हमारी पृथक् सत्ता ही शेष नहीं रह गई। भला समुद्र मे पड़ी हुई छोटी सी बूंद को क्या कोई अलग कर सक्ता है। इसी प्रकार हम भी उस लीला-धर को अभिन्न अङ्ग होगई हैं उससे पृथक् हमारी कोई सत्ता नहीं है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे तन मन धन सब हरि के मुसस्मित के क्रीतदास हैं।

विशेष—यहाँ पर गोपियों का लीलासिंधु के साथ अभिन्नता का प्रतिपादन दो प्रकार से हो सकता है। एक तो जैसा कि मुण्डकोपनिषद् में कहा है—यथानद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तगच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्नामरूप द्विमुक्तः परात्पर पुरुषमुपैति दिव्यम् (मुण्डक-२-२-८) अर्थात् जिस प्रकार नदियाँ अपने नाम रूप भेद से भिन्न होकर बहती हैं परन्तु समुद्र में लीन होके अपने नाम रूप से विमुक्त होके समुद्र के साथ अभिन्न हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान् मुमुक्षु जीवन में नाम रूप के भेदों से युक्त रहता है और बाद में अखण्ड ब्रह्म में अपना नाम रूप खोकर ब्रह्म के साथ अभिन्नाकार हो जाता है।

दूसरा अभेद गुण और गुणी का है। गुण गुणी से पृथक् होता हुआ भी अपनी भिन्न और स्वतन्त्र सत्ता कहीं भी रखता दृष्टि-गोचर नहीं होता। सविशेष सिद्धान्त में इसी प्रकार का विशिष्टाद्वैत

स्वीकार किया गया है।

हमारे विचार से गोपियों की लीलासिंधु के साथ दूसरे प्रकार की अभिन्नता ही सूर को इष्ट है। वास्तव में साधक और साध्य की अभिन्नता सूर के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं पड़ती।

१५३ गोपियाँ निर्गुण का सन्देश सुनकर उद्धव से कहती हैं कि हमारी सगुणासक्ति अप्रतीकार्य है। उनका आग्रह पूर्ण उसे त्यागने के लिए कभी भी तयार नहीं है। इसलिए वे कहती हैं कि हे मधुकर! हमारे मन बड़े बांके विगड़ैल हैं। इन्हें गीता का कर्मयोग या ज्ञानयोग नहीं समझ में आता ये तो कृष्ण की मुसकान के लिये ही मचले रहते हैं। बात यह है कि इन्हें पहले से यदि वह रूप माधुरी न मिलती तो ये उसके लिये रूठना न जानते। पर ये तो सदा बाल-गोपाल की रूप माधुरी के सुरस में अनुरक्त रहे हैं इसीलिये तो अब नीरस निर्गुण की बात सुनके टेढे खड़े हैं। आप भी इसे सुधारने का प्रयत्न व्यर्थ कर रहे हैं। करोड़ों उपाय करने पर भी कुत्ते की पूंछ सीधी नहीं होती। इसी प्रकार नाना हानि लाभ दिखाके प्रबोध करने पर भी इन्हें हरि-चरण कमल नहीं भूलते। भला जिन चरणों ने प्रविष्ट होके हृदय को सर्वथा सन्तुष्ट किया उन्हें भुलावें भी तो कैसे? तुम्हारा योग तो इन्हें अन्धे कुए की तरह डरावना लगता है जिसे देख के ये दूर से ही भाग खड़े होते हैं। आज दिन तक ये हरि जू के प्रेम सौभाग्य से भरे पूरे रहे आज योग सुनके उन्हेंऐसा लगता है कि कोई उन्हें अमृत से निकाल के जहर में गलाने जा रहा हो। इसलिए सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा—कि हमें तुम कृष्ण के वियोग से व्यथित ऐसे ही रहने दो सो अच्छा परन्तु निर्गुण की आराधना अच्छी नहीं।

विशेष—इस पद मे निदर्शना, रूपक और उत्प्रेक्षालङ्कार है।

१५४ गोपियाँ उद्धव के अप्रिय योग को सुनना नहीं चाहतीं। अतएव वे उनसे कहती हैं कि हे मधुकर! यदि तुम वास्तव मे हमारे हितैषी हो तो तुम हमारी सगुण भक्ति के अमृत सागर मे योग का खारा जल मत डालो। अरे धूर्त! कभी दूध देने वाली गैया को हल में जोतना अच्छी रीति कही जा सकती है। अर्थात् नवनीताङ्गी व्रजाङ्गनाओं के लिए कष्ट साध्य योगका उप-

देना सर्वथा अनीति ही कही जायगी। भला जो रस्सी को देखके ही डर उनके आगे काले साँप फेंकना कितना घातक है ! हे मधुकर ! जरा तू अपनी करनी की ओर तो देख। तू बिना काटे छत्ते को भी छोड़कर नहीं जाता। परन्तु वही बल रहते हुए भी रात को तू कमल में बन्द रहता है अपने उस पौरुष से कमल की कोमल पंखड़ियों के किवाड़ को नहीं काटता। (मिलाये–दारुभेद निपुणोऽपिषडंघ्रिर्मिर्विति पङ्कजकोशनिबद्धः) । इसलिए अरे चपल रङ्गरेलियों के लोभी मधुकर ! तुम क्यों व्यर्थ में बकवाद कर रहे हो। दूसरों को उपदेश देने से पहले अपना मुँह तो शीशे में देख लो। सूर कहते कि गोपियों ने कहा मधुकर ? सोचो तो सही जिस श्याम शोभा ने हमारे सर्वाङ्ग में घर कर लिया है उसे हम कैसे भुला सकती हैं।

१५५ निर्गुणोपासना और योग साधना गोपियों के नितान्त अननुरूप है इस आशय से वे उद्धव से प्रश्न करती हैं–हे मधुकर ! यह कौन गाव की रीति है ? तुम व्रजयुवतियों के लिये योग का उपदेश दे रहे हो ये तो सब उल्टी बातें हैं। भला सोचो तो जिस सिर मे तेल और फुलेल लगाके श्रीकृष्ण ने अपने हाथों पटियाँ गूथीं और छोरी हैं उसी सिर मे तुम श्मशान में रहके भस्म लगाके भारी २ जटाएं बाँधने को कहते हो। जिन कानों में रत्नजटित कमलों के समान चमकने वाले कर्णफूल पहरे हैं उन्हीं कानों मे कनफटे योगियों की मुद्राएँ पहिराते हुए तुम्हें दया नहीं आती ? जिनकी नाक मे नथ, गले मे मणिमालाएँ तथा मुखों में कपूर की सौरभ सुशोभित होती थी उन्हीं के मुह में तुम सिंगी बजाने तथा मदार और ढाक के पत्तों का भोजन करने के लिये बता रहे हो। जिस शरीर पर कस्तूरी और चन्दन का लेप करके महीन वस्त्र धारण किये उसी शरीर के लिये क्या श्रीकृष्ण ने पुराने चिथड़े (कन्थादि) भिजवाये हैं। हमारे प्रियतम कृष्ण अविनाशी हैं। यदि इस प्रकार से वे हमें योगी की शिक्षा देंगे तो उनके ज्ञान की महत्ता मिट जायगी क्योंकि ज्ञान की महत्ता इसी मे है कि ज्ञानोपदेशक पात्रापात्र को देखके ज्ञान की शिक्षा दे। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि इतने पर भी यदि आप लोग नहीं मानते तो जाके उनसे कह देना कि मथुरा में जब तक रहे तब तक भोग करलें बाद में

यहाँ ब्रज में आके योग साधना करें। भावार्थ यह है कि तुम जाके उन्हें यहाँ भेज दो फिर हम और वे साथ २ योग की साधना करेंगे।

१५६ गोपियाँ निर्गुणोपासना की निस्सारता और अननुरूपता दिखाती हुई भ्रमर को सम्बोधन करके उद्धव से कह रही हैं—हे मधुकर, यद्यपि हमारे नेत्र उन पुण्डरीकाक्ष की बाट देखते २ नितान्त श्रान्त हो गए हैं तथापि ये सदा अत्यन्त प्रेम मग्न रहते हैं। निराशा में वैराग्य हो जाता है परन्तु इन नेत्रों के निराशा में भी आसक्ति बढ़ रही है। जिस दिन से वे वियुक्त हुए हैं उस दिन से हमारी नींद भी समाप्त हो गई है। भय और शका से ये नेत्र अधिकाधिक चौंकते रहते हैं। जाग्रत, स्वप्न और तुरीया सभी अवस्थाओं में वे हमारे हृदय में विद्यमान रहते हैं। (यद्यपि अवस्थाए चार मानी गई हैं—जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय) परन्तु सूर ने इस पद में सुषुप्ति का कथन नहीं किया। गोपियों की निद्रा खत्म हो चुकी है इसलिए सुषुप्ति का कथन न करके सूर ने पहले आये हुए जागरण की पुष्टि ही की है। स्वप्न का तात्पर्य अर्ध निद्रावस्था से है जब पुरुष अर्धनिद्रा अवस्था में होके कभी कुछ कभी कुछ अनुभव करता रहता है। जीव की तुरीयावस्था मोक्ष में होती है। यहाँ पर सब सुध बुध खोकर विदेहावस्था के भाव से ही तुरीय का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है)।

सूरदास कहते है कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि तुम अपने निर्गुण का उपदेश उसको दो जो इसका तत्व जानते हों। हमें तो सुस्वादु गोपाल को छोड़कर खारी टेंटियों का खाना अच्छा नहीं लगता। सगुणोपासना में जो रस है वह भला निराकारोपासना में कहाँ ?

१५७ गोपियों के प्रेम में दृढ़ता देख के उद्धव ने सोचा कि ये तो कृष्ण पर जान दे रही हैं और वे इन्हें योग का सन्देह देकर इनसे पल्ला छुड़ा रहे हैं। ऐसा प्रेम भला कितने दिनों टिकेगा ? उनकी शका का समाधान करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे मधुकर ! तुम्हें काले की जाति के गुण भी मालूम हैं ? ये किसी के सगे नहीं हुआ करते। जिस प्रकार मछली जल से प्रेम करती है और भौंरा कमल से उस तरह ये किसी से प्रेम नहीं करते हैं, क्रूर कोकिल कपट व्यवहार से कौए को छलती है और अपना बनाके चलता

बनती है फिर उस बन में भूलकर भी नहीं जाती। उसी प्रकार कृष्ण ने भी हमारे साथ खूब रंगरेलियाँ का आनन्द भोगा और फिर चलते बने। अब आने का नाम भी नहीं लेते। इतना ही नहीं काले की जाति में कूट-कूट कर क्रूरता भरी हैं। जिस पुत्र के लिए लोग अनेकों यज्ञ, योग और तप करते हैं उसी दुर्लभ पुत्र को नागिन जाते ही निर्मम होकर खा जाती है। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि इन सब बातों को सोचकर उनके कृत्यों पर विस्मय करना व्यर्थ है। उनकी छाती तब तक ठण्डी ही नहीं पड़ती जब तक वे औगुन नहीं कर लेते। इसलिए कृष्ण के रूखे व्यवहारों पर आश्चर्य मत करो वे भी काले हैं इसलिये अपनी बिरादरी वालों के सुर में सुर मिला कर उन्हें बोलना ही चाहिये इसमें अनहोनी बात कौन सी है!

विशेष—इस पद में उपमालङ्कार और वृत्त्यनुप्रासालङ्कार है।

१५८ योग का सन्देश हमारे लिये किसी भी तरह माननीय नहीं है। यह तो हमें और भी अधिक पीड़ाकारी है इसलिये गोपियां भ्रमर को संबोधन कर के उद्धव से कह रही हैं—

मधुकर! अच्छा तो आप योग का संदेशा लाए हैं! आपने अच्छी श्याम की कुशलता सुनाई! जिसे सुनते ही हमें तो आशंका होने लगी! मन में कभी न कभी तो मिलने की आशा लगी ही थी आपने आते ही उस पर भी पानी फेर दिया। अब आप युवतियों से जटा बंधा कर योग साधना से अविनाशी की प्राप्ति के लिए कह रहे हैं। ठीक है पर एक बात याद रखिये आप को जिन्होंने यहाँ गोकुल भेजा है, वे वसुदेव के पुत्र हैं। हम उनकी बात मानने को तयार नहीं, वे राजा हैं तो अपने घर के। हमारे यहाँ ब्रज में तो मनोहारी श्याम शरीर नन्दकुमार बिहार करते हैं यहाँ तो उनकी चलती है। इसलिए आप अपने राजा साहब की चीज़ उन्हें जाकर सादर सौंप दें।

१५६ श्याम की रुलाई पर व्यंग्य करती हुई गोपियां उद्धव से कहती हैं—अरे! तुम्हारे मथुरा निवासी कृष्ण बड़े विनोदी रसिया हैं। भला अब वे गोकुल क्यों आने लगे? उन्हें तो नवयुवतियाँ भाती हैं। उन्हें उन दिनों की याद अब कहाँ आती है जब हम उन्हें गोदी में खिलाया करती थीं। जब नन्द बाबा और यशोदा उनके बालों में कांच की गुरिया गूँथ दिया करते

थे। अब चार दिन से पीताम्बर और कुरती पहनना सीख गये तो पिछली बातें सब भूल गये। सूर के प्रभु श्याम को अब वह कमरिया भूल गई। अब तो भाई! वे छैला हो गये।

१६० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमने बड़े आनन्द भोगे। पर आज यह विरह दुःख की विपत्ति सामने आई। इस सब उपद्रव का कारण हम स्वयं हैं। दूसरे को दोष देने से क्या लाभ? अपना ही दाम खोटा तो पारखी की क्या लाग? इसलिये वे कहती हैं कि उद्धव! हमी पगली हैं। उनके सुन्दर शरीर को केसर के तिलक, गु जाओ की माला और पीताम्बर की शोभा से युक्त देखकर हमारे नेत्र उनके सङ्ग लग गए। परन्तु हाय! उस मूर्ति ने तो हमारा चित्त चुरा लिया। जिसका फल हम इस समय भर भुगत रही हैं। इसीलिये तो चतुर लोग हमें पगली कहते हैं (अथवा इसीलिये हम अपनी मति को पगली कहती हैं) जो कुछ भी हो, सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि श्याम की बड़ी कठोरता है कि योग का संदेश हमारे लिये भेजा। यह उपदेश तो पागलों के लिए है।

१६१ कृष्ण के वियोग में जीवन धारण करने को भी एक अपराध मानती हुई राधा उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! मै अपनी भूल कहाँ तक मानूँ गोपाल के वियोग में यह मेरा हृदय दो टुकड़े क्यों न होगया? अब सांप की फूँक के समान यह तन और यौवन सब व्यर्थ जा रहा है। हृदय में विरह का दावानल जल रहा है और बड़ी घातक हूक उठती है। जिस सॉप की मणि हर ली गई हो वह क्या कर सकता है सिवा इसके कि वह इसकी मूक वेदना को मन मारकर सहता रहे। इसी प्रकार मेरे लिए भी अब मौन रह कर इस असह्यवेदना को सहन करने के अतिरिक्त और क्या चारा है। सूर कहते हैं कि इन घातक विपत्तियो के पहाड़ टूटने से गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमें व्रज में निवास करने पर शुक्र दक्षिण की ओर था कि जिसका परिणाम हम आज भोग रही हैं।

विशेष— इस पद मे रूपक और अन्योक्ति अलंकार हैं।

१६२ गोपियाँ उद्धव की योग की शिक्षा को अपने लिए सर्वथा अनुपयुक्त बताती हुए कहती हैं कि उद्धव! यहाँ योग को कौन जानता है? हम स्त्रिया

हैं। जब हमारे पति जीवित हैं तो हमारा योग से क्या वास्ता ? जीवत्पति-काओं के लिये तो केवल पति की सेवा ही सब कुछ है। हमसे योग साधन नहीं हो सकता न मौन धारण किया जा सकता है। हमारे लिए प्राणायाम करके मन रूपी पत्ती को बाँध रखना असम्भव है तुम्हीं बताओ जिन्हें सूक्ष्म वस्त्र पहनने की आदत रही है वे मृगछाला कैसे ओढ़ सकेंगी ? हमारे गुरु वे ही हैं जो आज कल कुबरी के हाथ की माला बने हुए हैं। उसी के घुमाये घूमते हैं। परन्तु मदन मोहन श्रीकृष्ण के बिना हमारे तो मन में कोई बात ही नहीं जमती। इस लिए उद्धव ! हमें तो यह बताओ कि सूर के प्रभु श्याम जो सब दुःखों का दमन करने वाले हैं वे कब आयेंगे; क्योंकि उन्हीं के आने से हमारा दुःख शांत होगा। इन उपदेशों से नहीं।

इस पद में रूपक अलङ्कार है। 3532

१६३ ब्रज में रहते हुये कृष्ण को प्रेम मग्न राधा ने अनेक प्रकार से तंग भी किया था अब वियोग से व्यथित होने पर उन्हें ब्रज निवास के लिए आमन्त्रित करती हुई उद्धव से कहती है कि यदि वे फिर यहाँ आ जावेंगे तो मैं कोई बात ऐसी न करूँगी जिससे उन्हें कष्ट हो। वह विलाप करती हुई कहती है—

हे गोकुलनाथ कृष्ण ! तुम फिर से आके ब्रज में रहो। मैं तुम्हें जगा के गौओं के साथ नहीं भेजूंगी। मैं तुम्हें अब कभी मक्खन खाने से नहीं रोकूँगी अब तुम खूब मक्खन लुटाना मैं कभी नहीं रोकूँगी। मैं तुम्हारी शरारतों की शिकायत यशोदा के सामने कभी नहीं करूँगी और न मैं कभी उनके हाथ में रस्सी और छड़ी ही तुम्हें पीटने केलिये दूँगी। तुम्हारी चोरीका भेद अब कभी नहीं खोलूँगी और न तुम्हारे अन्य औगुनों के ही बारे में कुछ कहूंगी। मैं अब तुमसे कभी नहीं रूठूँगी और न काम केलियों के लिये कभी आनाकानी करूँगी। मैं तुमसे अपनी प्रसन्नता के लिये मुरली बजाने और गाने के लिये कभी नहीं कहूंगी। तुमसे मैं अपने पैरों में महावर देने, वेणी गूंथने तथा वंशीवट के नीचे बैठकर या जमुना के तट पर रह के अपना श्रृंगार करने केरे लिए भी कभी नहीं कहूँगी। मैं भूषणों के भार से बोझिल बाँहों को तुम्हारे कंधे पर रखके कभी रास में नृत्य नहीं कराऊँगी। मैं अब पहले की तरह स्वयं संकेतस्थल में बैठ के तुम्हें दूती द्वारा बुला भेजने की उद्दंडता

नहीं करूँगी। यदि तुम एक बार भी प्रेम के पथ में मुझे बसा के दर्शन दे दो तो मैं तुम्हें सिंहासन पर बिठा के स्वयं तुम्हारे ऊपर चँवर ढालूँगी और इन नयनों से तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यंग का आलिंगन करूँगी? इसलिए हे नन्दनन्दन! अब दर्शन दो। मुझे तुम्हारे मिलने की अब भी आशा है। सूर के स्वामी श्याम की कौमार शोभा के लिये आज भी ये नेत्र तृषित हैं। कवि ने 'कुँवर-छवि' कहकें स्त्रियों के सहज सपत्नी के प्रति ईर्ष्यालु स्वभाव की व्यजनाकी है। कहीं ऐसा न हो कि वे अपनी पत्नी कुँवरानी साहिबा सहित पधारें। इससे तो उन्हें और भी क्षोभ होगा। अतएव वे उसी कुमार रूप में उनसे मिलना चाहती हैं।
१६४ वियोग की अवस्था में भी प्रिय द्वारा अपना स्मरण सुनके प्रेमी को शान्ति मिलती है। इसलिये नन्द और यशोदा उद्धव से पूछते हैं—क्या कभी गोपाल हमारा भी स्मरण करते हैं? यह बात पिता नन्द और माता यशोदा उद्धव से पूछती है। वे सोचते हैं कि शायद हमारी दी हुई यातनाओं के कारण वे याद न करते हों इसलिए इस प्रश्न का उत्तर तो बिना दिये ही प्राप्त है। इसी आशय से वे कहते हैं कभी अनजान में हमसे भूल तो हुई होगी अएव यदि वे न भी याद करते होंगे तो हमारे पछताने से क्या फायदा है। अच्छा होता कि हमने चूक न की होती और वे आज हमारे सद्व्यवहारों के कारण हमारी याद अवश्य करते। परन्तु वह तो समय अब बीत गया अब उन चूकों पर भी पश्चात्ताप करने से क्या लाभ? (श्री कृष्ण के जन्म होने के बाद कंस हाथों से उन्हें बचाने के लिये उनके पिता वसुदेव उन्हें नन्द के यहाँ दे आये थे और उसी समय जनमी हुई उनकी कन्या को ले आए थे। इसी प्रसंग को ध्यान में रख कर नन्द जी कह रहे हैं) जबकि वसुदेव हमारे घर आये थे तो गर्ग मुनि ने उनके ग्रह देखके यह पहले ही कहा था कि इस पुत्र को देखके नन्द! तुम भूलो मत। यह तुम्हारा नहीं है और न रहेगा इसलिए तुम इस से बहुत मोह न करना। परन्तु हम गँवार अहीर इस बात की यथार्थता न समझ पाये। पर आज सब सामने आया और उन सूर के स्वामी श्याम के बिछुड़ने से रात दिन हृदय व्यथित रहता है।
१६५ जब उद्धव कृष्ण का संदेश लेके व्रज में आये तो सभी लोग इस खुश खबरी को सुनके उनके पास दौड़े आए। पश्चात् उनके सब समाचार सुने कि

किस प्रकार कृष्ण ने कंस को मारा, उग्रसेन को बन्धन से छुड़ाया और अन्त में मथुरा के सर्वेसर्वा हो गये। इन सब बातों से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृष्ण अब व्रज में नहीं आवेंगे। यही आशय इस पद में वर्णन किया है। गोपियाँ परस्पर कहती हैं—आज तो बड़ी खुश खबरी सुनी जा रही है कि किसी को कमल नयन कृष्ण ने अपनी सी साज सज्जा बनाकर यहाँ भेजा है। चलो चलकर पूछें कि प्रियवर कैसे हैं? अब आज और कुछ काम तो करना ही नहीं है! उद्धव के पास जाकर पूछने पर पता चला कि कृष्ण कंस को मार कर अपने पिता वसुदेव को कारा से छुड़ा कर घर ले आये। कंस के पिता उग्रसेन को राज्य दे दिया और स्वयं शासक एवं नियंता होने के कारण-राजा हो गये। सूर कहते हैं कि गोपियों ने यह जानकर आपस में कहा कि भाई! अब वे राजा हो गए हैं। उन्हें अब वह सुख यहाँ गैयों के साथ ग्वालों में रह कर कैसे मिल सकता है? इसलिये अब तो चाहे करोड़ों उपाय क्यों न करो पर कृष्ण व्रज में नहीं आवेंगे।

१६६ उद्धव के आगमन पर प्रसन्नता और कृष्ण के न आने पर पश्चात्ताप प्रकट करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि उद्धव! आज हम अत्यन्त भाग्यशालिनी हैं। जिस प्रकार वायु पुष्पों की सुगंध लाकर मधुपों को अनुरक्त बना देता है ठीक इसी प्रकार आपने हमारे प्रियतम की खबरें लाकर हमें इतना अनुरक्त बना दिया है कि हमारा अङ्ग प्रत्यङ्ग आनन्द से उमंगित हो रहा है। आज आपके द्वारा उनकी खबर पाकर जो सुख हुआ है उसे त्यागते नहीं बनता। आज तुम्हें देखकर हमें सब दुःख भूल रहे हैं ऐसा लगता है कि मानों हम प्रियतम कृष्ण से ही मिल रही हैं। तुम्हारा दर्शन श्याम के समान ही है यद्यपि यह दर्शन यथार्थ में वह नहीं है पर उसका प्रतिबिम्ब अवश्य है। जिस प्रकार शीशे में आँखों से दिखाई देने वाला प्रतिबिम्ब हाथों की पकड़ से परे होकर यथार्थता प्रकट करके भी आनंददायी होता है उसी प्रकार सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव! तुम्हारे रूप में श्याम की प्रतिकृति देखकर हमें ऐसा आभास होता है कि श्याम से ही मिलकर अपनी वियोगावस्था मिट रही है।

इस पद में—दृष्टान्त और गम्योत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

१६७ उद्धव के आगमन और सदेश लाने का समाचार ब्रज में सर्वत्र फैल गया। गोपियाँ उस सदेश को सुनने के लिए उत्सुक होकर चल पड़ीं और इस प्रकार चलती हुई वे एक दूसरे से कहने लगी—अरे सखि। मथुरा से चिट्ठी आई है। हमारे प्रियतम श्याम ने चिट्ठी लिखकर उद्धव के हाथ यहाँ भेजी है। मैयारी ! न जाने उसमें क्या लिखा है ज़रा चलकर सुनतो लो। यह सुनकर सब अपने अपने घर से दौड़ी आई और चिट्ठी लेकर हृदय से लगाली। उसे देखकर उनके नेत्रों में अविराम अश्रु धारा प्रवाहित हो उठी। उसकी प्राप्ति से जो प्रेम की पीर जगी वह उन अविराम अश्रुओं से भी बुझ न सकी। सूर कहते हैं कि गोपियोंने आसू बहाकर और प्रेम विह्वल होकर कहा कि क्या करें कृष्ण के बिना यह गोकुल सूना है। उनके बिना हमें यहाँ कुछ नहीं सुहाता। हाय ! न जाने हम से क्या अपराध हुआ कि श्याम ने हमारी याद भुला दी।

इस पद में—विभावनालकार गम्य है।

१६८ उद्धव ने गोपियों के एकत्रित हो जाने पर कृष्ण का सन्देश कहना प्रारभ किया। उन्होंने कहा—हे गोपियो ! कृष्ण का सदेश सुनो। तुम लोग योग समाधि द्वारा अन्तर्दृष्टि होकर अन्तर्यामी प्रभु का दर्शन करो यही कृष्ण का तुम्हारे लिए उपदेश है। वे प्रभु अज्ञात अनश्वर व्यापक तथा प्रत्येक अत करण में समाए हुए हैं। उसी को निश्चय करके अपनी चित्तवृत्ति को हृत्कमल में व्यवस्थित करके पाने का सकल्प करो। इसी तरह तुम्हारा विरह व्यथा से छुटकारा होगा और इस भौतिक राग से ऊपर उठ जाने पर तुम्हें ब्रह्म के दर्शन होंगे। शास्त्रों का कथन है कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' अर्थात् बिना तत्वज्ञान के मुक्ति नहीं होती। माधव के इस असह्यवेदना दायक सन्देश को सुनकर गोपिया फूट फूट कर विलाप करने लगीं। सूर कहते हैं कि उनकी विरह दशा की कथा चलाना भी व्यथा दायक है। उसका वर्णन तो दूर रहा वह तो मन में आते ही नयनों से अश्रु प्रवाहित करने लगती है।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है।

१६९ योगके नीरस और अनुचित सदेश को सुनकर गोपिया उद्धव से भ्रमर को सबोधन करके कहने लगीं—हे मधुकर (उद्धव) क्यों तुम अपनी सुमति को गँवा रहे हो। देखो तुम्हारी बेढगी बातें सुनकर इस ब्रज में तुम्हारी हँसी होने

लगी है। इसलिये अच्छा हो कि तुम अपने योगको छिपाए रहो। तुम योग के द्वारा अन्तर्यामी आत्मा (ब्रह्म)के दर्शन कराते फिरते हो और अपनी निर्गुण की पोटली कांख में दबाये घूम रहे हो कि कोई इसे ले न ले। परन्तु यहा तुम्हें इसकी इतनी सावधानी की क्या आवश्यकता है? यहा यह किसी के काम की नहीं है। इसका यहाँ कोई गाहक नहीं। यदि तुम्हारी काँख से गिर पड़ी तो भी इसे कोई छुएगा तक नहीं। अरे मधुकर! प्रेम की पीर का मर्म वही जानता है जो भुक्त भोगी है। तू तो रूखा है तुझे क्या मालूम कि प्रेम क्या होता है? तुम तो तुम जरा अपने आका से ही पूछ देखना। यों तुम महान् दूत हो और बड़ी जगह (कृष्ण की राजधानी मथुरा) से आए हो इसलिये तुम्हारा ज्ञान बड़ा ही कहा जायगा। परन्तु तुम्हारे इस उपदेश को सुनकर तो हमें बड़ी निराशा हुई। सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि सब कुछ है पर जाति का प्रभाव कहाँ जायगा? तुम षट्पद (भ्रमर-गुबड़ीले) हो न? इसलिये पुरीष (विष्ठा) के स्वाद की सराहना चारों ओर करते फिरते हो। सो ठीक ही है क्योंकि–'श्वा यदि क्रियते राजा स किं नाश्नात्युपानहम्'–कुत्ता राजा हो जाय तो क्या जूते चबाना थोड़े ही छोड़ देता है।

इस पद में अन्योक्ति अलंकार है।

१७० गोपिया अपने सुहावने अतीत की व्यथादायी वर्तमान से तुलना करती हुई कहती हैं जिन्हें स्वय कृष्ण अपने मुख के पीयूष प्रवाहसे प्लावित वेणु का कलनाद प्रतिक्षण सुनाते थे उन्हीं को आज भ्रमर महाशय से ज्ञान की कथा सुननी पड़ रही है। जहाँ पर सखी समाज में कृष्ण की सरस लीलाओं की चर्चा करते हुए दिन बीतता था वहाँ भाग्य का ऐसा चक्र चला कि भ्रमर महाशय हमें समझा रहे हैं। अस्तु, आपको यह मालूम होना चाहिए कि जब तक रासरसिक हमारे प्रियतम विद्यमान हैं तब तक हमारा मन इधर (निर्गुण की ओर) कैसे उलझ सकता है? आप तो न जाने क्या किसी रूप-रहित के विषय में अपने मुँह से बक रहे हैं जैसे कि कोई किसी का माल हड़पने के लिए उसे भुलावा दे रहा हो। आपके निर्गुण को श्रेष्ठ और वेदानुकूल जानते हुए भी हमें अपने मन से प्रियतम को भुलाना उचित नहीं है। हमारे प्रियतम नंदनंदन के हस्त-कमलों की शोभा आज भी हमारे मुख और

हृदयों को छू रही है। अर्थात् उनका आश्वासन हरत हमें आज भी धैर्य बँधा रहा है। सूर कहते हैं कि उद्धव ने देखा कि ब्रज-सुन्दरियाँ एक से एक बढ़कर चतुर हैं। वे उनकी युक्तियों का तड़ाक से जवाब दे देती हैं ज़रा भी डरतीं नहीं। वे सब श्याम के प्रेम-सागर की ओर उन्मुखी हो रही हैं और किसी भी प्रकार उनकी वह दशा भूलती नहीं है।

इस पद में रूपक अलंकार है।

१७१ श्रीकृष्ण के वियोग में गोपिया ही नहीं ब्रज की गैया भी व्यथित हैं। इस पद में गोपिया उद्धव से गौओं की व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं– उद्धव ! तुम कृष्ण से जाकर इतना कह देना कि तुम्हारे वियोग में गैया बड़ी दुखी हैं और अत्यन्त दुबली हो गई हैं। उनकी आखों से अश्रु समूह प्रवाहित होता रहता है और जहाँ कहीं कोई तुम्हारा नाम लेता है तो वे हुँकार मारती हैं। जहाँ-जहाँ तुमने इन गैयों को दुहा था वहीं वहीं जाकर तुम्हें ढूँढती हैं। जब तुम उन स्थलों में दिखाई नहीं पड़ते तो वे अत्यन्त व्याकुल और दीन होकर पछाड़ खाकर गिरती हैं। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि कृष्ण के वियोग में गैया इतनी सतप्त हैं मानो वे पानी से बाहर निकाल कर फेंकी हुई मछलियाँ हों।

इस पद में स्वाभावोक्ति तथा वस्तूत्प्रेक्षालंकार हैं।

१७२ गोपिया योग साधन के उपदेश से भल्ला कर उलाहना दे रही हैं। वे कहती हैं कि ऊधो ! आज आप योग की शिक्षा देने यहाँ आए हैं। आप कहते हैं कि सिंधी भस्म अधारी और मुद्रादि योग के उपकरण लेकर आपको ब्रजनाथ नन्दनन्दन ने यहा भेजा है। पर जरा इतना तो सोचो कि यदि हमारे लिए योग लिखा था तो हम न सहीं वे तो अन्तर्यामी हैं अवश्य जानते रहे होंगे। फिर उन्होंने हमें सरस रास क्यों खिलवाया। हमें तभी ज्ञान का उपदेश क्यों नहीं दिया ? तब क्यों अधरामृत पिलाकर उन्मत्त बना दिया। उस समय हमें क्या मालूम था कि हमें योग और वैराग्य से पल्ला पड़ेगा। इसीलिए तो उनकी मुरली का शब्द सुनते ही हम अपने पति, पुत्र और घर-द्वार सब छोड़कर चल देती थीं। इतना होने पर भी न जाने हम उस दिन उनके साथ क्यों न चली गईं ? सूरदास कहते हैं कि आज गोपिया सचमुच श्याम के सग को

छोड़ देने के कारण मन में पछता रही हैं।

१७३ गोपियां उद्धव से योग का सदेश सुनके कभी तो खीजती हैं पर कभी इस आशंका से कि कहीं कृष्ण नाखुश न हो जावें दीनता से प्रार्थना करने लगती हैं। प्रस्तुत पद में वे उद्धव से निवेदन करती हैं कि उद्धव! हम किसी को दोष नहीं देतीं हमें तो अपना प्राप्य ही मिल रहा है। जो कुछ भाग्य में लिखा है उसे भोग रही हैं किसी दूसरे को दोष देने से क्या लाभ? भाग्य की गति तो देखो कि कुब्जा को तो मोहन सा सुन्दर वर मिले, हमें मिले योग का उपदेश! अब आप जैसा आदेश दें मोहन से निवेदन करने के लिए आप वही सन्देश समझलें और उनसे वही कहदें परन्तु हमारी यह प्रार्थना अवश्य सुना देना कि (सूर कहते हैं कि गोपियों पर) आपकी बड़ी कृपा होगी यदि उन्हें आप दर्शनामृत का पान करादें।

१७४ गोपियाँ उद्धव से अपनी व्यथा कहके निवेदन करती हैं कि उद्धव! आप कृपा करके हमारी ऊटपटाँग बातें उनसे न कहना। बिगड़ी को सभाल कर उनकी हमारी ओर से खुशामद कर लेना ताकि वे हमें दर्शन देने की कृपा करें। वे कहती हैं—

उद्धव! हम चिट्ठी लेके क्या करेंगी? जब तक गोपाल का दर्शन नहीं होता तब तक हमारा अन्तस् विरह सन्ताप से यों ही जलता रहेगा। मुझे तो एक क्षण भी वे शरद् की रात्रियाँ नहीं भूलतीं जब हम उनके साथ रास रचाती थीं जब से यौवन के साथ मदन का आगमन हुआ हमारा मन तो तभी से कृष्ण ने हथिया लिया है। यह सब होते हुए भी तुम पराई व्यथा को क्या समझोगे! तुम तो श्याम के ही साथी ठहरे! जो कुछ भी हो अब कृपाकर तुम उन सूरदास के स्वामी श्रीकृष्ण से हमारी ओर से ठकुरसुहाती ही कह देना ताकि वे अप्रसन्न न हों और हमें दर्शन दें।

१७५ यदि गोपियों के आक्षेप को सुनकर उद्धव कहें कि कोई बात नहीं जब वे यहाँ रहे थे तो तुमने प्रेम किया बड़ा अच्छा किया। पर अब विरह-व्यथा से शरीर सुखाना बुद्धिमत्ता नहीं है। इसीसे छुटकारा पाने के लिए हम तुम्हें योग बता रहे हैं तो इसके उत्तर में गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव! विरह से भी प्रेम बढ़ता ही है। विरह-व्यथा को सहकर में प्रेम दृढ़ रहना प्रेम को परि-

पक्व करना है। जिस प्रकार कपड़े पर अच्छा रंग चढ़ाने के लिए उसे गर्म किया जाता है; बिना उसे गर्म किए उस पर रंग अच्छा नहीं चढ़ता। संताप राग को सरस बनाता है। और जिस प्रकार अवा की आग में दग्ध होकर ही घड़ा शीतल जल का कारण बनता है, जिस प्रकार बड़े आकार में होने के लिए और हजारों फलों को देने के लिए पहले पेड़ के अंकुर को फटकर दो होना आवश्यक है और जिस प्रकार सूर्य से भी ऊपर स्वर्ग में रथ द्वारा जाने के लिए योद्धा को रणभूमि में सम्मुख शर प्रहार सहके मरना होता है इसी प्रकार विरह के सन्ताप से नितान्त संतप्त हो जाने पर ही प्रेमकी सफलता मिलती है। इसलिए सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि गोपाल के प्रेम जल की अगाधता तो हमारा इष्ट ही है और वह अगाधता विरह से ही संभव है। अतएव हम उस जल की अगाधता और विरह किसी से भी डरती नहीं।

इस पद में उदाहरणमाला और रूपक अलंकार है।

विशेष—योद्धा रणभूमि में सम्मुख मरके स्वर्गगामी होता है जैसा कि भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

द्वाविमौ पुरुषौ पार्थ सूर्यमण्डल भेदिनौ।
योगी योग युक्तश्च युद्धेचाभिमुखे हतः॥

१७६ विरहानल का सन्ताप असह्य हो रहा है इस आशय को व्यंग्य द्वारा गोपियाँ उद्धव से निवेदन कर रही हैं। वे कहती हैं कि उद्धव! उनसे जाके इतना निवेदन कर देना कि तुम्हारी सब प्रियतमाओं का यही कहना है कि हमारे हरिजू का इन दिनों मथुरा रहना ही ठीक है क्योंकि आजकल तुम स्वयं देख रहे हो कि चन्द्रमा सूर्य के समान संतापदायक है और हमारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दन अत्यन्त कोमल-कलेवर हैं वे इस सन्ताप को कैसे सहेंगे? जो पिक और मयूर मधुर बोलते थे वे आज वन और उपवनों में पेड़ों पर चढ़ चढ़ के बहुत ही कठोर बोलते हैं। ब्रज की प्रत्येक गली में गैया और बछड़े सिंह और भेड़ियों के समान उग्र बनके घूमा करते हैं। निवास स्थान, आसन और भोजनादि उपकरण जहर के समान हो रहे हैं और भूषण भण्डार और भवन सब साँप के समान दुःखदायी हैं। जिधर देखो उधर ही पेड़ों पर सैकड़ों काम धनुष लेके प्रहार कर रहे हैं। उद्धव! तुम तो बड़े सज्जन हो और तुम्हारा मन

मी कोमल है तुम सब रीतियों को जानते-पहचानते हो तुम्हीं बताओ ब्रज से बिना ये उपद्रव दूर किए सूर के प्रभु श्याम को किस प्रकार बुलाया जावे ?

विशेष—यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि के चमत्कार से विपरीत अर्थ विवक्षित है ।

१७७ उद्धव के उपदेशानुसार हरि को परब्रह्म के रूप में देखना उचित है और वह परब्रह्म सबके हृदय में निवास करते हैं । गोपियाँ इसका सीधा-सादा अर्थ ले के उद्धव को उपालम्भ देती हुई कहती हैं कि हे उद्धव ! यदि तुम्हारे कथनानुसार हरि सचमुच ही हृदय के भीतर हैं तो फिर उनसे हमारी इतनी अवहेलना कैसे बन पड़ती है । जब वे यहाँ ब्रज में रहते थे तब तो दावानल पेड़ों तक को न जला सका पर अब देह को क्यों जलाए डालता है ? सुन्दरश्याम हृदय से बाहर आके हम ठण्डा क्यों नहीं करते । आज उनके वियोग मे इन्द्र क्रुद्ध होके हमारे नयनों के मार्ग से बरसता हुआ घड़ी भर के लिए भी विराम नहीं लेता और हम शीत मे भीग रही हैं, डर के मारे शरीर थरथरा रहे हैं । वे हृदय में से निकल के पहले की तरह गिरि को धारण क्यों नहीं करते ? (एक बार इन्द्र ने ब्रज पर कोप करके मूसलाधार वर्षा की थी और कृष्ण ने गोवर्धन उठाके ब्रज को नष्ट होने से बचाया था। इसी से गोपियाँ कहती हैं कि जब वे ब्रज मे रहते थे तब तो उन्होने पर्वत उठाके ब्रज की रक्षा की थी अब यदि हृदय में हैं तो हमें बचाने के लिए गिरि को धारण क्यों नहीं करते ?) वियोग के सन्ताप से जो दशा हुई है उसका अब प्रत्यक्षीकरण हमें हाथ मे कंकण (जो ढीला हो गया है) और दर्पण लेके (मुँह देखके) होता है तब हम कुढ़न से और भी दुखी होती हैं । सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि—यह सब होते हुए भी योग की अपेक्षा विरहिणियाँ विरह को ही रखना अधिक पसन्द करती हैं ।

विशेष—प्रत्यनीक और सूक्ष्म अलंकार है ।

१७८ गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि वे श्रीकृष्णजी से ब्रज में विरह की व्यापक व्यथा के विषय में अवश्य कहें । सम्भवतः उसे सुनके उनका हृदय पसीज जावे और वे ब्रजवासियों को दर्शन देने के लिए चले आवें । वे कहती हैं—हे उद्धव ! इधर कृपालु बने रहना अर्थात् हम लोगों पर कृपा भाव रखना

और जितने ब्रज के व्यवहार हैं उन सबको तुम हरिजू से जाके कह देना। तुम से इस विषय में कहना व्यर्थ सा है विरह दावानल के प्रचण्ड दाह और उसके प्रभाव को तुम स्वय अपनी आँखों देखे जा रहे हो। इस विरहव्यथा को जैसे हम सहन कर रही हैं वह हमीं जानती हैं उसके कहने में हमें लज्जा आती है। काम न जाने कितनी चोटें करता है कि हृदय फटा जाता है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि इस प्रचण्ड दाह से शरीर जल कर भस्म हो जाता पर निरन्तर नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने के कारण बचा हुआ है।

इस पद में काव्यलिंग अलङ्कार है।

१७९ गोपियाँ उद्धव से विरह के व्यापक प्रभाव को वर्णन करती हुई कहती हैं—

हे उद्धव! इस ब्रज में विरहानल बहुत बढ़ रहा है। यह न केवल हमारे शरीर को ही दग्ध कर रहा है अपितु बढ़ते-बढ़ते यह घर-बाहर, नदी-वन तथा उपवनों की लता और पेड़ों तक पहुँच गया है। रात-दिन सब ओर धुँआ भरा रहता है जिससे चारों ओर अँधेरा ही घिरा रहता है और बड़ा भयावना लगता है। इस दाह ने नगर में बड़ी प्रचण्डता धारण कर रक्खी है जहाँ देखो वहाँ इसका द्वन्द्व मच रहा है। ऐसे प्रचण्ड अनल से जो कि जल (अश्रु प्रवाह) से उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है, क्षणभर में ही सब जल कर भस्म हो जाना चाहिए परन्तु होता इसलिए नहीं कि हम लोग 'हरि-हरि' मंत्र का जाप करती रहती हैं। इस मन्त्र के प्रभाव से यह सब जलके भस्म होने से बचा हुआ है। पर आखिर बकरे की माँ कब तक सिरनी बाटेगी? सच्ची बात तो यह है कि सूर के स्वामी नन्दनन्दन के बिना इस प्रचण्ड अनल से उद्धार होना असम्भव प्रतीत होता है।

इस पद में अतिशयोक्ति और काव्यलिंग अलङ्कार हैं।

१८० गोपियाँ उद्धव से विरह की दाहकता वर्णन करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव! तुम हमारे सन्देश और विरहव्यथा का वर्णन इस प्रकार से करना कि श्रीकृष्ण गोकुल चले आवें। थोड़े दिन वहाँ रह लिए, अच्छा किया पर देखो अब विलंब न लगावें। हा प्राणपति! तुम्हारे बिना कुछ नहीं सुहाता घर नैं

वन कुछ नहीं भाता है। हम तो हम ये बच्चे भी बिलख रहे हैं, गौएँ घास नहीं चरतीं न बछड़ों को दूध ही पिलाती हैं। उद्धव ! यह सब तुम अपनी आँखों देख रहे हो फिर हम तुमसे क्या कहें। सूर के श्याम के बिना रातदिन सन्ताप ही सन्ताप है। हरि के मिलने से ही यह सन्ताप शान्त हो सकेगा अन्यथा नहीं।

इस पद में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

१८१ गोपियां विरह की दाहकता का वर्णन करके उद्धव से कहती हैं कि इतने पर भी जो श्रीकृष्ण न आए तो उनसे कह देना कि हम भी अपनी सी में आके उनका फतीजा करने पर उतारू हैं। इसलिए हे उद्धव ! खूब कान खोलके सुनलो कि यदि अब भी श्रीकृष्ण न आए तो तुम्हीं अपने हृदय में सोचो और विचारो कि हम इतना दुःख अब कैसे सहेंगीं ? हम उनकी सब पोल खोलके रख देंगीं। उनसे जाके जरा पूँछना तो कि किसके लड़के हैं ? तब देखें क्या जवाब देते हैं। हमारे साथ जो खेले-खाये हैं उसका अब क्या करेंगे ? (उसे कहाँ ले जावेंगे ?)। वे गोकुल के हृदयहार होके अपने आपको मथुरावासी कहके कब तक निबाह करेंगे ? अब हम सब कचा हाल लिखके मथुरा में चिट्ठियाँ भेजना ही चाहती हैं। ये चिट्ठियाँ उनको कैसे भी नहीं मिलेंगीं। आखिर हम भी क्या करें ? देखो इन गौओं तक ने तो उनके चराने के बिना चरना ही छोड़ दिया है। इस दशा में भी यदि सूर के स्वामी ने दर्शन न दिए तो बाद में पछताना पड़ेगा। बेकार में ये बिडम्बनाएँ सहनी होंगीं और फिर हमारे हाथ से भी मामला बे हाथ हो जायगा।

इस पद में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

१८२ गोपियाँ उद्धव से विरह दशा की असह्यता वर्णन करती हुई कहती हैं कि समझ में नहीं आता कि हम क्या करें। उभयतः पशारज्जु की दशा हो रही है। एक ओर कुआ तो दूसरी ओर खाई है। अतएव वे कहती हैं—

हे उद्धव ! हमें तो दोनों तरह से मुश्किल है। अगर जीना है तो आपके उपदेशानुसार ज्ञानी बनके जीना ही हो सकेगा। पर अरे धूर्त ! सोचतो प्रियतम से विमुख होके जीवन बिताना भी कोई जीवन है। इसलिए यदि मौत का आलिंगन करले तो सदा के लिए प्रियतम के रूप से वंचित हो जायँगीं।

कुछ लोगों ने तन तजके सारूप्य मुक्ति हो जाने से आत्महानि बताई है। उनके मतानुसार रूपहरी का अर्थ है हरि का रूप हो जायगा जिससे कि भगवान के दर्शनादि के सुख से भक्त वंचित हो जायगा। परन्तु हमारी समझ में रूपहरी का साधारण अर्थ रूप के सुख से हरी अर्थात् रहित या वंचित हो जायँगी यही अर्थ ठीक जचता है। यदि हम गुण गान करती हैं तो शुक और सनकादि सिद्ध मुनियों की वीतराग श्रेणी में रहेंगी; और यदि उनके (कृष्ण के) साथ दौड़ी फिरें तो लीला समझी जायँगी। यदि अवधि तक आशा लगाये संतोषपूर्वक बैठी रहें तो ये व्रज-युवतियाँ धार्मिक कहलाने की अधिकारिणी होंगीं। ये सब सखियाँ कुलीन और युवतियाँ हैं यद्यपि आज विरह व्यथित हैं तथापि ऐसी कोई बात ठीक नहीं जँचती जो हमारी कुलीनता और वयस्कता के अनुकूल न हो। हमारे लिए शोक रूपी सागर को पार करने के लिए वही अनुरूप नौका है जिसने मुख पर मुरली रक्खी है अर्थात् मुरलीधर श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना हम इस शोक-सागर से पार नहीं हो सकतीं। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि देखो यहाँ रातदिन अत्यन्त मन्दोन्मत्त मदन रूपी हाथी उच्छृङ्खल (निरंकुश) होके घूम रहा है। यदि उस केहरी (सिंह रूप हरि) ने इधर कृपा दृष्टि न की तो सब घर ढा देगा और यह सब खण्डहर हो जायगा। अतएव उनका यहाँ आना ही उचित है और हमें भी आशा लगाके सन्तोष के साथ अवधि तक उनकी प्रतीक्षा करनी ही उचित होगी।

विशेष—शुक व्यास जी के पुत्र थे जो जन्म से ज्ञानी और वीतरागी थे और परम पद के अधिकारी हुए थे। सनक सिद्ध-ज्ञानियों में से सर्व प्रथम मुनियों में से अन्यतम थे। ज्ञान और वैराग्य के लिए इनका उदाहरण प्रसिद्ध है।

इस पद में रूपक अलकार है।

१८३ गोपियाँ उद्धव से विरह की पीर वर्णन करती हुई कहती हैं—हे उद्धव! उन चरण कमलों से विमुख हुये बहुत दिन बीत गये। उनके दर्शनों से हीन होके हम लोग बहुत दुःखी एवं दीन हैं और क्षण प्रतिक्षण विपत्तियाँ सह रही हैं। रात्रि में यह प्रेम व्यथा बहुत बढ़ जाती है। हमारे मन को न घर में-

न मन में कहीं धीरज नहीं मिलता। दिन में उनकी बाट जोहा करती हैं, हृदय का प्रवाह उमड़के आँसुओं के रूप में नयनों से प्रवाहित होता रहता है। आने की अवधि की आशा लगा के दिन गिन के अपनी सासें पूरी कर रही हैं। सूरदास कहते हैं कि भला इतनी कठिन विरह की वेदना इन विरहिणियों से कैसे सही जायगी ? यह तो सर्वथा असह्य है।

इस पद मे रूपक अलङ्कार है।

१८४ गोपिया उद्धव से विरह-दशा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि ऐसी असाध्य दशा का प्रतीकार योग नहीं है। इसका उचित प्रतीकार श्याम का दर्शन ही है। योग तो उस पीड़ा की ओर भी तीव्र बनाता है। वे कहती हैं कि उद्धव ! आप हमारे लिए इस असाध्य दशा से आराम पाने का प्रतीकार योग बता रहे हैं। इस बेढगी बात के लिये हम आपसे क्या कहें कुछ कहते नहीं बनता। भला सोचो कि प्रियतम के अधरामृत का स्वाद लेने वाली रसना योग की महिमा कैसे गायगी ? जिन नैनों ने नखशिख सुन्दर नन्दतनय श्रीकृष्ण के दर्शन किये वे अब और मार्ग पर कैसे चलेंगे। आखिर उन्होंने ही इन्हें उस रास्ते पर चलने के लिए मजबूर किया था। जिन कानों ने मुरली की धुन में अनेक राग रागिनियाँ सुनी हैं उन कानों को कठोर योग के सन्देश की ककड़ियों से क्यों चोट पहुँचा रहे हो ? सूरदास कहते हैं कि युवतियाँ मोहन के विविध गुणों पर मुग्ध होके खूब विचार करके उद्धव से बोलीं कि अरे भ्रमर। लाख प्रयत्न करने पर भी स्वर्णलता से मोती नहीं उपजता।

इस पद में रूपक अलङ्कार है।

१८५ गोपिया उद्धव से अपने प्रेम की दृढ़ता का वर्णन करके अपने लिए ज्ञान की अनुपादेयता का वर्णन कर रही हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! इन नेत्रों ने व्रत लिया है। इन्होंने नदनदन से पतिव्रत धर्म बाध रक्खा है इस लिए इन्हें दूसरा नहीं दिखाई देता। जिस प्रकार चन्द्रमा के प्रति चकोर और मेघ के प्रति चातक दृढ़ प्रेम का निर्वाह करता है ठीक उसी प्रकार हमारे इन नेत्रों ने भी श्री गोपाल जी से दृढ और एकान्तिक प्रेम किया है। ऐ उद्धव ! तुम आज इनके लिए ज्ञान का फूल लाये हो। हे चपल ! तुमने यह अच्छा

नहीं किया। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से आग्रह पूर्वक कहा कि हमारे नेत्र उसी हरिमुख रूपी कमल के अमृत रस को लेना चाहते हैं। उन्हें और कोई चीज अच्छी नहीं लगती।

इस पद में उपमा तथा रूपक अलङ्कार है।

१८६ गोपियां उद्धव से निवेदन करती हैं कि श्रीकृष्ण के विरह के कारण व्रज के नाश के लक्षण उपस्थित हो गए हैं। जिस व्रज को उन्होंने पराक्रम पूर्वक राक्षसों से बचाया था वही आज फिर मिट रहा है और उनका वह राक्षसों का बध बेकार हो रहा है। वे कहती हैं कि उद्धव ! व्रज के शत्रु फिर से जीवित हो गए। जिन शत्रुओं को नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने हमारी रक्षा के लिए मार के दूर कर दिया था वे ही व्रज के शत्रु मानो आज फिर से जीवित होके व्रज को नष्ट करे डाल रहे हैं।

रात्रि के वेष में पूतना राक्षसी आती है जिसके भारी भय से हमारे हृदय काँप उठते हैं। उसके स्तन्य से नष्ट होते हुए हमारे प्राणों को सूर्य ही क्षण-भर के लिए छुड़ा लेता है। भाव यह है कि घातक विरह व्यथा जो रात्रि में बड़ा उग्र रूप धारण कर लेती है वह प्रातःकाल कुछ मन्द होती है। वह हमारे लिए बकासुर के रूप में और अघासुर के समान है अतएव कहीं भी किसी ओर भी तो देखते नहीं बनता। स्वयं कालिन्दी (यमुना) करोड़ों कालिनाग के समान है इन नागों के जहर के कारण उसका जल भी अपेय हो गया है। हमारे ऊर्ध्वश्वास तृणावर्त्त राक्षस के समान हो रहे हैं जिसने हमारे सम्पूर्ण सुखों को उड़ा दिया है। केशव के बिना सभी कारोबार केशी राक्षस बन रहे हैं ! सूर कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कह रही हैं कि तुम्हीं बताओ कि अब हमें किसकी शरण का आसरा हो सकता है। जिसकी शरण हम जा सकतीं थीं वे तो अब सब माया मोह छोड़कर मथुरा जा बसे हैं।

इस पद में—पूतना राक्षसी तथा अन्य शेष बकासुर, अघासुर, तृणावर्त और केसी उन राक्षसों के नाम हैं जिन्हें श्रीकृष्ण ने व्रज में निवास करते हुए मारा था। कालीनाग यमुना में निवास करता था। इसके जहर से यमुना का जल जहरीला हो गया था जिसके पीने से अनेक गौएँ और गोप मर गए थे। श्रीकृष्ण ने उन्हें जिला के काली नाग का दमन किया था। ये सब कथाएँ

भागवत् दशमस्कन्ध में वर्णन की गई है।

विशेष—इस पद में उत्प्रेक्षा, और उपमालंकार है।

१८७ गोपियां उद्धव से कृष्ण की निर्ममता की कटु आलोचना करती हुई उपालम्भ दे रही हैं। वे कहती हैं कि उद्धव! हम किसे कहकर सुनावें कि हम हरि से बिछुड़ कर इतने विरह के घाव सहन कर रही हैं। अच्छा होता जो माधव शुरू से ही मथुरा रहे होते। वे यशोदा के क्यों आए थे? उन स्वामी ने गोप वेश क्यों धारण किया और क्यों हमें नाना प्रकार के सुख दिए! इस से तो अच्छा था कि जब इन्द्र ने क्रुद्ध होकर व्रज को मिटाने के लिए मूसलाधार वर्षा की थी तो इसे मिट जाने देते कृष्ण ने गिरिवर धारण करके इसे क्यों बचाया और फिर मन में रासों की आयोजना क्यों की? पहले तो यह सब किया और अब ऐसे निर्मम हम पर क्यों हो गए कि जो योग का पाठ लिख-लिखकर भेज रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि बुद्धिमान के लिए संकेत ही पर्याप्त है। तुम बड़े प्रवीण हो सब जानते हो इसलिए इतना ही कहना पर्याप्त है। अरे! हम अपनी क्या कहें उनकी निर्ममता को तो देखो कि उन्होंने माता पिता तक को भुला दिया। जब वे नन्द और यशोदा को ही भुला बैठे तो हम गोपियों किस गिनती में हैं?

१८८ गोपिया कहती हैं कि विरह की प्रचण्डता से दह्यमान इस व्रज में यदि कृष्ण नहीं आते तो अच्छा ही है। वे सुकुमार हैं उन्हें इतना दाह सहन न होगा इस पद में व्यग्य द्वारा श्रीकृष्ण के विरह की तीव्रता दिखाकर उनके शीघ्र आने के लिए ही निवेदन किया गया है। गोपियां कहती हैं कि उद्धव! गोपाल ने अच्छा ही किया जो आजकल वहाँ रह रहे हैं और यहाँ नहीं आते। जब यहाँ रहते थे तो चन्द्रमा और चन्दन ठंडे थे और कोकिलो का शब्द मधुर था। परन्तु अब इनकी क्या कहें पवन भी आग के समान लगता है। अब तो व्रज में सभी उलटे चलन हो रहे हैं। सुन्दर हार वस्त्र और चोलिया काटों के समान दुःखदायी हैं तथा मस्तक का तिलक सूर्य सा दाहक हो रहा है। शय्या सिंह सी भयावह, घर अंधी गुफा के समान और फूलों की मालाएँ तथा रत्न हार सापों के समान संतापदायी बन गए हैं। इन सब कष्टों का सहन करना हमारे लिए तो न्यायसगत है क्योंकि बन के रहने वाले ग्वाले ठहरे।

परन्तु सूर स्वामी श्रीकृष्ण जो सुख के सागर हैं वे क्यों इतने कष्टों को सहन करेंगे ? वे तो विलासी भ्रमर के समान सुख और समृद्धि पर मड़राने वाले राजा हैं न ?

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है।

१८६ गोपियाँ उद्धव से विनय करती हैं कि कृपा कर कृष्ण से कह देना कि हमारी त्रुटियों को क्षमा करके मन में कभी हमारी याद करके कम से कम एक बार दर्शन देने की कृपा करें। वे कहती हैं कि उद्धव ! समय पाकर तुम श्याम से इतनी बात कह देना कि मन में हमारी याद कर लें और उनके ब्रज निवास में रहते हुए जो कुछ हमारी भूलें हुई हों उन्हें अपने हृदय में स्थान न दें। श्रीजदुनाथ जी हमें दीन जानकर हमारी यदि कोई भलाइयाँ हों तो उनके साथ उन भूलों को भी सहन करें। अब विरह की राशि में जलते हुए हमें वे दयालु एक बार दर्शन दें। सूर के प्रभु श्याम के लिए हम बहुत क्या कहें इतना कह देना कि कम से कम बचनों की लज्जा तो निबाहें।

१६० गोपियाँ उद्धव द्वारा कृष्ण से प्रेम निर्वाह की भीख मागती हुई कहती हैं—उद्धव ! नन्दनन्दन से इतनी कह देना कि यद्यपि आपने ब्रज को छोड़कर अनाथ कर दिया फिर भी अपने चित्त में उसी प्रकार कृपा दृष्टि रखते रहना। हम से सर्वथा सम्बन्ध त्याग न करें कम से कम एक जगह साथ २ रहने की शर्म का तो निवाह करते रहें। हमारे गुणावगुणों पर क्रोध न करें अपने दासानुदासो के गुण दोषों का इतना तो सहन करना ही होगा। हे श्याम ! तुम्हारे बिना हम क्या करेंगी कैसे रहेंगी ? स्वप्न में भी हमें कोई सहारा नहीं मिल सकता। आपकी कृपा और प्रेम ही हमारा अवलम्ब है पर सूर के प्रभु श्याम ! आपने यह क्या किया ? हमारे लिए योग भेजा। भला सोचिए तो कहाँ योग और कहाँ विरह व्यथा का यह दाह ! दोनों में कितना अन्तर है।

१६१ विरह के सन्ताप में कृष्ण को छोड़कर और कोई सहारा नहीं है इस भाव को व्यक्त करती हुई गोपिया उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! जितना कष्ट करके हरि हमारे लिये यह सब कर रहे हैं यदि मन हमारे हाथ में होता तो हम उनको इतना कष्ट क्यों होने देतीं ? हमारे वज्र से भी अधिक कठोर हृदय में एक अचेत चित्तवृत्ति रहती है जो न कुछ जान सकती है और न सोच सकती

है। एक दिन वह था कि जब वे यहाँ थे और उनके साथ आलिंगन करते समय अंचल का व्यवधान भी हमें असह्य था परन्तु एक दिन आज का है कि हमारे और उनके बीच मीलों फैली हुई यमुना की रेती है। (देखिये विरह में सीता की उक्ति—वदाहारोऽपि दुःसहः इदानीं भावयोर्मध्ये नदी पर्वत सागराः) । सूर के प्रभु श्याम से मिलने के लिए अब हम उन्हीं की शरण पकड़ती हैं। उन्हें छोड़ और कोई यह मिलाप नहीं करा सकता। गोपी कहती हैं उन भगवान् कृष्ण को जिनकी महिमा वेदों के लिये भी अगम्य है उनको बिना देखे अब मुझे चैन नहीं पड़ता।

१६२ गोपिया उद्धव से कहती हैं कि शायद वे हमारे अपराधों से अप्रसन्न होकर यहाँ आना नहीं चाहते। यह उचित नहीं। हमने उनकी यहाँ रहकर सदा सेवा की है यदि उसमें कोई अपराध बन पड़ा तो उसे इतना तूल नहीं देना चाहिए। आश्रित लोगों के गुण दोषों पर ध्यान नहीं दिया जाता। किसी ने ठीक ही कहा है 'नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात्।' इसी से गोपिया उद्धव से कहती हैं—उद्धव ! हाय ! हरि ने यह क्या किया। मथुरा जाकर राजकाज सँभाला सो तो बड़ा अच्छा काम किया। इसमें क्या बुराई है ? परन्तु यह नहीं समझ में आता कि उन्होंने गोकुल को क्यों भुला दिया ? अरे मथुरा में राज्य करते और गोकुल की भी सुध लेते रहते तो क्या बुराई थी ? जब तक वे यहा ब्रज में रहे हम लोगों ने उनकी सदा सेवा की। एकबार यों ही उन्हें ऊखली से बाँध दिया उन्होंने उसकी ही अपने मन में गाँठ बाँध ली जिससे कि अब गोकुल की ओर पैर करके भी नहीं सोते। खैर जो भी करो सब ठीक है पर हम इतना कहे देती हैं यह कि तुम ब्रजनायक से कह देना कि उन्हें राजदुलारिया तो बहुत सी मिल जावेंगी पर चाहे करोड़ों प्रयत्न करें तो भी नन्द से पिता और यशोदा सी मा कहीं भी नहीं मिल सकेंगी। और फिर ये गौएँ यह ग्वालों की टोली और दूध दही की छाक और कहाँ रक्खी है। कुछ भी हो सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि अब तुम कृपा कर वे वही करो जिससे कि कृष्ण फिर से ब्रज में आ जावें।

१६३ गोपिया उद्धव से प्रकारान्तर से कृष्ण को ब्रज में आने के लिए कह रही हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! तुम्हें ऐसा काम नहीं करना चाहिए। जो

असम्भव है वह भला सम्भव कैसे हो सकता है ? परन्तु तुम दोनो तो एक ही से काले हो धोने से सफेद कैसे किए जा सकते हो। तुम जानते हो कि गोपिया योग को नहीं अपना सकती परन्तु फिर भी हमारे लाख समझाने पर भी तुम बाज नहीं आते। तुम्हारी इस बेतुकी बात को सुनकर हम सब दुःख मे ऐसी निमग्न हुई हैं कि अब अचेत हो रही हैं। पर तुम्हारी वही बात है। हमें नहीं मालूम कि आप इस ऊसर के मैदान में क्यों गोता मार रहे हैं। जहाँ जिस चीज की जरूरत नहीं वहां उसे इतने श्रम से कहने सुनने की आवश्यकता क्या है ? अरे उद्धव ! यहा तो ऊसर है चाहे जितना श्रम करो यहाँ कुछ नहीं उपज सकता अर्थात् आपका योग बीज यहाँ अकुरित नहीं हो सकता। यह आपका परिश्रम निरर्थक है। सच्ची बात तो यह है कि कीड़ों के कुल में बाँसों के कोटे के अन्दर जन्म लेने वाले भौंरे लोग भलाई को क्या जानें। नीच नीचता को कभी नहीं छोड़ सकता। वरना मधुकर ! तू इतना तो सोच ही सकता था कि तू स्वय ललचाकर अपने दातों से बार बार बाँसों की गाँठ फोड़ता है पर कमल में बन्द होकर उसके प्रेम के कारण उसे काटकर बन्धन से मुक्त होकर तू ही भला और कहीं क्यों नहीं चला जाता ? तू इतना लबार, उद्दड और दोषी है कि हमारे मन को तेरे ऊपर विश्वास नहीं आता। हम आप से बार बार एक ही बात कह चुकीं कि आप इस कार्य के लिए कभी न आवें। हाँ, सूर श्याम से यह समझाकर कह दो कि यदि योग भी सिखाना हो तो जाकर स्वय अपने ज्ञान का पाठ यहाँ आकर पढ़ा जावे।

इस पद मे अन्योक्ति अलकार है।

१६४. गोपिया उद्धव से कहती हैं कि ज्ञान का उपदेश हमारी विरह-व्यथा का और भी अधिक उद्दीपक है। इसलिए तुम इसे रहने दो। किसी न किसी प्रकार कृष्ण के दर्शन कराओ जो एकमात्र हमारे लिए शान्तिदायक हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! कुछ और बाते करो। कीर्ति को खोने वाले ज्ञान के उपदेश को बार बार कहकर तुम हमारी देह जला रहे हो। इससे तो अच्छा है कि तुम मौन हो जाओ। जिन ब्रजवासियों का मन श्याम के प्रति प्रेमपीर का अनुराग लेकर पर्वत सा अटल है। उस पर स्थित रति के वृक्ष को जो अपने नयनाश्रुओं से सींचकर रात दिन जगकर हरा-भरा रखते रहे हैं। कठिनता से पनपे

हुए उस रतिद्रुम के लिए आज अलिरूप ग्रीष्म ब्रज में प्रकट हुआ है और उस ग्रीष्म में कठोर योग रूपी सूर्य को देखकर वह रति पादप और भी अधिक मुरझा रहा है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ व्यथित होके कहती हैं कि उस मुरझाते हुए रतिपादप को तुम्हारे (श्रीकृष्ण के) स्नेह के मेह के बिना और कौन बचा सकता है! भावार्थ यह है कि विरह-व्यथा में भी दृढ़-संकल्प के साथ जिस प्रेम को निभाया है; उसे योग के उपदेश से सर्वथा मत नष्ट करो। उस पर नेह भरी दृष्टि डालकर उसकी रक्षा करो इसी में हमारी भलाई है।

इस पद में सांगरूपक अलंकार है।

१६५ गोपियाँ इस व्यथादायी परिस्थिति में योग का अनौचित्य प्रतिपादन करती हुई उद्धव से प्रश्न करती हैं—उद्धव! देखो हमारे सन्मुख सच-सच बताना कि यदि घर में आगी लग जावे तो क्या बच सकता है? जिस दिन से गोपाल ब्रज से सिधारे हैं हमारे श्वास का अनल ही हमारे शरीरों को भस्म किए डालता है। हमारा सीधा-सादा हृदय जब उनके मुखचन्द्र पर मुग्ध हुआ तो हमने उस हृदय को निकालकर उनके अर्पण कर दिया। अब उसकी अनुपस्थिति में भी तुम विवेक से काम न लेकर हमें योग सिखाने के लिए आ गये जिसके हृदय ही नहीं वह योग का आधान कहाँ करेगा? इसलिए हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि इस योग को आप कृपा करके उन्हीं सूर के प्रभु श्री श्रीष्ण के पास ले जावें जिन्होंने कि इसे हमारे लिए भेजा है। 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द! तुभ्यमेव समर्पये।'

इस पद में रूपक अलंकार है।

१६६ गोपियाँ ज्ञानोपदेश पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से कहती हैं कि अरे भाई उद्धव! सभी लोग स्वार्थ सिद्धि में लगे हुए हैं। (यह ज्ञानोपदेश केवल हमारे परमार्थ के लिये ही नहीं भेजा गया है इसकी ओट में अपना शिकार खेलने की नीयत से यह उपदेश हमें दिया जा रहा है। क्यों न हो "सर्वः स्वार्थं समीहते")। देखो! वह स्वयं तो कुब्जा से रँगरेलियों में लगे हुए हैं और हमें योग सिखा रहे हैं। पर हमारी दशा तो बड़ी विचित्र है कभी-कभी घूमते-घूमते जब वन में निकल जाती हैं तो उसी श्यामलमूर्ति का रूप दिखाई देता है। परन्तु उन्हें अब यमुना की रेती में रास रचाने में लज्जा मालूम होती

हैं क्यों न हो राजा हो गये हैं न ! हमें तो प्रतिदिन उनकी बाट जोहते बीत, हैं नयनों के पलक नहीं लगते। विरह का रोग असाध्य हो रहा है। इसलिए सूर कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि उद्धव ! इस असाध्य रोग की चिकित्सा के लिए तुम कृष्णकुमार रूपी अश्विनीकुमार को भेज दो जिससे हमारा रोग मिटे और हम स्वस्थ हो जावें ।

इस पद में रूपक अलकार है।

१६७ गोपियाँ उद्धव से श्री कृष्ण की सगाई पर व्यग्य करती हुई अपनी विरह-व्यथा का निवेदन कर रही हैं । वे कहती हैं कि उद्धव ! श्री कृष्ण ने हमारे साथ अच्छा नहीं किया। उन्होंने हमें प्रेम का प्याला नहीं जहर का प्याला पिलाया है। हमें क्या मालूम था कि ये मिटबोला श्याम कर्म के कपटी हैं। हम जहर देके हमारा सर्वस्व चुराके चोर के समान यहाँ से दबे पाँव निकल भागे। उन्होंने अधरामृत के माधुर्य मे घोलके विरह व्यथा के बीज रूप बाघ के (मूँछ के) बाल हमे घोट के पिला दिये मालूम होते हैं। उसने भीतर तक अपना असर पहुँचा दिया है और अब किसी औषधि की सामर्थ्य नहीं कि कुछ प्रतीकार कर सके। इस जहर की तासीर भी अजीब है न मरते हैं और न जीते हैं। अब या तो मर जावें तो शान्ति मिले या फिर हमारा मनचीता ही हो तो काम बने। यह बीच की अवस्था तो बड़ी दुख दायी है। यह दुःख नहीं देखा जाता। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि देखो उद्धव ! जो चेतावनी देके मारते हैं वे शूरवीर होते हैं परन्तु मिल कर दगा देने वालों का ससार में कभी भला नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण ने मित्रता करके हमें धोखा दिया। यह शूरवीरता नहीं यह तो भयकर पाप है। देखिए नीति-शास्त्र इस पाप के विषय मे क्या कहता है—'मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः। ते नरा नरक यान्ति यावचन्द्रदिवाकरौ।'

इस पद म रूपक अलकार है।

१६८ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि इस विरह व्यथा का प्रतीकार एकमात्र श्रीकृष्ण से मिलन होना है और कुछ नहीं। इसलिए वे कहती हैं कि उद्धव ! अब तो हरि के आने से ही प्राण बच सकते हैं अन्यथा नहीं। उनकी विरह व्यथा से आकुल ये प्राण बार बार उछलते-डूबते रहते हैं। कभी निकलते कभी

-फेर घट में आ जाते हैं और जीवनावधि का सहारा लेके टिक जाते हैं। हा! जब हमने उन्हें ऊखल से बाँधा था तो बेचारे कैसे नीचे मुँह लटकाए हुए थे। वह तथा उनकी नवनीत चुराने के समय की जो मुद्रा थी उसकी शोभा आज भी मन में चुभी हुई है। ये अद्भुत शोभाएँ ज्ञान को अपनाकर कैसे भुलाई जासकती हैं। पर हाय! उन्होंने यह सब न सोचा और यह ज्ञान हमारे मत्थे मढ़ने को भेज ही दिया। हमें नहीं मालूम कि जिन्होंने हमारे कुल और पति के त्रासों को नष्ट कर दिया अर्थात् हमने उनके त्रास को छोड़कर जिन श्रीकृष्ण से प्रेम जोड़ा उनसे ऐसी बात क्योंकर कही जाती है। सूर कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! जरा सोचो तो गुणों के रस सागर श्याम को छोड़कर घड़े के पानी को कौन पीना चाहेगा, तुम्हारा निर्गुण घट नीर है उसकी सगुण रस सागर के आगे क्या गिनती है?

विशेष—सूर के सिद्धान्त के अनुसार श्रीकृष्ण की भक्ति ही वह है जिसे उपनिषदों ने भूमा कहा है। देखिए—यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य इति। छान्दोग्य ७–२३–१।

इस पद मे रूपक अलकार है।

१६६ गोपियां अपने प्रेम की दृढता के साथ-साथ श्रीकृष्ण के प्रेम की कृत्रिमता का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं—उद्धव! अब हमें यह निश्चय हो गया कि श्रीकृष्ण से स्नेह का हीरा खो गया है और वह प्रीति की कोठरी जिसमें आज तक उनका निवास रहा था पुरानी होगई। इसलिए वे नई प्रीति की कोठरी की तलाश मे थे और वह अब उन्हें मिल गई। यदि ऐसा न होता तो वह उस प्रेम को कैसे भुलाते जिसे उन्होंने अधरामृत से सींचकर बड़े लाड़-प्यार के साथ पाला था। लेकिन यह सब होते हुए भी उस प्रेम की सृष्टि को केशव ने बच्चों के खेल के घरोंदे के समान समझा और उसे मिटाकर चलते बने। साप अपनी कचुली को अपने शरीर से लगाए रहता है पर पुरानी होने पर उसे छोड़कर निकल भागता है। ठीक इसी प्रकार कृष्ण की प्रीति भी समझो पहले तो किस आसक्ति के साथ उसे लगाए रहे और जब वह पुरानी पड़ गई तो उसे छोड़कर भाग गए। जिस प्रकार कुम्हलानी हुई लताओं को छोड़कर भौंरा चला जाता है और फिर उस ओर मुड़कर भी नहीं देखता ठीक इसी

प्रकार इस पुरातन प्रीति को छोड़कर वह रसिक चलते बने और फिर सुधि भी न ली। बात यह है कि बहुरगी लोग जहाँ जाते हैं वहीं सुखी रहते हैं उनके दिल बहलाने के लिए कोई न कोई मिल ही रहता है पर दुःख एकरगी अर्थात् एकातिक प्रेम करने वालो को है कि प्रेमी के विरह मे देह जलती रहती है। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि समृद्धि के स्थान पर पहुँच कर पुराने परिचितों के प्रेम को भुला देना पशुता है मानवता नहीं। पशु ही धनी चोर के यहा जाकर दाना पानी खाकर सन्तोष का अनुभव करता है और पुराने मालिक की याद भी नहीं करता। परन्तु सहृदय मानव चाहे जितनी भी समृद्धि क्यों न मिले प्रेमी के बिना उसका उपभोग नहीं करना चाहता। वह तो विरह मे जल जल कर अपने प्राणो की आहुति देने म ही गौरव का अनुभव करता है।

इस पद मे रूपक, उपमा और अर्थान्तरन्यास अलकार हैं।

२०० गापिया योगापदेश पर खेद प्रकट करती हुई उद्धव से कहती हैं—हे उद्धव ! हम लोग आपकी दासी हैं। आपने हमारे गुणो को गाठ में क्यो नहीं बाधा, हमारे गुणों का विचार क्यों नहीं किया। अर्थात् हमारे कथन मे भी कुछ सार है यह बात आप क्यों नहीं मानते ? आपने उसे न मानकर जो कुछ किया उसे आज दुनिया जान रही है। पर जो कुछ हो आप जो भी भली-बुरी कहेंगे वह सब हम सहन करेंगी ही। अपने करम का फल हम स्वय भोगेंगी और किसी को उसका दोष नहीं देंगी। जब उत्कृष्ट पश्चात्ताप मे आत्मा की निर्मलता मन को स्वच्छ और उदार बना देती हैं उस समय यह महत्वपूर्ण भावना उदय होती है कि पुरुष अपने भोगों के लिए स्वय को ही उत्तरदायी ठहराता है। आप तो बड़े आदमी हैं और बड़ो के भेजे हुए ही यहाँ पधारे हैं जो सबके सरदार हैं आपको कैसे दोष लगाया जा सकता है। हा इतनी बात अवश्य है कि सूर के प्रभु श्याम हमें राख पोतने की कहते हैं। हा ! आज हम उनकी आखों मे इतनी गिर गई हैं कि हम राख लगाने की कह रहे हैं।

२०१ गापियाँ उद्धव से कृष्ण के अन्तर्यामी होने पर व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! तुम जा कहते हो कि हरि हृदय मे निवास करते हैं सो हमें कैसे विश्वास हो सकता है। क्या वे इतने क्रूर हैं कि हृदय मे बैठे २ हम

ातो को सुन रहे हैं और जरा भी पिघलते नहीं। (अथवा हे क्रूर सुनो इन ातों को जो वे सह रहे हैं तो इस बात पर कैसे विश्वास हो कि वह हृदय में हते हैं)। रात दिन कठोर विरहानल भीतर प्राणों को जलाए डालता है और प्राणों के सुलगने से कष्टदायी धुआ उठता है जिससे आँखों से आंसू वाहित होते रहते ह। हमारा शरीर असीम कष्ट भोग रहा है और वह चुप्पी ावे भीतर बैठे हैं यह तो बड़ी अवज्ञा है। फिर उद्धव! तुम्ही बताओ कि रज के प्रभु श्याम अन्तर्यामी है इस बात का हमारा मन कैसे मान ले अर्थात् म कभी यह मानने का प्रस्तुत नहीं। भाव यह कि हम अन्तर्यामी श्री हरि ा अपनाने में सतोष नहीं हम तो रूप माधुरी के निधि श्याम को पाकर ही तुष्ट होने वाली हैं। ऐसा ही भाव पहले 'जा पै हिरदय माँझ हरी' इत्यादि। १०७ मे वर्णन कर चुके हैं।

इस पद मे रूपक अलकार है।

२०२ गोपियाँ उद्धव से अनेक खरी खोटी कहके पछताने लगीं कि वे कहीं अप्रसन्न होके कृष्ण स कुछ और न कह दें जिससे वे भी अप्रसन्न हो जावें और फिर कभी दर्शन न दें। इसलिए बड़ी दीनता के साथ उनसे निवेदन करती हैं कि उद्धव! तुम सब जानते हो। तुम्हे नन्दनन्दन की शपथ है। तुम हमें वही सिखावन दो जो हमारे लिए उचित एव हितकारी हो। तुम्ही बताओ जिसे माँस भोजन प्रिय लगता है वह शाक को खाना कहाँ तक ठीक समझेगा। जिस मुख से पान चबाए उसे सेम के पत्तों से कहाँ तक बहकाया जा सकता है। मुरली के मधुर गानों को सुनने वाला को सारगी सुनके कैसे सन्तोष हो सकता है? जिस हृदय म सुजन शिरोमणि श्याम निवास करते हैं उसमें निर्गुण क्या कर आ सकता है? इसलिए हे उद्धव! जब तक हमारे शरीर म प्राण हैं हम बिना श्याम के इसी तरह वियोगिनी ही रहेगीं। वास्तव में हम सुख उसी दिन मिलेगा जब व्रज में सूर के प्रभु व्रजमान श्रीकृष्ण पधारेंगे।

इस पद मे माला प्रति वस्तूपमालङ्कार है।

२०३ गोपियाँ उद्धव से निवेदन करती हैं कि चाहे कुछ भी हो हम कृष्ण के प्रेम का परित्याग नहीं कर सकती क्योंकि वही एक मात्र हमारे जीवन का आधार है। निर्गुण का उपदेश तो हमारे लिए प्राण लेवा है। वे कहती हैं–

उद्धव ! तुम हमारे इस विचार को गाँठ में बाध लो । हमारी भलाई इसीमें कि या तो उनके वियोग में यह शरीर ही मिट जावे या फिर हरि व्रज में आ रहने लगें । हमारे शरीर रूपी वन मे विरह दावानल के लगने से ये इन्द्रि रूपी जीव जलने लगें तो ये उस श्यामघन के आने पर ही शान्त होंगे जब वे अपने मुख कमल से प्रेम पूर्वक मुरली बजाके माधुरी की बूंदे बरसावेंगे हमारे मन रूपी मीन उन्हीं के चरण रूपी मान सरोवर में सदा एक तार प्रे से निवास करते हैं । परन्तु उद्धव ! तुम इन्हें यहाँ से निकाल के निर्गुण बालू में पटक रहे हो । सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव के इस अनर्थ प खेद प्रकट करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! यह तुम्हारी कौनसी नीति है अर्था यह तो उलटी नीति या सरासर अनीति है ।

इस पद मे सांग रूपक एव परम्परित रूपक अलङ्कार है ।

२०४ गोपियाँ निर्गुण के उपदेश को अपने दृढ प्रेम के लिए एक लाञ्छन समझती हुई प्रकारातर से निर्गुण के अनौचित्य का प्रतिपादन करती हुई उद्धव से कहती हैं–उद्धव ! आखिर ये बातें चलीं ही कैसे ? यद्यपि ये बातें श्रीकृष्ण के मुख से निकलने के नाते बड़ी मीठी हैं पर हाय ! ये हमारे हृदय को बड़ी दुःखदायी हैं । इन शरीर-लताओं को श्याम ने स्नेह से खूब सींचके अपने हस्त कमलों से ही पाला-पोसा था पर आज उस माली कृष्ण की अनुपस्थिति में ये उत्तरोत्तर सूखी जा रही हैं । जब यहाँ रहते थे तब तो व्रज पर वे बड़ी कृपा करते थे और इन व्रजबाला-लताओं को सदा सग में रखते थे । पर आज सूर के स्वामी श्याम के विछोह मे इस निर्गुण को सुन विरह की व्यथा से आहत होने मर क्यों नहीं जातीं ? भाव यह है कि प्रियतम के रूखे व्यवहार को जानने के पहले ही यदि हमारी मृत्यु हो जाती तो हमारी भलाई थी।

इस पद में रूपक अलङ्कार है ।

२०५ गोपिया अपनी विरह व्यथा का सदेश देती हुई उद्धव से कहती हैं–हे उद्धव ! यदि कृष्ण सचमुच हमारे हितैषी हैं । (योग का सदेश भेजकर उन्होंने हितैषिता का दावा किया है इसलिए गोपियाँ कहती हैं कि यदि वे सचमुच हमारे हितैषी हैं) तो तुम कृपा करके उनसे हमारे सब दुःखों का वर्णन कर देना । तुम उनसे कहना कि तुम्हारे इस योग सन्देश के दावानल

ने हमारे (विरहिणियों के) शरीर रूपी वृक्षों में आग लगादी है यद्यपि इस अग्नि को हमारे नयनों की पुतली के बादल उमड़कर अपने प्रेमाश्रुओं से बुझाने का प्रयत्न करते हैं तथापि यह आग ठण्डी नहीं पड़ती और न जला कर भस्म ही करती है कि किस्सा ही खत्म हो जाय। यह तो यों ही सुलगती रहती है जिससे धुँधुआकर शरीर तरुवर काले पड़ गए हैं। ये वे ही तरुवर हैं जिन्हे तुमने बड़ी सावधानी से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया था। इस भयकर सन्ताप से तरुवरों की समृद्धि और सौन्दर्य लुप्त हो गया है। इस शरीर-वन से कीर (नासिका), कपोत (ग्रीवा), कोकिला (स्वर माधुरी) और खजन (नेत्रों का सौन्दर्य) सभी को वियोग रूपी बहेलिये ने भगा दिया है। अर्थात् वियोग व्यथा के कारण शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों का सौन्दर्य हवा हो गया। ऐसी दशा में हे उद्धव ! तुम उन सूर के प्रभु श्याम से पूछना कि इन दु:खों के मारे बेचारे ब्रज के लोग कैसे और कितने दिनों जियेंगे ?

इस पद में—तनतरुवर, दुमदा, प्रेमजल, घनतारे और पथिक वियोग में रूपक अलकार है।

जद्यपि उमगि—नहिं सिरात में विभावना अलकार है
और—'कीर कपोत कोकिला खजन' में
रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

२०६ उद्धव द्वारा वेतुके उपदेश को सुनके गोपियाँ उनसे कहने लगीं कि पहले अपने होश की दवा कराओ फिर बातें करना। तुम्हारा रोग असाध्य है तुम जल्दी मथुरा जाके श्रीकृष्ण जैसे वैद्य के जेर इलाज हो जाओ तब ठीक होओगे। इस प्रकार निर्गुण की छीछालेदर करती हुई वे उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! आखिर तुम यहाँ किसलिए आए ? हम तुमसे तुम्हारी भलाई की कहती हैं पर तुम्हें बुरी मालूम होती है। तुम यों ही वे मतलब बने जा रहे हो, शर्म नहीं आती। पहले जाके अपना इलाज कराओ तब औरों को उपदेश देना। मेरा कहा मानो तुम यहाँ से जल्दी ही सिधारो और ठढे २ घर जा लगो। वहाँ नगर में नाना प्रकार की दवाइयों का सुभीता है (यहाँ गाँव में बहुत सुभीता नहीं) और फिर वहाँ कृष्ण सरीखे वैद्य हैं। पहले जो 'धुनि दीजियत नहिं नीकी' कहा है उसी भाव को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि

उद्धव तुम्हारा रोग असाध्य है। तुमने यहाँ देर लगाई तो हमें डर है कि कहीं तुम यहीं खतम न हो जाओ और कदाचित् हमें कलंक लगे। लोग कहेंगे कि उद्धव ब्रज में गए थे वहीं मर गए। कुछ दाल में काला जरूर है। इसलिए तुम शीघ्र ही जाके इलाज कराओ तो अच्छा है। सूर कहते हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि अगर तुम स्वस्थ होते तो इतना जरूर सोच लेते कि सच्ची बात को छोड़ के झूठी को कोई किसी प्रकार नहीं सुनेगा। मोती चुगने वाला हंस आग कैसे चुग सकता है। अर्थात् जिस प्रकार मोती चुगने वाला हंस का आग चुगना असम्भव है उस प्रकार हम लोगों का सत्य बात (कृष्ण प्रेम) को छोड़ के असत्य बात (निर्गुण) का अपनाना असम्भव है।

इस पद में निदर्शना अलकार है।

२०७ गोपियाँ उद्धव से अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम को अभिव्यक्त करती हैं। वे कहती हैं कि उद्धव ! तुम जाके कृष्ण से हमारी पीर का वर्णन करना। तुम उनसे कह देना कि तुम्हारे बिना हमें दिन में चैन नहीं और न रात की नींद। तुम्हारे वियोग में शारदीज्योत्स्ना भी अनल के समान सन्तापदायिनी हो रही है। जबसे अक्रूरजी तुम्हें मथुरा लिवा ले गए तब से हमारे शरीर विरह वात से आक्रान्त हैं जिनके कारण हनाकी (वमन) आदि उपद्रव खड़े हो गये हैं। उद्धव ! तुमने निर्गुण सन्देश देके उसे और भी प्रचण्डता से जगा दिया है। चिन्ताओं के कारण शरीर हल्दी सा पीला पड़ गया है। उद्धव ! तुम उनके अभिन्न प्रवीण मित्र हो इसलिए हम तुमसे सब परदा खोलके (बिना किसी दुराव के) सब कुछ कहे देती हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ अन्त में उद्धव से कहती हैं कि इस भयानक वाय का प्रतीकार हरि दर्शन रूपी काढे के बिना नहीं हो सकता। इसके लिए और कोई जड़ी हितकारी नहीं हो सकती कि जिससे हमारे हृदय को शान्ति मिले।

इस पद में अतिशयोक्ति, उपमा और रूपक अलङ्कार हैं।

२०८ गोपिया उद्धव से व्यंग्य करके उनके पात्रापात्र विवेकहीन निर्गुणोपदेश की निस्सारता प्रतिपादन करती हुई कहती हैं—अरे उद्धव ! तुम दौड़के ब्रज क्यों आ गए ? आखिर तुम नायक हो गए थे तथा राजा के मित्र का पद

न्हें मिला था तो दरोक दिन वहां कुछ कमाई कर लेते। जिस धर्म को तुमने हमारे कानों में कहा उस धर्म का गान वहीं रहकर करते रहते तो वहाँ के मद्रास लोग तुम्हें गुरु मानकर तुम्हारा सत्कार करते और वे तुम्हारा दर्शन करके सन्तोष लाभ करते। यहा आने से तुम्हें क्या मिला ? धन गयो अरु धरम को गावा—वाली बात हुई। यहाँ श्रीकृष्ण के बिना कोई किसी को नहीं जानता तुम क्यों टलीले गढ-गढकर सिर खपा रहे हो ? अगर वहा रहते तो जिसका उपदेश तुम औरों को दे रहे हो उसकी स्वय अनुभूति सिद्ध करके सुख पाते। यहा हमें तो यही नहीं समझ मे आता कि तुम मनमोहन के दर्शन के अतिरिक्त हृदय से और क्या वैसे चाहते हो ? सूरदास कहते हैं कि गोपियों के दृढ प्रेम और मर्मस्पर्शी उक्तियों से प्रभावित होकर उद्धव श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना बार-बार पश्चात्ताप करने लगे। आज उन्हें प्रेममार्ग की श्रेष्ठता प्रतीत हुई और वे श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित हो गए।

२०९ यद्यपि गोपियों ने अनेक बार अपने प्रेम की दृढता और निर्गुण की नीरसता का वर्णन उद्धव से किया तथापि वे अपने सिद्धात के प्रतिपादन से विरत न हुए। उनके इस कट्टरपन पर आक्षेप करती हुई गोपियां कहती हैं—उद्धव! तुम्हारी तो यह टेव पड़ गई है। चाहे कोई करोड़ों उपाय क्यों न करे पर तुम्हारा मन उस निर्गुण से नहीं उचटता है। तुम्हें नहीं मालूम कि जिस दिन से तुम्हारे यदुराज और हमारे मोहन यशोदा के घर आए उसी दिन से हमें हरि दर्शन और स्पर्श के बिना और कुछ नहीं सुहाता है। उनके साथ हँसते-खेलते और उनकी कृपा दृष्टि का सुख भोगते हुए युग भी क्षण के समान बीतते थे। सभी के शरीर अत्यन्त तृप्त थे और आँखें तथा हृदय भी छके रहते थे। हमें तो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति सभी अवस्थाओं में उन घनश्याम के शरीर की सुन्दर शोभा ही सुन्दर लगती है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यहा तो यह हालत है पर तुम उन कमलनयन की बाते न करके और बातों मे ही हमें बहलाना चाहते हो यह कैसे हो सकता है!

२१० गोपिया उद्धव से कहती हैं कि योग का आधान मन में होता है और हमारा मन श्रीकृष्ण के साथ सदा रहता है फिर यह योग कहा रक्खा जावे। इसलिए वे व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव! हमारे दस बीस तो मन हैं ही

नहीं। एक ही था सो वह भी हरि के साथ चला गया अब तुम्हारे ब्रह्म की आराधना कौन करे ? इसके अनन्तर सूरदास कहते है कि सब गोपियाँ माधव के विरह में आनन्द विभोर हो गई उनकी दशा ऐसी मृतवत् होगई जैसे बिर खिर के देह की दशा हो जाती है। परन्तु उनके श्वास के साथ ही यह आशा भी अटक रही थी कि करोड़ों बरस जिए । जब तक श्वासा तब तक आशा के अनुसार वे सतत जीवन की आशा लगा रही थीं क्योंकि न जाने कब दिन फिरें और कृष्ण आवे दर्शन दें। यदि जीवन चला जायगा तो फिर दर्शन कहाँ से और कैसे होगा। अतएव उन्होंने इस अवस्था में करोड़ों वर्षों के जीवन की आशा लगा रक्खी थी। अन्त मे वे बोलीं कि उद्धव ! तुम तो श्याम सुन्दर के मित्र हो और सब प्रकार के योगों में समर्थ हो सो तुम्हारे लिए यह मुबारक हो। पर हे ईश्वर ! हमारे मन को तो तुम रसिक श्रीकृष्ण सबंधी बातो से भरा पूरा करो। हम और कुछ नहीं सुहाता।

२११ गोपियाँ कृष्ण की रूखी बातों को उद्धव के मुख से सुनके झल्ला उठती है और अत्यन्त निर्वेद के कारण वे उन्हें अक्रूर तथा कृष्ण को खरी खोटी सुनाती है। वे कहती है—उद्धव ! तुम सब साथी बड़े भोले हो क्या कहने है ? मेरे कहने का तो तुम्हें बुरा लगेगा पर यथार्थ बात यह है कि तुम लोग हद से अधिक कुटिल इकट्ठे हुए हो। एक है आपके नाम से अक्रूर पर काम से क्रूर जो नित रीतों को भरते और भरों को ढुलकाते रहते हैं। दूसरे है घन श्याम जो मनके भी श्याम है और काली (बुरी) कामनाओं में डूबे रहते है। एक ये है आप जो भौंरे की कान्ति धारण करके निर्गुण गुन गुनाते रहते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि हमने खूब छर फटक के देख लिया (खूब अच्छी तरह विचार करके देख लिया) और इस परिणाम पर पहुँची है कि काले सब गुणों भरे हुए हैं भला गोरे इनकी समता को कैसे पा सकते है कुटिलता में ये सब अद्वितीय हैं।

२१२ गोपियाँ उद्धव से कृष्ण के प्रति अपना प्रणय निवेदन करके योग की अनुपादेयता वर्णन करती हुई कह रही हैं कि उद्धव। हम तुम्हें कैसे समझावें तुम तो ऐसे दुराग्रही हो कि मानते ही नहीं हो। हमारे विचार से जो तुम्हें समझाती हैं वे खुद पगली हैं। हमारी दशा स्वय तुम्हारे प्रत्यक्ष है उसको

कथन करना पिष्टपेषण करना मात्र है। अरे मधुप ! यहाँ तो रात दिन श्री कृष्ण कुमार के वियोग-दुःख से मरण हो रहा है। चित्त में अभी तक वह मोहिनी मूर्त्ति और चंचल नेत्रों की चितवन चुभ रही है। उन्होंने मुरली की धुनि से हमें पुकार-पुकार के हमारे मन को चुरा लिया है। उनके शरीर की शोभा और उस पर पीताम्बर के फेंटे भूलने की वस्तु नहीं है। कंधे पर लकुटिया रख के बन में गैयों के घेरने की शोभा हमारे लिए अनिवर्चनीय है। इस प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दर श्याम में आसक्त जिन लोगों के हृदय में घनश्याम निवास करते हैं वे मुमुक्षुओं की धक्का मुक्की में क्यों शामिल होना चाहेंगे। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! तुम हमारे लिए योग के रूप में दुःखों के ढेर ले आए हो। भला रसिक शिरोमणि कृष्ण के बिना निर्गुण के कठोर आघातों से हम कैसे जी सकेंगी। परन्तु यह सब तुम्हें समझाना भैंस के आगे बीन बजाना है।

२१३ गोपियाँ उद्धव से अपनी विरह व्यथा की असह्यता बता कर उनसे कृष्ण को लिवा लाने का अनुरोध करती हुई कहती हैं :—उद्धव ! तुम श्याम को यहाँ लिवा लाओ। यहाँ व्रज के लोग रूपी चातक प्यास के मारे मरे जा रहे हैं तुम उनके लिए स्वाति बूंद (श्रीकृष्ण के दर्शन रूपी) की बरषा कर दो। घोष रूपी कमल सकुच रहे हैं तुम सूर्य बन कर उन्हें विकसित करो। तुम देरी न करो यहाँ से जल्दी ही पहुँचो और उनसे हमारी दशा कह सुनाओ। उद्धव ! एक बात और यदि वे यहाँ आने को तयार न हों तो हमें वहाँ बुलवा लेना। अब तो सूर के प्रभु श्याम को जल्दी मिलाने से ही तुम सत्पुरुषों में कीर्त्ति भाजन हो सकोगे। हमें जीवन मिल जायगा और भले आदमी तुम्हें सच्चा परोपकारी कहेंगे कि तुमने दुखियों को जीवन दिया।

विशेष—इस पद में रूपक एव रूपकातिशयोक्ति अलंकार हैं।

२१४ गोपियाँ उद्धव के योग के लिए व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि उनके लिए तो श्रीकृष्ण का वियोग ही योग है और उद्धव का योग तो सर्वथा अकरणीय है। अतएव वे कहती हैं कि उद्धवजी ! हमने तो योग का पाठ उसी दिन पढ़ लिया था जिस दिन कि श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ रथारूढ़ होके यहाँ से

चले थे और जिस दिन से हमने सब प्रकार की माया ममता को तिलांजलि देके अपने बेटे और पति तक की ममता को भुलाया था। उसी दिन से व्रजाँगनाओ ने सासारिक माया मोह को छोड़ कर इस अटल व्रत का दृढ सकल्प किया था। उसी दिन से हमारी आँखें बन्द हो गई मुँह ने मौन धारण कर लिया और शरीर ने सतप्त होके अपनी कान्ति और तेज सुखा डाला। मुख पर मुरली धारण नदनन्दन का रूप हमारे हृदय में समा गया है। नन्दनन्दन का हमारे हृदय म यह ऐसा सयाग कि जिसे वर्णन करती हुई हम सब भूल जाती है। एक अनिवर्चनीय आनन्द म सराबोर होके विदेह हो जाती हैं। आखिर तुमने योग भी तो ऐसा ही वर्णन किया हैं। (मिलाइये—नश्यते वर्णयितु गिरा तदा स्वय तदन्त करणेन गृह्यते)। प्रक्रिया भेद होते हुए भी फल में तो एकता है ही। आखिर हमे आम खाने से मतलब या पेड़ गिनने से। अन्यथा योग की पद्धति तो इतनी कठिन है और उसके द्वारा इष्टदेव के दर्शन भी सर्वथा दुर्लभ हैं। स्वय ब्रह्मा भी बेचारे परेशान होकर मर मिटे परन्तु फिर भी उस परम ज्योति को पहिचान न सके। यदि पहिचान लेते तो उसके लिए नेति नेति क्यों कहते? (विज्ञातारम् अरे केन विजानीयात्, न च तस्यास्ति वेत्ता इत्यादि-उपनिषद्)। अगर उस पद्धति पर ही आपका आग्रह है तो बताओ उस योग को लेकर क्या करें जिसका कि लक्ष्य निर्गुण प्राप्ति है जो निर्गुण सर्वथा अज्ञेय है। सूर कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती हैं कि प्रक्रिया की कठिनता और लक्ष्य की अज्ञेयता के कारण हमने तो सरल मार्ग का अनुसरण किया है और हृदय को श्याम के अपने रूप से उदभासित करके सयोग में योग की अनुभूति सिद्ध की है।

२१५ गोपियां अतीत सुख का स्मरण करके उद्धव से कहती हैं कि उद्धव अब वे दिन कहाँ? (तेहिनो दिवसा गता। भवभूति)। क्षण प्रतिक्षण उस शोभाशाली मुख को देखकर जो अनिवर्चनीय आनद आता था वह अब कहा आज भी भटक भटककर मन उसी आनद पर जा अटकता है। वह सुन्दर रूप मुख में मुरली, सिर पर मयूर पख और वक्ष स्थल पर पहना हुआ घु घुचियों का हार धारण करके धूल धूसरित हो जब वे गैयों को आगे कर के चलते और सुन्दर बाके कटाक्ष फेंकते जाते थे। ऐसे अनपम शोभाशाली नव रा

दिन अपने साथ खेलते खाते और बतलाते थे। ऐसे थे वे आनन्द के दिन। सूरदास कहते हैं कि गोपियां उद्धव से कहती हैं कि उन अतीत आमोद-प्रमोदों का वर्णन भी आज हम नहीं कर सकतीं क्योंकि हमें उनके शाही रौब को देख कर भय और सकोच लगता है। आज इन बातों का वर्णन करना उनकी राजकीय स्थिति के प्रतिकूल होगा और सभव है कि हमारे इन कथनों पर १४४ लगादी जावे।

२१६ गोपिया श्रीकृष्ण के व्रज परित्याग पर पश्चात्ताप प्रकट करती हुईं उद्धव से साभिप्राय प्रश्न करती हैं—उद्धव! आखिर बताओ कृष्ण ने व्रज को छोड़ जो मथुरा को अपनाया तो इसमें कौन सी कीर्ति कमाली है। वे तो चौदहों भुवनों की सम्पत्ति के स्वामी हैं उन्हें राजाओं की भुक्त पराई राज्यश्री के भोग में कौनसा महत्व मिल गया? हाय! जो ऐसा काम करता है क्या उसी का अनुचर वेद उनके महत्व का वर्णन किया करता है? यदि ऐसा है तो यह श्रुति व्यर्थ में ही उनकी सेवा में जीवन बिता रहा है। यह तो उसकी सरासर भूलता है। परन्तु उद्धव! तुम तो बड़े सज्जन हो तुम्हें मन के कपट को त्याग देना चाहिए। तुम तो कम से कम बातें मत बनाओ सत्य का अनुसरण करो और सोचो कि आखिर सूर के स्वामी श्याम ने क्या सोचकर यह काम किया है या किसी ने उन्हें यों ही बहका दिया है जिससे वे इस मथुरा की राज्य प्राप्ति को ही बड़ा महत्वशाली समझ बैठे हैं।

२१७ गोपियां उद्धव से योग की अनुपादेयता का वर्णन करती हुईं उसे रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण की प्रकृति के विरुद्ध बताती हुईं व्यंग्यपूर्वक कह रही हैं—उद्धव! श्रीकृष्ण कभी योग का उपदेश नहीं दे सकते। शायद तुम्हें सुनने में धोखा हुआ है। इसलिए जाओ फिर से सुनकर आवो कि नदकुमार ने क्या कहा है। यह जो तुम हमें भभूत लगाकर योग साधना के लिए कह रहे हो यह श्याम का उपदेश हो ही नहीं सकता क्योंकि उन्हें यह निर्गुण ज्योति कहाँ मिल गई जिसकी कि चर्चा आप बार-बार कर रहे हैं और कल की बात है कि वे अपने हाथों हमारे अंगों का बनाव शृङ्गार किया करते थे। हमारा तो विचार है कि तुम गोपाल से बिछुड़कर अपनी ज्ञान निधि को खो बैठे हो। इसीलिए जो मन में आई बकते चले जाते हो। वास्तव में यह

तुम्हारा दोष नहीं है उसका वियोग है ही ऐसा कि मनुष्य पागल हो जाता है। (मिलाइए—राम वियोगी ना जियें, जियें तो बौरा होहि। कबीर)। वह विरह ऐसा ही असह्य है। इसके सहने के लिए तो विधाता ने हमें ही बनाया है कि देखो वियोग में भी होश की बातें कर रही हैं। धन्य है हमारी पत्थर की छाती। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हम जो यह सब स्वस्थ होकर सहन कर रही हैं उसका भी श्रेय श्रीकृष्ण को ही है। वे ही हमारे घट के भीतर जीवन और प्राणों के अवलंब हैं। इसीलिए अप्रतीकार्य वियोग में भी जी रही है।

२१८ गोपियाँ उद्धव के निर्गुणोपदेश की खिल्ली उड़ाती हुईं उनसे व्यंग्यपूर्वक पूछती हैं कि उद्धव! आखिर गोपाल ने हमारे लिए क्या सलाह दी है। तब एक गोपी ने दूसरी से कहा आओ सखी! सब लोग मिलकर नन्दलाल से मिलने की एक जुगत सोचें। देखो घर और बाहर जितनी भी व्रजबालाएँ हैं सबको बुलालो और पद्मासन बाँध अपनी आँखें बन्द करके बैठ जाओ। अरे! हमने तो मधुप महाशय का कहा भी कर देखा पर हमारे हाथ तो कुछ नहीं लगा। कमलनयन श्यामसुन्दर के दर्शन तो तनिक भी नहीं होते। सूरदास कहते है कि इस प्रकार प्रलाप करती हुईं वे गोपियाँ विरह सागर में ऐसी डूबी कि किसी को कुछ भी होश नहीं रहा। गोपियों के प्रेम को परिपूर्ण देखकर भ्रमर महाशय चुप हो रहे। तब तक कहीं से पपीहे की पी पी की ध्वनि उनके कानों मे पड़ी और उनके मृत प्राय शरीर में प्राण से पलट आए। सूर कहते हैं हे पपीहे तू पी की पुकार फिर से कर तूने तो मृत विरहिणियों को पुनर्जीवित कर दिया।

२१९ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि अननुरूप प्रयत्न कर्त्ता की मूर्खता को प्रकट करता है। इसलिए हमें योग का उपदेश देने मे बुद्धिमत्ता नहीं हमें तो श्रीकृष्ण के दर्शन कराने मे ही हित है। वे कहती हैं कि उद्धव! क्या वे भी कभी चतुरों का स्थान पा सकते हैं? जो पराई व्यथा को नहीं जानते पर कहलाते सर्वज्ञ हैं। यदि मछलियाँ पानी से बिछुड़ती हैं तो उन्हें कोई किसी यत्न से कब जिला सकता है? उसके लिए अनुरूप यत्न तो यही है कि उन्हें फिर से जल में डाल दिया जावे। किसी के तो प्यास से प्राण जा रहे हैं उसे

पास रक्खा हुआ पानी न बताके सुदूर देश में स्थित अमृत का समुद्र बताना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? हम तो श्यामसुन्दर के विरह से व्यथित हैं पर आप हमें निर्गुण का उपदेश दे रहे हैं। हमारे नयन रूप भ्रमर सब फूलों कोछोड़ के उसी कमल मुख के रस को पसन्द करते हैं। यह जानकर भी हमारे लिये ये सदेश क्यों भेज रहे हैं और मधुकर महाशय ! आप क्यों बकते चले जा रहे हो। सूरदास जी कहते हैं कि हे कुटिल तुम अपने मन को इतना कठोर मत करो। इन निरीह स्त्रियों की हत्या तुम्हारी कठोरता को ही व्यक्त करेगा।

इस पद में रूपक एव प्रतिवस्तूपमा अलकार है।

२२० गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि आपके आने से सतत विरह की सूचना पाके हमारा प्रेम और भी परिपक्व हो गया है इसलिए यह अच्छा ही हुआ कि आप यहाँ पधारे। इसीलिए वे कहती है—उद्धव ! अच्छा ही किया कि आप पधारे। ब्रह्मारूपी कुम्हार ने जिन कच्चे घड़ों का निर्माण किया था उन्हें आपने आकर पका दिया। उन कच्चे घड़ों को श्याम कृष्ण ने रंग दिया था तथा उनके अग प्रत्यंगों पर चित्र बनाये थे। वे कच्चे घड़े नयनाश्रुओं के जल से गलने नहीं पाये क्योंकि वे आज दिन तक कृष्ण के आगमन अवधि रूपी अट्टे पर सुरक्षित रक्खे रहे थे। आज उन कच्चे घड़ों को आपने ब्रज के अवा में रखके योग का ईंधन और स्मरण की आग लगा दी। फिर वह आग हमारे ऊर्ध्वश्वासों की फूंक से विरह की लपटें उड़ाके जल उठी। आपने उन घड़ों को खूब अच्छी तरह पकाने के लिए दर्शन की आशा से विमुख कर के फिरा दिया। अब ये सब पक करके तयार हो गये और प्रेमजल से लबालब भर रहे हैं। इन्हें और कोई नहीं छू सकता। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि ये जल भरे घड़े राजकार्य से गए हुये केवल नन्दनन्दन के मगलकार्य के लिए सुरक्षित हैं। अन्य किसी का इन पर अधिकार नहीं।

इस पद में सागरूपक अलङ्कार है।

२२१ राधा अपनी प्रचड विरह व्यथा का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती है—उद्धव ! हमारी यह छाती वज्र की है कि ऐसी आपत्ति में भी विदीर्ण नहीं हो जाती। मेरा मन रसिक शिरोमणि नन्दलाल से लगा हुआ है पर वे अब कहाँ मिलें ? इसीलिए मैं दिन रात झखती रहती हूँ। हा ! वे तो ब्रज के

लोगों को, माता-पिता को छोड़के क्या गये मानों गले पर छुरी फेर गए। अब तो कृष्ण ऐसे निर्दयी हो गये कि कभी हमारे लिये चिट्ठी तक न भेजी। हमारा हृदय सदा चातक के समान पी पी रटता रहता है। हे सूर के श्याम! तुम अब स्वाति बूँद बनके इन चातक प्राणों की रक्षा करो।

इस पद में रूपक तथा उपमालकार है। उत्प्रेक्षा भी गम्य है।

२२२ गोपियाँ विरह व्यथा का वर्णन करती हुई श्रीकृष्ण के चरित्र पर व्यंग्य करती हैं। वे कहती हैं—उद्धव! मथुरा की रीति कौन सी है? हमारी समझ में ही नहीं आती। जरा तुम्हीं बताओ। तुम्हारे व्रजनाथ (श्रीकृष्ण) राजा होके भी यह क्या अनौखी नीति अपनाये हुये हैं। जो चन्द्रमा सदा ठण्डा था वह आजकल रात को सूर्य के समान दाहक हो रहा है। इधर पुरवैया हवा हमारा कहा न मानके हमारे शरीरो को पस्त किए डाल रही है। उनके पड़ौस में ही ये अनीतियाँ होरही हैं और वे कानों में तेल डाले हुए हैं। कस को भी उन्होने लोकोचार के लिये थोड़े ही मारा है। उन्होने तो कुब्जा को हथियाने के लिये उसे मारा है। तभी तो देखो न अब उन दोनों में कैसी अभिन्न प्रीति हो रही है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि रहने दो इन बातों को। विरह की सकटमय स्थिति में ब्रज में कुछ भी भाता नहीं। गीत वहीं अच्छे लगते हैं जहाँ व्याह हो। गमी मे गीतों की चर्चा नहीं सुहाती।

इस पद मे अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

२२३ गोपियाँ अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि ऐसी परिस्थिति मे योग का उपदेश उनके लिये और भी अधिक दुखदायी है। वे कहती हैं—उद्धव! काल की गति अनेक है। देखो न मदनगोपाल श्रीकृष्ण ने पहले तो हमारा मन चुराया और अब वे उदासीनता की बाते कर रहे हैं। इस पर भी हमे अविगत और अनश्वर ब्रह्म प्राप्ति के लिये योग बताया जारहा है। बस तुम्हीं बताओ हम क्या करें। गोपाल ने पहले छिप छिप के वन में लीला की और खूब लूटा और आज ये रूखा सन्देश भेज रहे हैं। इन बातों को सोचके श्रीकृष्ण के लिए हमारी आंखें उमड़ आती हैं। और उन्हें न पाके वर्षा ऋतु की तरह बरसने लगती हैं। हमारी वाणी

सूर के स्वामी श्याम के रस के बिना चातक से भी अधिक प्यासी हैं।

इस पद में उपमा और प्रतीप अलङ्कार है।

२२४ गोपियाँ बीते दिनों की याद करके उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम के लिये उपालम्भ दे रही हैं। वे कहती हैं कि—उद्धव! लो यह शरत् काल भी आ गया, बहुत दिनों से रटते हुये एक टक निहारते हुये चातक को भी स्वाति का पानी मिल गया। हमारे मन में ध्यान हो आता है कि कभी हमारे प्रियतम भी मुख पै मुरली रख के गाया करते थे। इस चन्द्रमा को देखके यमुना के पुलिनों पर किये हुये उसी मधुर रास की याद हो आती है। परन्तु श्रीकृष्ण की आजकल की क्रूरता को देखते हुये उन गुणों को याद करना मूर्खता होगी इस सम्भावित शंका का समाधान करती हुई गोपियाँ कहती हैं जिससे मन की लगन लगी होती है उसके अवगुण भी गुण प्रतीत होते हैं सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण को लोकापवाद का डर है कि कहीं यह न कहें कि इनके मित्र गँवार हैं। इसीलिये उन्होंने हमसे ऐसा बनावटी प्रेम दिखाया। अर्थात् जब यहाँ रहे तब प्रेम दिखाया और अब राजा होने पर उसे छिपा रहे हैं।

२२५ गोपिया अपनी विरह व्यथा की परिस्थिति में श्रीकृष्ण को सदा के लिए बिछुड़ा हुआ समझकर उस दिन को कोस रही हैं जिस दिन कि वे गोकुल से बिदा हुए थे। वे उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! न जाने वह कैसा दुर्दिन था कि जब कृष्ण ने गोकुल को छोड़ा था। तभी तो जाने के बाद फिर कभी इस व्रज में न पधारे। आते भी क्यों अब वे अपने बिछुड़े हुए निजी खान्दान में मिल गए। गर्ग की बात जो उन्होंने मथुरा की कथा कहते हुए कही थी आज समझ में आई। सूर कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि भाई! अब वे त्रिभुवन नरेश हो गए हैं और अपने कुल और विरादरी में मिल गए उनका सम्बन्ध अपनों से जुड़ गया है फिर अब वे गैरों से मिलने क्यों आने लगे?

२२६ गोपिया उद्धव से योग के उपदेश को अस्थाने प्रयत्न बताती हुई कह रही हैं कि उद्धव! तुम अपनी योग की बात रहने दो इससे हमारे मनको शान्ति नहीं मिलती प्रत्युत तुम्हारी यह सुन्दर सोऽहं की वाणी सुनकर हम

और भी सहम जाती हैं। तुम्हारा यह योग कुम्हेड़े के फल के समान है जो बकरी के मुँह मे नहीं समा सकता। अर्थात् योग की बगैर साधना हमारी स्वल्प सत्ता के अनुरूप नहीं है। इसलिए तुम इसकी बार-बार चर्चा न करो अमृत को छोड़कर कोई जहर नहीं खाना चाहता। सरस-सगुणोपासना को छोड़कर नीरस निर्गुण को कौन अपनाना चाहेगा? ये नेत्र उस रूप के प्यासे हैं इन्हें पानी देकर सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। हाय ! सूर के स्वामी ने जब हमारे मन को चुराया था तो हमारे शरीर की कुशलता पर भी कुछ विचार न किया। उन्होंने यह न सोचा कि हम इनका मन तो चुराते हैं पर इसके अभाव मे इनके तन पर क्या बीतेगी?

इस पद में लोकोक्ति अलंकार है।

२२७ गोपियों के बार-बार मना करने पर भी जब उद्धव योगकी चर्चा नहीं छोड़ते तो गोपिया झल्लाकर उन्हें शरारती बताती हैं और योगकी अनुचितता प्रतिपादन करती हुई कहती हैं कि उद्धव! अब हम तुम्हारी बात जान गई। तुम यहाँ ब्रज मे बिना ही काम के आए हो अर्थात् श्रीकृष्ण के यहाँ से योग का सदेश नहीं लाए योंही घूमते-घूमते अनायास ब्रज में आ गए और यहाँ आकर तुम्हें चुहल सूझी है कि कड़ुई बातें कह-कहकर हमारे हृदय को जला रहे हो। यदि तुम्हारे कथनानुसार प्रियतम श्याम हमारे अन्तस में रहते हैं तो हमारी विरह व्यथा क्यो नहीं गई? अरे चचल मति! तुच्छमति! तुम्हारी झूठी बातों से हमारा मन कैसे मान सकता है! भला सोचो तो कहाँ अगम्य योग की साधना और कहा हम ब्रजवासी। हम इस कठिन नीति को क्या जान सकते हैं। इस योग का उपदेश उस चतुर नटवर को दो जो अपनी प्रेयसी से सदा लिपटा रहता है। तुमको कुछ मालूम है वे वहाँ दासी से छेड़छाड़ कर रहे हैं और तुम यहाँ बातें बघार रहे हो सूर उद्धव से समझाकर कहते हैं कि उद्धव! सचमुच तुम नितान्त निर्लज्ज हो कि अब भी यहाँ से उठ कर नहीं चल देते।

२२८ गोपियाँ बेतुके निर्गुणोपदेश से खीझ कर उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! हम तुम्हारी आबरू रख रही हैं। तुम यहाँ से हटकर हमारी आँखों की ओट हो जाओ। तुम्हें देखकर हमारी आँखें जलने लगती हैं। तुम कहते

नहीं कि गोपाल सत्य शील हैं सो हाथ कंगन को आरसी क्या? जाकर देख लो
भाई कि कुब्जा को घेरे पड़े हैं। भगवान् ने खूब दोनों का जोड़ा मिलाया है
वे अहीर और वह कंस की दासी। तुम जैसे यहाँ दूत भेजे हैं विधाता ने जैसी
उनकी मति फेरी है उसका क्या वर्णन करें। सूरदास के प्रभु श्याम से आलि-
गन करके मिलने के लिए आज भी ग्वालिन बाट जोह रही हैं।

२२९ गोपिया योग का उपदेश सुनकर उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! तुम्हें
वेद का कथन तो माननीय होना चाहिए पर जिन्होंने उस (कृष्ण के) मुख
पर नेत्र राजनों की शोभा देखी है वे दूसरी वस्तु को क्यों कर चाहेंगे? भाव
यह है कि यद्यपि निर्गुणोपासना भी श्रुति प्रतिपादित होने से प्रमाण है
तथापि जिन्हें श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के दर्शन हो चुके हैं वे उसे क्यों अप-
नायेंगे? वह तो ज्ञानियों की चीज है। हा! सब गुणों से परिपूर्ण तथा सम्पूर्ण
सौंदर्य के केन्द्र शोभाधाम कृष्ण हमे अधरामृत पिलाकर बिछुड़ गए और यह
ज्ञान भेज दिया। उद्धव! तुम कहते हो कि वे कृपानिधि दूर नहीं सब अन्त-
सों में समान रूप से व्याप्त हैं। यदि यह सत्य है तो गोपाल हमारे दुःखों को
सुनकर भी हमारे हृदय मन्दिर से बाहर क्यों नहीं आते और हमे सान्त्वना
क्यों नहीं देते? आप तो हमे एक चीज बता रहे हैं जिसकी रूपरेखा नहीं
दीखती जोकि आनंद रहित शब्दों की भूल भूलभुलैया मात्र है। तुम श्रीकृष्ण
के गुणगान रूपी गन्ने को छुड़ाकर सींग सी रूखी निर्गुणोपासना हमारे हाथ
में पकड़ा रहे हो। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि योग
वीतरागी ज्ञानियों की चीज है भक्त जनो के लिए नहीं है। पता नहीं तुम
वेद की उक्तियों के विरुद्ध क्यों कहे जा रहे हो।

विशेष—इस पद में रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

२३० गोपियों उद्धव से निर्गुण का सदेश सुनकर श्रीकृष्ण की रुखाई का
अनुमान करके उस पर व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव! अब वे चित्त
के कठोर होगए हैं। गिरिधर कृष्ण पहले प्रेम को भुला कर अब नयों की
ओर अनुरक्त हो गए हैं। हा! जिस दिन से उन्होंने मथुरा को प्रस्थान किया
है उस दिन से मेरा धैर्य खो गया है। हे रसिक नन्दकिशोर! हम तुम्हारी
जन्मानु जन्म की दासियाँ हैं। जो तुम्हारे कटाक्षों के बाण हमारे लगे थे वे

हृदय बींधने पर फूट गए हैं। सूर के स्वामी रणछोड़ श्रीकृष्ण जी ! आप न जाने अब कब मिलेंगे ? आखिर कटाक्ष बाणों की चोट करके इस प्रेम रूपी भूमि से भाग ही निकले। क्यों न हो हमेशा के रणछोड़ प्रसिद्ध हो। निरोद्रष्टव्य रणछोर श्रीकृष्ण के नामों में से एक है। सभवत उनका नाम जरासंध के साथ युद्ध में कई बार भागने से पड़ा था।

इस पद म रूपक, अतिशयोक्ति तथा परिकर अलकार है।

२३१ गोपिया श्रीकृष्ण की रुखाई पर व्यग्य करती हुई उद्धव से कहती हैं—

उद्धव ! अब श्रीकृष्ण हमारे नहीं रहे। अरे मधुप ! वे तुम्हारे माधव मथुरा रहकर बदल से गए हैं। आश्चर्य है कि वे इतनी ही दूर जाकर कुछ के कुछ हो गए। हम बाट जोहते जोहते हार गई और उनका पता नहीं। उन्होंने तो वही हाल किया जोकि कपटी और कुटिल कोकिलें कौओं के साथ करते हैं। जब तक पले तब तक उनके रहे और बड़े होने पर उड़कर अलग हो जाते हैं। उनकी प्रीति स्वार्थ की प्रीति थी। जैसे भौंरा अपने मतलब से फूलों का रस लेकर फिर उन्हे चित्त स बिलकुल भुला देता है उसी प्रकार उन्होंने हम से रगरेलियां करके हम भुला दिया। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम उनके लिए अब क्या कहें जो न केवल शरीर से अपितु मन से भी काले हैं।

इस पद मे उपमालकार है।

२३२ गोपियाँ निर्गुणोपदेश के अनौचित्य पर उद्धव से व्यग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! तुम्हारे पैर छूकर निवेदन करती हैं कि तुमने बड़ा अच्छा किया जो यहाँ पधारे। तुम्हारा दर्शन माधव के दर्शनों के तुल्य है। तुमने दर्शन देकर हमारे तीनों प्रकार के ताप (आधि भौतिक, आधि दैविक और आध्यात्मिक) नष्ट कर दिए। हम अहीरिन हैं तुम्हें चाहिए था कि तुम हमारे लिए किसी अहीर का कथन करते पर तुम अहीर का नाम छोड़ कर हमें निर्गुण समझाने लगे। तब तो इस ग्वालों की बस्ती मे बहुत से खेल खेले और ऊखल से अपनी भुजा बँधवाई। हा ! कैसे थे वे दिन ! परन्तु हृदय मे खेद तो यही है कि सूर के स्वामी श्याम ने फिर चरणों के दर्शन दिए।

२३३ गोपियाँ निर्गुण के अनौचित्य पर व्यग्य करती हुई उद्धव से कहती

—उद्धव ! तुम हमें निर्गुण बता रहे हो सो तुम्हीं क्यों नहीं उसे ले लेते ?
में हमारी सगुण मूर्ति नन्दनंदन को लाकर दे दो। जो मार्ग बड़ा कठोर
और अगम्य है जहाँ किसी भी प्रकार पहुँच नहीं हो सकती और जिस मार्ग
र चलते हुए सनकादि सिद्ध मुनीश्वर भी भूलें कर चुके हैं उस मार्ग पर
अबलाएँ कैसे जायँगीं। हमारा जन्म ही जब पंच तत्त्वों से है और सत्व, रज
और तमोगुणमयी प्रकृति ही हम में प्रधान है तो हम उससे परे की चीजों को
कैसे जान सकती हैं ! यह सब जानबूझ कर भी जब तुम ऐसी बातें करते हो
तो सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि तुम तो हमसे मन, वचन, कर्म से
अर्थात् सर्वात्मना से शत्रुओं की सी बातें कर रहे हो।

३४ गोपियाँ निर्गुणोपदेश को 'क्षते क्षार-मिवाहितम्' समझकर उद्धव से
और भी अधिक व्यंग्यों की वर्षा करनेकी कहकर अपनी बेबसी का वर्णन करती
। वे कहती हैं कि उद्धव ! कुछ और कहने को बाकी रह गया हो तो हम
म्हारे पैर छूकर कहती हैं कि वह भी कह डालो। हमारे अदिन हैं इसलिए
म सब सुनने और सहने को प्रस्तुत हैं। गोपियों में से ही एक दूसरी गोपी
: सम्बोधन करके कहती है कि सखि ! आज तक हमने तो यह उपदेश देते
किसी को न सुना और न देखा। यह रूखा और कड़ुआ उपदेश जो सुनते
ी जीवन के लिए सन्तापदायी प्रतीत होता है। देखो ! यह ऐसे उपदेश को
मारे हृदय पटल पर अङ्कित करना चाहता है। हमारे हृदय में तो सुषमा-
ाम श्याम निरन्तर निवास करते हैं वे एक पलके लिए भी इसमें से निकलते
हीं। इसलिए उद्धव ! इस तुम्हारे निर्गुण के लिए यहाँ स्थान नहीं है।
से तुम वहाँ ले जाकर रक्खो जहाँ अमन-चैन हो। हम सब तो गोपाल की
पासिकाएँ (व्रतधारिणी) हैं अतएव हमसे इन बातों को मत करो। सूर
हते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—हमारी राय में तो तुम इसे मथुरा में
कुब्जा के घर सँभाल कर रख छोड़ो वहाँ आजकल सुदिन हैं ये बातें वहाँ
चिकर हो सकती हैं।

इस पद में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

३५ गोपियाँ निर्गुणोपदेश के अनौचित्य को प्रतिपादन करती हुईं उद्धव
ो व्यंग्य कर रही हैं कि उद्धव ! केवल ठकुरसुहाती ही मत कहो सबको भाने

वाली बात कहो। जरा बताओ तो कि जिसे तुम ज्ञान सिखाने आए हो व ब्रज में कौन सी स्त्री थी ? देखो ! बात सोच-समझकर करना चाहिए। हमारी यह सिखावन मानलो। यदि तुमने अभी न सुना तो आखिर को तो सुनना ही पड़ेगा। कवि कहता है कि उद्धव गोपियों के इस कथन को सुनकर अवाक् रह गये उनके मुँह से बात नहीं निकलती। वह गोपियों की प्रीति देखकर परास्त हो गए। गोपियों ने उन्हें चुपचाप देखकर कहा उद्धव ! देखने में तो तुम दया के अवतार प्रतीत होते हो पर जब तुम्हारी बातें सुनती हैं तो पता चलता है कि तुम कितना दूसरों को दुःखदायक हो। उद्धव ! हम तुमसे फिर कहती हैं कि तुम अब वही करो जिससे हमारा हृदय का दाह मिटे और शान्ति मिले। तुम तो हमें सीधी सड़क से हटाकर ऊबड़-खाबड़ काँटों से युक्त मार्ग बता रहे हो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि भाई ! जो तुम कहते हो सो ठीक तो है पर जानते नहीं कि बकरे के मुँह में कुम्हेड़ा कहीं समाता है ?

इस पद लोकोक्ति अलकार है।

२३६ गोपियाँ उद्धव के निर्गुणोपदेश व्यथादायी बताकर उससे विरत होने के लिए कह रही हैं—हे उद्धव ! तुम हमारी एक बात सुनो तुम जो बात हमें सिखा रहे हो वह तो हमें बिलकुल नहीं भाती। जिस प्रकार कुमुदिनी चन्द्र दर्शन के बिना और कमल सूर्य के बिना मलीन रहते हैं उसी प्रकार कृष्ण के बिना हम भी तड़प-तड़पकर मुरझा रही हैं। जिन कलेवरों को चन्दन और कपूर घिसके लगाकर सजाया वे भभूत कैसे रमाएँगे ? जिन श्रवणों ने मुरली धर की मुरली से लगन लगाई उन्हें सिंगी की बात सुनकर डर लगता है। फिर भी तुम अबलाओं को योग की शिक्षा दे रहे हो। तुम्हें इसमें जरा भी लजा नहीं आती। जिन्होंने कृष्ण के आलिंगन रूपी अमृत का स्वाद लिया है वे निर्गुण की कडुई बातें कैसे गले उतारेंगी ! आज दिन तक तो उनके प्रत्यागमन की आशा से अवधि के दिन गिन-गिन कर जीती रहीं पर अब ये प्राण नहीं ठहरते। हाय रे हमारा अभाग्य ! कि सूर के स्वामी श्याम ने हमें ऐसे भुला दिया जैसे पेड़ पुराने पत्ते को उतारकर फेंक देता है। (मिलाइए— लागौ केहि की डार।)
—जायसी।

इस पद में उपमालंकार है।

३७ गोपियां अपनी विरह की पीर का वर्णन करके उद्धव से निर्गुणोपदेश लिए मना करके उचित प्रतीकार करने की विनय करती हुई कहती हैं कि द्धव! हमारी आखें अत्यन्त अनुराग में आसक्त हैं। ये टकटकी बाँधे उनका ार्ग जोहती हुई रोती रहती हैं। भूल करके भी पलक नहीं लगाती। बिना र्षा के ही वर्षा ऋतु आगई तुम स्वयं प्रत्यक्ष देख रहे हो। अब तुम मालूम हीं और क्या करना चाहते हो? इस शुष्क ज्ञान को छोड़ दो। हे श्याम-न्दर के प्रिय मित्र तुम तो सहज ही सब बात से जानकार हो। जिस प्रकार ो सम्भव हो ऐसा उपाय करो कि सूर के प्रभु श्याम हमें मिल जावें।

इस पद में विभावना अलंकार है।

३८ गोपियां विरह व्यथा की अवर्णनीयता उद्धवसे प्रकट करती हुई कहती कि उद्धव! वर्णन करने का लाख प्रयत्न करने पर भी विरह-व्यथा वर्णन हीं की जाती। मदन गोपाल श्रीकृष्ण के बिछुड़ने से प्राण मुरझा रहे हैं। ब रथ पर चढ कर श्रीकृष्ण चल दिए और उन्होंने इधर देखा तभी सब ज बालाएँ अपने आपको परम अनुग्रहीत समझकर उठकर उनके साथ लग ीं। आज यह व्रजबालाओं की दृष्टि ही और हो गई है जो बिरह की बात से ीड़ित होकर आँय बाँय साँय बक रही हैं। इन पगलों की सृष्टि को तुम क्या ार-बार उत्तर दे रहे हो। तुम तो पूर्ण ज्ञानी हो। इन पगलों के मुँह लगने तुम्हारी प्रतिष्ठा घट चली है। क्या किया जाय? अब जैसे हो प्रतीति विश्वास) की प्रतिष्ठा कराओ। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से हती हैं कि विरह की पद्धति बड़ी कठिन है वह सर्वथा वर्णन से परे की स्तु है।

३९ गोपियाँ श्रीकृष्ण से बिछुड़कर वियोग में भी जीवित रहने के कारण पने प्रेम को धिक्कारती हुई कहती हैं कि उद्धव! यह मन बड़ा कठोर है। जस प्रकार जल के निकलने से कच्चा घड़ा फूट जाता है उसी प्रकार नन्दलाल े बिछुड़ते ही न जाने यह भी क्यों न विदीर्ण होगया। सचमुच व्रजनाथ से रित्यक्त होकर के भी प्रेम की परिपाटी से अनभिज्ञ ही रहीं। यदि सच पूछा ाय तो हमारा प्रेम ही उनके प्रति वास्तविक नहीं है। हमारे व्यवहार ने तो

सब प्रेम की रीतियों को लज्जित कर दिया। जल में रहने वाली बेचारी मछलियाँ हमसे कहीं अच्छी हैं जो अपने प्रेम के नियम का निर्वाह करती हैं। जल से वियुक्त होते ही वे अपने तन को त्याग देती हैं और केवल जल से ही प्यार करती हैं। परन्तु उद्धव ! सुनो यह भी एक आश्चर्य ही है कि मछलियाँ बनने वाली भी हम बिना श्रीकृष्ण रूपी जल के जीवित रहीं। पर सच पूछो तो आश्चर्य भी कुछ नहीं क्योंकि सूर के प्रभु श्याम आने की कह गए थे इसी बात से हमने अपने मन मे विश्वास कर लिया।

इस पद में उपमा एव रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

२४० गोपियाँ उद्धव से कोरी सान्त्वना न देकर हरि के दर्शन कराने का अनुरोध करती हुई कहती हैं—उद्धव ! समझाने से क्या होता है ? हमारे मन में तो वह प्रियतम की श्यामल मूर्त्ति चुभी है। फिर तुम व्यर्थ में इस योग को क्यों लाए ? हम तुम्हारे चरण छूकर निवेदन करती हैं कि श्रीकृष्ण से कह देना कि एक बार हमें दर्शन दे दें। सूर के प्रभु श्याम से विनय के साथ यही हमारी पुकार कह देना।

२४१ गोपियां उद्धव से योग के बदले श्रीकृष्ण के दर्शनों की याचना करती हुई कहती हैं—कि उद्धव ! हमें योग नहीं सुहाता। हमारे चित्त में सुन्दर घनश्याम निवास करते हैं उन्हें हम कैसे भुला दें ? तुमने जो कुछ कहा वह सब सच है पर हमारे लिए उस सबका कोई मूल्य नहीं। इस हृदय के अन्तर में सगुण श्याम सतत व्यापक रहते हैं फिर निर्गुण के लिए स्थान कहाँ है ! हम चरण छूकर निवेदन करती हैं कि तुम मोहन से कह देना कि योग कुबरी को दे दें और सूर के प्रभु श्याम अपना रूप हमारे सम्मुख कर दें जिसे हम देखती रहें।

२४२ गोपियां उद्धव से फिर वही बात कहती हैं कि योग हमारे योग्य नहीं और श्याम सुन्दर से लगे हुए हृदय में उनको छोड़कर अन्य किसी के लिए स्थान भी नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करती हुई वे कहती हैं—कि उद्धव ! हम योगपद की सिद्धि नहीं कर सकतीं। हमने उस सौन्दर्य निधि की आराधना की है जिसे लोग श्याम सुन्दर, गिरिधर और नन्द-नन्दन आदि नामों से पुकारते हैं। आखिर जिस शरीर पर रच रचकर आभूषण पहिरे और जिसे

नाना सज्जाओं से सजाया उसी शरीर पर भस्म चढ़ाने के लिए तुम कह रहे हो। यह कैसी अनमेल बात है। ऐसी बेतुकी बातें करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ! सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारे अन्तस में तो सदा श्यामल मूर्त्ति ही मोर पर्णों का मुकुट पहने वास करती है और हमारा चित्त उन्हीं से लगा है फिर इस योग को कौन सभाले ! योग चित्तवृत्ति के निरोध का नाम है और जब न चित्त खाली और न उसकी वृत्ति को फुरसत तो भला योग को कैसे और कहाँ सभाल के रखा जा सकता है !

२४३ गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण को बुलाने का सन्देश देके कुब्जा और कृष्ण के प्रेम पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! उनसे यह सदेश कह देना शायद वे इससे सकुचते हों कि लोग कहते हैं कि वे कुब्जा के प्रेम में मस्त हैं। यह सकोच-उनसे कह देना कि लेशमात्र भी न करें। कभी तो मयूर पत्तों के लुभावने वेष के साथ इधर अवश्य पधारें। हमारे मन को प्रसन्न करने से (उनसे कहना कि) तुम भुवन नरेश अर्थात् साक्षात् ईश्वर हो जाओगे। (देखिये-दीनै सब कह लग्वत है दीन लखै नहि कोय। जो रहीम दीनहि लखै दीन बन्धु सम होय—रहीम) । जब तुम स्थिर चित्त होके सब देशों के बारे में सोचेंगे तो ऋषीकेश ! तुम अवश्य ही इस परिणाम पर पहुँचोगे कि ब्रज के सिवाय और अखिल सृष्टि में कोई और बैकुण्ठ नहीं है। जब यह बात है तो तुम्हें यह किसने सलाह दी कि ब्रज को छोड़ देश परदेश भटकते फिरो। तुम्हीं बताओ कि यशोदा सी माता और राधा सी प्यारी किसी और देश में भी मिल सकती हैं। यह कहते हुए वह (स्यामा) युवती. राधा स्नेह शिथिल होके अचेत हो रही। स्नेह विभोर होने से वह निश्चेष्ट और अचेत हो गई। श्रीकृष्ण के अनुराग से अनुरक्त उसका नव पल्लव सा कोमल मनका राग तत्काल ही फूट निकला जिससे वह (सुदेस) मगल तारे की भाति लालिमा मय हो गई। भाव यह है कि गोपी के उपर्युक्त कथन को सुनके राधा झेंप से लाल हो गई। उस लालिमा पर कल्पना करते हुये कवि कहता है कि मानों वह लालिमा उसके पल्लव के समान कोमल मन की अनुराग लालिमा का आभास था। अथवा मन में जो अनुराग की आतरिक लालिमा थी वह इस कथन से भास्वर होगई। सभवतः इसीलिए कवि पहले प्रवाल और

बाद में सुदेस (मंगल) का प्रयोग पद में किया है। वह प्रेम की प्रबलता में इतनी अचेत हो गई कि उसे सुध न रही कि वह उद्धव कौन है। (दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना) के अनुसार उसे यह भी पता चला कि विरह व्यथा क्या है ? वह भूल गई राजधानी मथुरा में आजकल कौन राजा है ! उसे कुछ न होश रहा कि ज्ञान कैसा ? किसने कहा ? किससे कहा ? और किसने उपदेश भेजा है ? वह तो साक्षात् मुरलीनाद से भरे पूरित माधुरी शोभावान् मुख के सन्मुख दर्शन करने लगी। उसे सामने प्रतीत हुआ कि गो धूलि से कबरे बाल किए अभिनेता के नट के समान प्रियतम एकबारी लटक के साथ बन से आते हुए प्रवेश कर रहे हैं। बस फिर क्या था ? अत्यन्त आतुरता से दौड़कर प्रियतम के नेत्र कमलों को पोंछ उठी और उनके मुख कमल की मुरझाती हुई शोभा को छू छूकर उसे बड़ी विशेषता से देखने लगी। सूरदास कहते हैं यह सम्पूर्ण आनन्दों से युक्त भ्रमगति (यह भ्रान्तदशा) धन्य है जिसमें नित्य विहार करते हुए सोम और सनकादि सिद्ध, इन्द्र, अज और शारदादि देवविभूतियां तथा वेद महेश और शेषनाग गान किया करते हैं।

इस पद में रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार हैं।

२४४ गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम का उपालम्भ देती हुई कहती हैं कि उद्धव ! श्रीकृष्ण ने प्रेम प्रकट करके हमारे चित्त को चुरा लिया। उद्धव ! वे अपने चचल कटाक्षों से देखते हुए हमारे महावर चंदन आदि लगाया करते थे। तुम्हें हम बड़ा सज्जन तथा जदुकुलनाथ के चतुर सखा मान के यह बात चला रही हैं। देखो सवेरे सवेरे अपने मन में खूब सोच समझ के सची बात बताना कि जब किसी के हृदय को शरत्कालीन कमल से सुन्दर नेत्रों के कमान के समान भौंहों से छूटे हुए कठोर बाण लग के बींध डालें तो वह कैसे जी सकता है ? आज मोहन मथुरा रह रहे हैं और व्रज में योग का सन्देश भेजा है। हाय ! युवतियों के लिए यह उपदेश देने पर पृथ्वी क्यों नहीं फट उठी ? तुम श्याम के प्रवीण मित्र हो स्वयं मन में विचार करके देखो कि हमारे प्रियतम राजा हो गए और उन्होंने एक सुन्दरी भी अपनाली। इससे अधिक अवहेलना और क्या हो सकती है ? ऐसे निमोही का तो परित्याग कर

देना ही श्रेयस्कर है । पर करें क्या ? उन्होंने कोमल हाथों में पकड़ के अधरों पर रखकर जो मुरली की तानें सुनाई थी उनकी पीयूष धारा से कान आज भी अप्लावित हो रहे हैं । उन्हें और कुछ सुनाई नहीं देता। बेचारी मृगछौनों के से लोचना वाली इन भोली अबलाओं की दशा और हिरणियों की दशा एक सी ही है । हिरणियाँ नाद के विष के ताप में मारने वाले व्याध का खयाल नहीं लातीं इसी प्रकार इन मृगशावकनयनाओं ने भी कटाक्षों के विष से सतप्त होकर मारने वाले घातक हरि को न पहचान पाया । गोपाल गौ और ग्वालों को त्यागकर चले गए । खूब कीर्त्ति भी कमाई । पर क्या यह सब उचित है ? तुम जरा इस बात को समझाकर अच्छी तरह कहना कि यह आपकी वैदिक मर्यादा भी भली है ?

इस पद में—उपमा, (मृगज लोचनी में उपमान लुप्तोपमा भी है), रूपक तुल्ययोगिता एव काकु वक्रोक्ति अलकार हैं ।

२४५ गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण के प्रेम का उपालम्भ देती हुई दोनों को फटकारती हुई कहती हैं—कि उद्धव ! अब तो दुनिया जान गई है कि जैसे तुम और तुम्हारे मित्र हैं । दोनों खूब घुटे हुए बड़े गुणी हो । तुम दोनों चोर और हृदय के कपटी हो। भगवान् ने खूब चोर और गँठकटों की जोड़ी मिलाई है । तुम भी काले और वे भी काले । चाहे कोई बेचारा कैसा ही क्यों न हो पर तुम्हें अपने मजे के लिए उसका सर्वस्व हरण करने से मतलब । परम कृपण होकर थोड़े से ही धन से कोई अपना जीवन यापन करना चाहे तो उसका भी तो तुम्हारे यहा निबाह नहीं है । अर्थात् विलासिता के द्वारा विभूतियों के उत्कर्ष को दिखाने वाले लोगों का सर्वस्व अपहरण किया जावे तब तो कोई ऐसी बात नहीं है पर तुम्हारे यहाँ तो थोड़ी विभूति वालों तथा कृपणता से अपना जीवन निर्वाह करने वालों को भी निभाने नहीं दिया जाता उनकी लूट पाट भी चट करली जाती है । भाव यह है कि हमने उनके प्रेम का अत्यधिक भोग किया होता और उसका यह दण्ड भोगना पड़ता तो ठीक था परन्तु यहा तो फूक फूककर पैर रखते हुए बड़ी कृपणता से उस प्रेम का भोग करने पर भी यह सजा भुगतनी पड़ रही है । (देखिए— कीन्ही सदा कृपण की सगति

कबहुँ न कीन्हों भोग—भ्रमरगीतसार)। सूरदास कहते है कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि सच्ची बात तो यह है जो कोई तुम लोगों से प्रेम करे उसका सत्यानाश ही हुआ समझो।

२४६ गोपिया श्रीकृष्ण के प्रम का उलाहना देती हुई उद्धव से कहती हैं कि मधुकर! आपके चातुर्य का क्या कहना है! आपकी चतुरता और किस को मिल सकती है? लेकिन हाँ आप हमारे लिए बड़े भोले बन रहे हैं। जैसे आप हैं (गाठ गाठ कुम्मैत) वैसे ही आपके आका साहब (स्वामी) हैं एक ही रङ्ग और एक ही बाना। पहले तो हमें प्रेम का अमृत पिलाया और बाद में अब योग नराान रहे हैं। यदि योग ही देना था तो प्रेम क्यों दिया था सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारी तो वह दशा है जो कि किसी भौंरे की कभी हुई थी। कहते हैं कि एक बार कमल के आनन्द में मग्न होकर भौंरे को यह भी न पता चला कि सूर्य कब अस्त होगया। वह उसी प्रकार रगरेलियों में अचेत था कि कमल ने अपनी पखड़ियो को चारों ओर से समेट लिया। चारों ओर से बदी होकर भ्रमर वेचारा सोचने लगा कि कोइ बात नहीं प्रात काल सूर्य की किरणें फैलने पर जब कमल विकसित होगा तभी चलेंगे। स्नेही के आलिङ्गन पाश को छिन्न भिन्न करके चला जाना प्रम पद्धति क अनुकूल नहीं है। फिर स्नेही के आलिङ्गन पाश का बदी होना भाग्य से ही नसीब होता है। इस प्रकार सोच ही रहा था कि एक हाथी ने आकर उस कमल को तोड़ मरोड़ क फेंक दिया। दुर्दान्त दन्ती से यातना पाकर भ्रमर को अपनी अत्यासक्ति पर पश्चात्ताप हुआ। उद्धव! सचमुच आज इस वियोग के उत्कट सताप में हम भी कभी कभी हाथ मल मल कर अपने अत्यधिक स्नेह के लिए पछताया करती हैं।

इस पद म उपमा तथा काकु वक्रोक्ति अलकार तो है ही। साथ ही उप र्युक्त व्याख्या के लिये सस्कृत के निम्नलिखित श्लोक पर दृष्टि रखना आव श्यक है। सूर ने उसे अत्यन्त प्रसिद्ध जानकर उसकी ओर सकेत भर कर दिया है। उसका अविकल भाव नहीं लिया है। वह श्लोक यह है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभात भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्री।
इत्थ विचिन्तयति पद्मगते द्विरेफे हा हन्त! हन्त! नलिनीं गज उज्जहार॥

२४७ गोपियाँ योग के सन्देश पर व्यंग्य करती हुई उद्धव को मधुकर सबोधित करके कह रही हैं—हे मधुकर ! तुम यह योग का संदेश सुनाके हमारे हृदय में एक टीस उत्पन्न कर रहे हो। मालूम यह होता है कि तुम भी हरि चरणों को छोड़ आने के कारण उनके प्रेमावेश में भटक कर यह भूल कर रहे हो। यह कथन जिसे तुम हमारे हृदय में ठूँस रहे हो श्रीकृष्ण के कोमल मुख की उक्ति कभी नहीं हो सकती। यदि तुम श्रीकृष्ण के कथन में अपनी ओर से नमक मिर्च मिलाकर न कहते होते तो तुम हमारे सामने इस तरह न झेंपते। जहाँ से तुम आए हो वह बड़ी जगह है। उसे मथुरा शहर कहते हैं। यहाँ कमनीय कालिन्दी कूल है। वहा जाके महाराज चतुर्भुज विष्णु का स्मरण करना (या दुहाई देना) पर यहाँ लोग उन्हें नहीं जानते यहाँ तो प्रियतम नन्दलाल की दुहाई दी जाती है। इसलिये यहाँ आके उन्हें भूल के नदलाल के गुण गाना अधिक उचित है। जो तुम बड़ों की बातें कर रहे हो वे ब्रजवासियों के लिए कोई मूल्य नहीं रखतीं। यहाँ तो सूर स्वामी श्याम ने गल बहियाँ डाल के गोपियों के साथ रगरेलिया की हैं। शायद तुम्हें इसकी खबर नहीं है।

इस पद में उल्लेख अलंकार है।

२४८ गोपियाँ पराधीन मन में योग के लिए अनवकाश बताती हुई उद्धव से कहती हैं कि मधुकर ! हमारा मन ही यहाँ नहीं है फिर यह योग का उपदेश कौन सुने ? वह तो नन्दनन्दन के साथ लगा चला गया है और फिर उसने कभी लौटने का नाम न लिया। उसे तो किसी ने नयनों के कटाक्ष से देखकर मुसकराहट का मूल्य देकर खरीद लिया और हमारे हाथ से उसे निकाल के दूसरे के हाथों मे दे दिया अर्थात् अब वह दूसरे का क्रीतदास है। जबकि नयनो ने दलाली करके मुसकान का मूल्य चुकता कर दिया तो जाके उसे (मालिक को) सौंप दिया अब वह उसी के वश में है। उसे अब अपने घर का आवास भूल चुका है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जो दूसरे के साथ रस मग्न हो गया है उसे कौन समझा सकता है। इसलिये इस तुम्हारे निर्गुण मत की यहाँ दर दर रही है। अच्छा हो कि तुम इसे लेके कहीं अन्यत्र चले जाओ।

इस पद में (साङ्गवसान) रूपक अलंकार है।

२४९ गोपिया योग के अनौचित्य पर कटाक्ष करती हुई उद्धव की 'कथनी और करनी' में भेद दिखाती हुई उनसे कहती हैं—हे मधुकर ! तुम हमी को समझाना जानते हो। बार-बार अपनी ज्ञान की कहानी ब्रजाङ्गनाओं के आगे बखान रहे हो। नन्दनन्दन की कथा छोड़ के बनावटी बातें कह-कह के हमारे हृदय में अपने लिए घृणा के बीज जमा रहे हो। तुम स्वयं नागर (नगर के रहने वाले अर्थात् शिष्ट) हो। तुम्हीं अपने मन में विचार करके देखो कि जिन शरीरों को चन्दन और मालाओं से सजाया है वह इन बातों से कैसे तृप्त हो सकेंगे ? फिर तुम अपना भी तो मुह शीशे में देख आओ। दूसरों की आसक्ति पर कीच उछालने से पहले अपनी ओर भी तो देख लो। तुम सब फूलों को नीरस समझ के कमल मे इतने क्यों आसक्त होते कि उसके बन्दी होके रहते हो। (ठीक है लोमड़ी औरों को शकुन बताती पर अपन कुत्तों से नुचवाती है। सो हाल है उद्धव का)। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कटाक्ष करती हुई कहती है कि हे भ्रमर ! स्वयं प्रेमी होकर भी कमलनयन कमलपाणि कमल चरण तथा कमल मुख श्रीकृष्ण को छोड़ के अन्य के विषय में क्यों बकवाद करते हो। तुम्हें भ्रमर होने के कारण हमारे न सही अपने ही प्रेम के नाते से उस सर्वाङ्ग कमल के गुणगान करने चाहिए। पर तुम कर रहे हो निर्गुण का गान यह तुम्हारे प्रेम के लिए कलङ्क की बात है

इस पद में अप्रस्तुत प्रशसा अलङ्कार है।

२५० गोपियाँ कृष्ण की रुखाई पर व्यग्य करती हुई उद्धव से कहती है कि श्रीकृष्ण की मधु के साथ हलाहल देने की जन्म-जन्मान्तरों की आदत रही है इसलिए उन से कुछ कहना बेकार है। पर तुम्हें तो कुछ सोचना चाहिए। इसलिए कृष्ण के व्यवहार से रूठ कर कहती है कि उद्धव ! गोपाल कौन है कहाँ रहते हैं उनका प्रेम किससे है ? तुम्हारे हाथ सन्देश किसने भेजा है और तुम किसे सुना रहे हो ? हमारी बनी बिगड़ी का भला कौन साथी है जो हमारे लिए सन्देश भेजे ? वे हमारे कौन है ? वे कभी किसी के हुए हैं या हमारे ही होंगे ? उनकी दशा तो भौंरों की सी है जो जहाँ अधिक रस दिखाई दिया उन्हीं बेलों पर जा लदे। वे बेलें हरी भरी रहें या सूख जाय। उनकी गाँठ का क्या जाता है ? जैसे व्याध बन में जाकर वेणु द्वारा अनेक रागरागि

नेयों की मधुर लय लहरी से पहले तो हरिणी के मन को बेवश कर देता है और विश्वास जमाता है फिर उसके साथ विश्वास-घात करके कठोर बाण खींचके मारता है और उस भोली विवश और विस्रब्ध हरिणी के प्राण ले लेता है ऐसे ही आपके दोस्त साहब ने हमारे साथ किया। यह उनके लिए कोई नई बात नहीं यह तो उनकी पुरानी आदत रही है। दूध पिलाती हुई पूतना को मारा और बालि को भी छिपके मार गिराया। बेचारे बलि को दान देते हुए मार डाला ऐसे ही शूर्पणखा और ताड़का को भी मार डाला। सूर के स्वामी श्रीकृष्ण की यही आदत है।

इस पद मे सूर ने मनोविश्लेषण का अद्भुत परिचय दिया है। जब हम किसी से किसी कारण से असन्तुष्ट हो जाते हैं तब उसके अच्छे कृत्यों की भी कटु आलोचना करते हैं। उसके परमार्थ में स्वार्थ की बदनीयत देखने लगते हैं। इसीलिए यहाँ पर गोपियाँ कृष्ण की वचनाओं से व्याकुल होके उनके भले कार्यों पर भी लाञ्छन लगा रही हैं।

इस पद मे रामावतार के कार्यों को भी कृष्ण के मत्थे मढ़ा गया है। इसमे भी मनोवैज्ञानिक पुट है। यद्यपि दोनो के विष्णुरूप होने से इसमें कोई असगतता नहीं कही जा सकती तथापि गोपियों की एकागिनी आसक्ति राम से कृष्ण को पृथक ही देखती है। (देखिए-हरि सो भलो सो पति सीता को) पर यहाँ उनकी मनोवृत्ति आवेश मे सतत अङ्कित की गई है। आवेश मे हमारी मनोवृत्ति अपने क्रोधपात्र के भले कार्यों को ही लाञ्छित करके सन्तुष्ट नहीं होती अपितु वह ऐसे भी कार्यों को ढूँढ निकालने का प्रयत्न करती है जो बुरे होने के साथ-साथ हमारे क्रोधपात्र के साथ किसी न किसी प्रकार और किसी न किसी रूप मे सम्बन्धित किए जा सके। वैसे चाहे हम उन बुराइयों के कर्त्ताओं से उनका कोई सम्बन्ध स्वीकार न करें परन्तु आवेश की परिस्थिति मे हमें तभी सन्तोष होता है जब हम उनका उन कर्त्ताओं से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध जोड़ देते हैं।

इस पद मे अप्रस्तुत प्रशसा और उपमा अलकार है।

२५१ गोपिया योग के सन्देश से चिढ़कर कृष्ण पर व्यंग्य करती हुई उद्धव के सम्मुख कहती हैं कि हे कृष्ण! इन मधुकर महाशय को यहाँ भेजने से

आपकी व्यापकता में कमी आ गई। आप व्यापक होने से सब हाल यों ही जान सकते थे फिर इन्हें भेजना यह प्रकट करता है कि शायद आप सब जग व्यापक नहीं हैं। अस्तु जो आपने (कृष्ण ने) जब से नागरी स्त्रियों के मुं की शोभा की ओर ताकना शुरू किया तब से दो बातें तो भूल गई। ब्रजक स्नेह और स्वय की पूर्णता दोनों में से एक का भी पूरा न पड़ा अर्थात् दोनं ही कम रहीं। जब से कुब्जा से आलिङ्गन किया तब से तो आपका एक नव तीसरा ही पथ प्रकट हो गया जिसके कारण 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' चारां ओर मुखरित हो उठा। हुआ सो हुआ यह बेचारा उद्धव तो बड़ा सीध दिखाई पड़ता है पर तुमने इसे खूब धोखा दिया। इस विचारे ने सिधाई के कारण यह भी न जान पाया कि तुम इसे बना रहे हो। इसलिए तुमने जैस कहा वैसे ही यह बेचारा जोग की पोटली सिर पर रख के चल दिया। सूरदा कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि आपकी मालिकी के क्या कहने हैं जिसं कारण आपके प्रेम की तो खूब धूम मच गई। आपको भले ही राज्य का मा और अनेक सुख मिल गए हों पर यहाँ घोष (ग्वालों की नगरिया) में तो एक घड़ी भी चैन नहीं है।

२५२ गोपियाँ योग और निर्गुण की साधना की खिल्ली उड़ाती हुई उद्धव से मधुकर सम्बोधन करके व्यंग्य कर रही हैं। वे कहती हैं कि मधुकर! तुम व्यर्थ की बातें क्यों बक रहे हो! हमें तुम पर जरा भी विश्वास नहीं आता। तुम ऐसे कपटी हो कि अपने मन का कपट अब भी प्रकट नहीं करते। तू बड़े ही चचल और ओछे का साथी है। चारों ओर यों ही अकुलाया हुआ डोल रहा है। तू माणिक्य और काच को एव कपूर और कड़वी खली को बराबर कैसे तोल रहा है! सूरदास कहते हैं कि वियोग-व्यथित गोपियाँ उद्धव से बार बार कहती हैं कि तू बार-बार हमें क्यों जला रहा है! तू अपने बेमेल अगम्य निर्गुण को अमृत रूप आनन्ददायी सगुण कृष्ण के समान क्यों अमूल्य बता रहा है।

इस पद मे प्रतिवस्तूपमा तथा अन्तिम पंक्ति मे वृत्त्यनुप्रास अलंकार भी है।

२५३ गोपियाँ उद्धव से व्यंग्य करती हुई निर्गुण के सन्देश से उत्पन्न अपने

मानसिक खेद को प्रकट करती हुई कहती हैं कि हे मधुकर ! तेरा श्याम कलेवर देखकर और कृष्ण के मुँह की चिकनी-चुपड़ी बातें तुझसे सुनकर हमारा तो हृदय त्रस्त हो रहा है। अरे रस के लोभी ! हम तो एक बार उनके चरण छूने की विनय कर रही हैं पर तू व्यर्थ ही हमें इसके लिए मना कर रहा है। जब उन्होंने हमारे शरीर का आलिङ्गन किया, उस पर केसर का लेप किया तो क्या अब इतनी सी बात (चरण छूने) भी कुछ शर्म की बात है ? उन्होंने तो अपनी बाकी चितवन से हमारी बुद्धि, विवेक और वचन चातुरी सब कुछ चुरा लिए। पर बताओ उनकी यहाँ क्या चीज भुला गई थीं कि जिसके लिए तुम निर्लज्जता से यहाँ आ धमके। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि अब तक तू अपना वही निर्गुण का गीत हमारे सामने क्यों अलाप रहा है ? तू जो हमें त्रिगुणातीत (सत्व, रज और तम तीनों गुणों से अपरिच्छिन्न अर्थात् निर्गुण) से लौ लगाने के लिये कह रहा है इससे बड़ी और क्या गाली हो सकती है।

२५४ गोपियाँ श्रीकृष्ण की रुखाई पर रुष्ट होकर उद्धव के सम्मुख मधुकर को लक्ष्य करके उपालम्भ देती हुई कहती हैं—भला भौंरे भी कभी किसी के मित्र बने हैं ? चार दिन के लिये मुहब्बत दिखाकर अन्यत्र चलते बनते हैं। अपना मतलब गाठने के लिये दूसरों को फँसाते बहकाते फिरते हैं और नए नए आडम्बर (पाखण्ड) रचते हैं। मन की हौंस पूरी हो जाने पर फिर वे मित्रता तो दूर रही, जान पहिचान तक मिटा देते हैं। ये कभी किसी से प्रेम नहीं करते। देखो न, मतलब हो जाने पर किस प्रकार चित्त उचाट के हमारे मन चुराकर कृष्ण महलों (रावल) में जाकर रहने लगे। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव को लक्ष्य करके कहती हैं और ये हजरत (उद्धव) दूत के कर्त्तव्यों को भुलाकर जहर के बीज बो रहे हैं। दूत का धर्म है कि जिसका सन्देश लाया है उसकी बात सत्य और न्याय पूर्वक कहे पर ये अपनी नमक मिर्च मिलाकर कह रहे हैं।

२५५ *गोपियाँ उद्धव से योग की अयोग्यता प्रतिपादन करती हुई कृष्ण के* व्यवहारों पर आक्षेप पूर्वक कहती हैं मधुकर ! यह नीति-शास्त्र कहाँ पढ़ा है कि अबलाओं को योग-साधन करना चाहिये। यह तो लोक तथा वेद श्रुति

सभी से उल्टी बात कह रहे हो। खैर मान लिया कि हमारी आसक्ति में काम की गंध है इसलिए हमें छोड़कर आप हमें परमार्थ की ओर लगाने आये पर यह तो बताओ कि उन्होंने प्यारी जन्म भूमि और माता यशोदा को किस अपराध में छोड़ा है ? और अत्यन्त कुलीन अमित गुण शालिनी सर्वाङ्ग सुन्दरी दासी कैसे घर में देली ? क्या यही वीतरागता है। यह तो वही बात हुई कि 'आप न जावे सासुरे औरन को सिख देइ'। इसलिये ये सब बेकार की बातें हैं। अरे योग समाधि बड़ी गूढ़ है। श्रुतियों में उसे मुनि मार्ग कहा गया है। उसको ग्रामीण अबलाएँ क्या समझ सक्ती हैं ? यदि त्रिगुणातीत तुम (निर्गुण) को सबमें व्यापक कहते हो तो पतिव्रता स्त्रियों के लिये जिनके लिये 'सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं' कहा गया है, इससे बड़ी गाली और क्या हो सक्ती है। (सर्व-व्यापकता के नाते निर्गुण उन सती स्त्रियों के मन में भी तुम उसे व्यापक बता रहे हो और यही उनके लिये गाली हो जाती है) इसलिये रे मधुप ! तू चुपकर अब अपने स्वार्थ के लिये (नौकरी रखने के लिये या कृष्ण की संगति का अव्याहत आनन्द लेनेके लिये) बहुत बातें मत बना। बहुत हो चुका। कोई भली स्त्री इन गालियों को सुनना नहीं चाहेगी। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम ऐसी ऊल जलूल बातें करते हो और फिर भी हम तुमसे कुछ नहीं कहती। हम मन, वचन और कर्म से (सर्वात्मना) कहती हैं इस उग्र अपराध में भी तुम इसलिये बच रहे हो कि हमें श्याम का लिहाज लगता है। नहीं तो अभी तक तुम्हारी पूजा में कोई कसर नहीं रहती।

२५६ गोपिया बार-बार योग का उपदेश दुहराने वाले उद्धव को फटकारती हुई कहती है :—मधुकर ! तुम हट जाओ यहाँ से। तुम्हें देखते ही हमारी देह और आँखों में आग लग जाती है। हटो यहाँ से और अपने इस योग को सभालकर अपने पास रख छोड़ो। यहाँ इसे क्यों डाल रहा है ? इसे यहां कौन लेने वाला है ? केवल तुम्हारी राजी रखने के लिए हम अपने मुँह के मीठे स्वाद को खारा नहीं कर सकते अर्थात् सरस सगुण को छोड़कर नीरस निर्गुण नहीं अपना सक्ते। हमारे अन्तस में तो बाल्यकाल से तो गिरिधर-धारी कृष्ण के नाम और गुण बस रहे हैं। यह हम बार बार कह चुकीं पर

तुम नहीं मान रहे। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम्हारी इन बातों को देख के आज हम सबों की एक राय है तुम जितने भी काले हो सब के सब खोटे हो।

२५७ गोपियाँ कृष्ण के वियोग में दुःखी होके, सब कुछ सहन करके भी अपने प्रेम को कृष्ण के प्रति रखने के लिए कटिबद्ध हैं। वे उद्धव को मधुप के सम्बोधन से पुकार के कहती हैं कि हे भ्रमर! परदेशी (पथिक) सदा बिराने ही हैं। उन्हें अपना समझना ही मूर्खता है। वे दसेकदिन अपने मतलब से भले ही टिक जायें पर अन्त को तो वे चले ही जाते हैं और ऐसे जाते हैं कि फिर कभी लौटते नहीं। भगवान् कृष्ण ने हमारे लिए पहले सिद्धि भेजी थी पर यह ज्ञान आगे आ खड़ा हुआ। भाव यह है कि मिलन रूप सिद्धि हमें पहले प्राप्त हुई थी। मथुरा जाके भी हमें वही सिद्धि देने की विचारते पर ज्ञान उससे पहले आके अड़ रहा जिससे सिद्धि (मिलन) में बाधा खड़ी हो गई। अब हमें वह जोग और कुब्जा को भोग दे रहा है अरे भाई ? उसका यही स्वभाव है (देखो नः—दीने दई गुलाब की इन डारिन वे फूल)। परन्तु हमें जिनको उनके सत्य भाव से प्रेम है वे उन नंदनंदन को क्यों कुछ कहना या करना चाहेंगी ? गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम ने भी सूर के प्रभु श्याम को अपना तन मन सर्वस्व अर्पित कर दिया। अब चाहे कुछ करें हम क्या कर सकती हैं।

२५८ गोपियाँ उद्धव से अबलाओं के लिए योग की अनुपयुक्तता का सविस्तृत वर्णन करती हुई कहती हैं—हे मधुकर। कहा तो तुम बड़े प्रवीण और ऐसे काइयाँ हो कि तीनों भुवनों की बातें जानते हो पर हम स्त्रियों के लिए इतने अज्ञ बन रहे हो। तुम इतना भी नहीं सोच सकते। जिन बालों में सोने के कटोरे भर भर के तेल और फुलेल लगाया उनके लिए अब तुम भस्म लगाने को बता रहे हो। क्या टेसू का खेल बना लिया है कि अभी सजाया सवारा और अभी तालाब में जा डुबोया। जिन बालों की वेणी (कबरी) कृष्ण अपने सुन्दर हाथों से गुह के बनाया करते थे उन्हीं पर जटाएं रखने के लिए कह रहे हो। अरे उद्धव। तुमसे कैसे कहते बना ? जिन कानों में ताटङ्क (तरौना) खुमी तथा अन्यान्य प्रकार के कर्णफूलादि आभूषण पहने उन्हीं में हम तुम काश्मीरी

स्फटिक की बालियाँ लटकाने को कहते हो और ढीला भगोला पहनने को कहते हो। जिन्होंने माथे पर तिलक, आँखों में काजल, तथा नासिका में बड़ी छोटी भाति-भाति की नथुनियाँ और लौंगें पहनी, उन सबको छोड़कर तुम ने हमारे लगाने के लिए यह सफेद राख की थैली खोलकर रखली है कि आओ और इसे लगा जाओ। जिस कठ में अच्छी-अच्छी मालाएँ मणियों के हार अनेक प्रकार के हीरे मोती और रत्न पहने उसी कठ के लिए तुम अपने योग का गहना सिंगी लाए हो? जिस मुख से प्रियतम से अच्छी-अच्छी बातें करते आए और हसे उसी से अब मौन रहकर हम कैसे जी सकेंगे। क्या प्राणायाम की लम्बी उच्छ्वासों मे हमारे प्राण घुट न जायेंगे? जिन शरीरों पर हमने सुन्दर वसन की चोलियाँ पहनी, उबटना करके घिस-घिस कर चन्दन लगाया और कमल और चाँद की छपी हुई साड़ियाँ पहनीं उन शरीरों पर अकेली ए गुदड़ी या कथरी ही अरे बेवकूफ! कैसे पहिनेंगी? उद्धव! बस अब हम ये निहोरे करनी हैं। आप यहाँ से उठकर चाल दिखाइये। सूर कहते हैं। गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हमारे कृष्ण जीवित रहें उन्हीं का मुख दर्श - भगवान ने चाहा तो हम करेंगी।

२५६ गोपिया योग को अपने लिए असगत समझकर उसे उसके लाने के कारण उद्धव से आक्षेप पूर्वक कहती हैं कि मधुकर! आप कहाँ से आए हैं। जब से यह दुष्ट मोहन को लिवा लेगया है तबसे हम तो उसका कोई भेद पता नहीं चला। इसलिए हमने तुम्हें श्रीकृष्ण का मित्र समझकर यह समझा था कि तुम हमसे श्रीकृष्ण के प्रत्यागमन की अवधि हमसे कहने आए हो। परन्तु तुम से बाते करने पर तो भाग्य ऐसा अनिश्चित सा लग रहा है कि पता नहीं अब नन्दनन्दन के दर्शन करायेगी ये किस्मत, या भाग्य स अब स्वामिता (प्रभुता) योगी होने के कारण सर्वोपरि स्थान मिलेगा जैसा कि उद्धव बता रहे हैं कुछ पता नहीं है। हे भ्रमर! तुम्हारे द्वारा बताए हुए आसन (योग के पद्मासन, शीर्षासन आदि) ध्यान (ब्रह्मचिन्तन) और प्राणायाम सभी चीजे सब प्रकार तन मन को अत्यन्त अच्छी लगने वाली हैं। पर ये सब चीजें बड़ी अद्भुत हैं। गुणी और लक्षण सम्पन्न लोगों के ही लिए यह योग-म अनुरूप है। तुम इन मुद्रा सिंगी भस्म और मृगछाला आदि योग के उपकरणों

को यहाँ बिना सोचे-समझे ले आए और ब्रज की युवतियों के शरीर को संवर्मत में सन्तप्त कर रहे हो। हमारे लिए ही यदि तुम्हें कुछ लाना था तो अलसी के पुष्प के समान-वर्ण वाले सूर के श्याम को जिनके मुख पर मुरली विराजमान है क्यों नहीं ले आए जिससे वास्तव में हमारा मनोविनोद सम्भव था।

इस पद में वाचक लुप्तोपमालंकार है।

२६० गोपियाँ नीरस निर्गुण की बात उद्धव के मुख से सुनकर संतप्त होकर उद्धव से व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! ये बातें कृष्ण ने कभी नहीं कही होंगी। ये बातें तो उनकी नई प्रेयसी द्वारा अपने प्रेम के बल पर गढ़ कर उन्हें सिखाई हुई प्रतीत होती हैं। ऐसी चुहल की बातें उसने ही अपनी पीठ के कुबड़े में संचित करके रख छोड़ी हैं। श्याम जैसा अच्छा प्रेम पाकर हाय सखी! आज वह हमें धूल दिखा रही है अर्थात् नीचा दिखाने के लिए यह भरम बता रही है। जो हो एक अच्छी हुई। शोभा-सिंधु नागर-शिरोमणि कृष्ण ने संसार की युवतियों को अपने स्मित से मोहित किया था। उस पक्के ठग को रूप के बदले ज्ञान पकड़ाकर उस कुब्जा ने भी खूब ठगा। जो हमारे साथ घटी की थी उसे निर्गुण देकर कुबरी ने पूरा कर लिया। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उसी चतुरा ने हमारे लिए योग दिया है क्योंकि आजकल उसके सुदिन हैं उसे जो भी करे सब अच्छा लगता है।

इस पद में उत्प्रेक्षा गम्य अलंकार है।

२६१ निर्गुण के लिए उद्धव के आग्रह करने पर व्यथित होकर गोपियाँ कहती हैं कि हे मधुकर! तू न जाने अब क्या और करना चाहता है? ये सब युवतियां तो इस दाहक सन्देश को सुनकर चित्र की पुत्तलिकाओं के समान निर्जीव हो गईं अब तू उनके प्राण-शून्य शरीर को क्यों जलाए जा रहा है? हमसे तेरी क्या दुश्मनी है जो कि हे भ्रमर! तू श्याम के विषय में बिलकुल अज्ञ-सा रहता है और निर्गुण के विषय में बार-बार कहे जा रहा है। तुझे नहीं मालूम कि श्याम हमारे मन को बिलकुल झाड़कर ले गए ज़रा सा भी यहाँ नहीं छोड़ गए। तू आकर उसके पुराल को फिर से मीड़ रहा है। जब श्रीकृष्ण जी मन का अन्तिम कन तक झाड़कर ले गए तो फिर दायँ चलाने

से इससे क्या हाथ लग सकेगा ? अब तो तू यों ही हवा को पकड़ रहा है। अब इसमें श्रम करके तू क्या पायेगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से मधुकर को लक्ष्य करके समझाती हैं। कि अरे भ्रमर ! अब तू अपने कोटे में आराम से पड़ रह। व्यर्थ का श्रम न कर। अन्यथा तू अपने किए का फल भोगेगा।

इस पद म अतिशयोक्ति रूपक और अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

२६२ गोपियाँ उद्धव से कृष्ण की रुखाई पर आश्चर्य प्रकट करके उपालम्भ देती हैं और अन्त मे पश्चातापपूर्वक उनको रुखाई पर भी उनके लिए शुभ कामनाएँ करतीं हुई कहती हैं कि मधुकर ! हमें यही सोच बार-बार सतप्त करता है कि पुरुष किस आशा और विश्वास के साथ अपनी सन्तति के लिए बढ़ने की कामना किया करता है। हमेशा मनाता रहता है कि मेरे लाल बड़े होंगे तो मुझे ऐसा सुख देंगे इत्यादि। पर जब वे बड़े हो जाते हैं तो उस विश्वास और आशा को कहा तक पूरा करते हैं यह इन कृष्ण के निदर्शन से जान लो। श्रीकृष्ण को देखके समझ लो कि बच्चे बड़े होके अपने माता पिताओं को क्या सुख देते हैं। पिता माता, पुत्र की उत्पत्ति तथा बढ़ती के लिये विविध प्रकार के अनुष्ठान, व्रत नियम यज्ञ तप तथा दान आदि करते हैं। उनके मोह की बात बड़ी कठिन है जिसके कारण वे इतना कष्ट भोगते हैं और किसी न किसी प्रकार जब उनका पुत्र कुशलतापूर्वक बड़ा हो जाता है तो फिर अब कुछ न पूछो। कोयल की जैसी प्रसिद्धि है वैसी ही प्रीति उस पुत्र की भी संसार मे प्रगट हो जाती है। कोयल के बच्चे जिस प्रकार अपने स्वार्थ रहने तक कौए को प्रेम करते हैं और बड़े होने पर जब स्वार्थ निकल जाता है तो फिर कौए के लिए जरा भी कष्ट सहन नहीं करते। वे नहीं जानते कि उनके वायस बन्धु कौन गली के बधुआ हैं। यही तो श्रीकृष्ण का हाल है। यहाँ नद यशोदा ने कितनी शुभकामनाओं के साथ कितनी मनौती मना के और कितने कष्ट सह के उन्हें पाला पोसा। बेचारों की क्या आशाएँ थीं। पर हाय रे मनुष्य के मनोरथ। तेरी भित्ति कितनी अस्थिर है। श्रीकृष्ण बड़े होके यहाँ आने का नाम तक नहीं लेते। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जो कुछ भी हो हम तो भगवान से यही मनाती हैं कि जहाँ

रहें राज्य करें और करोड़ों दायित्वों को सँभालने में समर्थ हो। हमारा यही आशीष है कि नहाते तक में उनका कभी बाल तक न टूटे। भगवान् करें वे सर्वाङ्ग सकुशल रहें।

इस पद में अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

२६३ कोई गोपी वर्तमान वियोग से व्यथित होके श्रीकृष्ण से प्रेम करके पश्चात्ताप करती हुई उद्धव से अपनी जागरण और उन्माद अवस्था का वर्णन कर रही है। वह कहती है कि मधुकर! मैं तो प्रेम करके पछता रही हूँ। मैं तो यह समझती थी कि ऐसी ही कटेगी पर हाय उन्होंने मन में कुछ और ही ठान रक्खी थी! अरे! काले शरीर वालों का विश्वास ही क्या है। उनके बोल ही मीठे होते हैं जिनसे वे दूसरों को मोह लेते हैं। देखो न। हमारे लिये तो हजरत योग का संदेश लिख २ के भेज रहे हैं और खुद चैन से राजधानी में भोग कर रहे हैं। हा! आज मेरी शय्या सूनी है। रात रात भर मुझे तड़पते ही बीतती है। बात यह है कि सूर के स्वामी श्याम प्रियतम के बिछुड़ जाने से मेरी मति नष्ट होगई है। (इसीलिए तो यह जागरण और जहाँ तहाँ इन बातों को बकने का उन्माद हो रहा है।)

२६४ गोपियाँ कृष्ण के दोषों की चर्चा करके उद्धव से कहती हैं कि सब दोषों से युक्त होते हुए भी वे हमारे गले का हार हैं। तुम्हारे निर्गुण की अपेक्षा वे कहीं अधिक हमें प्यारे हैं। वे कहती हैं कि मधुकर जैसों की संगति में रहके ही ऐसे निर्मोही हो गये कि अन्त में अपने वंश की ओर ही झुक रहे। जिस प्रकार भ्रमर इधर उधर रंगरेलियाँ करके अपने घर बाँस में आ रहता है ठीक इसी तरह कृष्ण ने भी उसके साथ रह के यह सीख लिया कि इधर उधर रंगरेलियां करके अपने वंश में जा घुसे। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति' अर्थात् गुण और दोष संसर्ग से उत्पन्न होते हैं। ब्रजसुन्दरी बिना यह बात समझे आज भी उसी मुख कमल को अपनाने का आग्रह कर रही हैं। बेचारी मृग की गृहिणी हरिणी व्याध के (वेणु) नाद का रहस्य क्या जानती है! वह तो उस पर मुग्ध होके अपनी सुध बुध खोके अचेत हो जाती है फिर उसके लिए व्याध की सब बातें एक समान हैं जैसे उसका अलापना, तान लय से गाना नाचना और घात लगने पर

डालना। हरि ने भी इस ब्रज में रहके हमसे एक जुआ खेला और अवधि को दाव पर रख के हमें जीत के यहाँ से चलते बने। पहले क्या मालूम था कि वे हजरत ऐसे निकलेंगे। यहाँ रहके जिसे चाहा उसी चचल कामिनी को अपने घर में डाल लिया। वे बेचारी क्या जानती थीं कि ये रगरेलियाँ चार दिन की हैं। खैर यह भी हुआ वे मथुरा गए वहाँ जो कुछ किया वह भी सब जानते हैं। मामा को मार कर बड़ा हीन कार्य ही किया। यह कार्य तो उनका ऐसा है जैसा कि किसी व्यक्ति का शराब के नशे में मस्त हो कर ऊटपटाँग काम होता है। होश में भला कौन अपने सगों को मारेगा। यह सब कुछ होते हुए भी उद्धव! हमें न जाने क्यों इन सब अवगुणों से भरे पूरे भी सूर के स्वामी श्याम निर्गुण से कहीं अधिक प्रिय लगते हैं। (मिलाइए—With all the faults I love thee still.)

इस पद में अन्योक्ति और श्लेष अलङ्कार है।

२६५ गोपियाँ योग का सदेश सुनके उद्धव को फटकारती हुई कहती हैं कि मधुकर! तू यहाँ से दूर हट जा। बड़ा आया है! कहीं का योग सिखाने, तू नितात क्रूर है। जिस अतस् म सदा सर्वांशत सुन्दर घनश्याम व्यापक रहते हैं। उसे छोड़के हम शून्य की आराधना क्यों करें! क्या अपना मूल भी खो देने के लिये? अर्थात् जो कुछ अपनी गाठ की है उसे हम खोने को तैयार नहीं है। इस व्रज में सभी गोपाल के उपासक या व्रती हैं यहाँ धूल लगाने को कोई तैयार नहीं है। जो अपने नियम व्रत सदा पालन करते हैं वे ही शूर वीर कहलाते हैं। (मिलाइए व्रताभिरक्षा हि सतामलक्रिया। भारवि)।

२६६ गोपियाँ उद्धव से अपनी वियोग व्यथा का वर्णन करके उसका एकमात्र प्रतीकार श्रीकृष्ण के दर्शन का बताती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! तुम हमारी आँखों की बात सुनो। हमने अगों से उन्हें रोका (या हमने सब अगों को तो रोक लिया परन्तु यह अर्थ इतना अच्छा नहीं जचता क्योंकि आगे इसी पद में वर्णन किया गया है कि सभी अग तो श्रीकृष्ण के प्रेम का आनद अब भी उठा रहे हैं।) परतु ये नेत्र बार २ उड़के वहीं चले जाते हैं। जिस प्रकार कबूतर वियोग से व्याकुल होके अपने घर को छोड़ के इधर उधर भटकता फिरता है, इसी प्रकार ये हमारी आँखें भी आकुल होके चली जाती हैं और

श्याम को देखे बिना फिर लौटती ही नहीं। हमने इन्हें पलकों के किवाड़ों में बन्द करके घूँघट की ओट में रख छोड़ा परन्तु हमारी दीर्घश्वास निकलकर उधर ही चले जाते हैं और काम के उद्गार निकाल देते हैं। श्रवण भी कृष्ण के यश को सुनकर धैर्य रख लेते हैं और मन भी उनका ध्यान धारण करके किसी न किसी प्रकार सन्तुष्ट हो लेता है। हमारी वाणी उनका नाम रटती रहती है। इस प्रकार प्रायः सभी इन्द्रियों के लिए वियोग में भी कुछ न कुछ अवलम्ब है परन्तु इन बेचारों को दर्शनों की हानि है अर्थात् इन्हें इनका भोग नहीं मिलता। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यद्यपि यह ठीक है कि शरीर में इन्द्रियाँ जो कुछ भोग करती हैं उसका आनन्द सभी इन्द्रियों में बँट जाता है तथापि हरि के दर्शन के बिना ये नेत्र पल भर भी चैन नहीं लेने देते।

इस पद में उपमा और रूपक अलंकार हैं।

२६७ गोपियाँ उद्धव से प्रेमोपालम्भ देके श्रीकृष्ण को लाने की प्रार्थना करती हुई कहती हैं—कि हे मधुकर! यदि श्रीकृष्ण कहना मानलें तो उन्हें फिर से ले आना। उन श्याम सुन्दर ने राज्य-कार्य में चित्त लगाया यह तो बड़ा अच्छा किया। पर समझ में नहीं आता कि उन्होंने गोकुल को क्यों भुला दिया? जब तक वे इस घोष (ग्वालों की बस्ती) में रहे हम लोगों ने सदा उनकी सेवा की कहीं एक बार उन्हें उलूखल से बाँध दिया मालूम होता है कि उन्होंने हमारे इसी एक अपराध को हृदय में रख लिया और नाराज होकर यहाँ आना बन्द कर दिया। व्रजनायक श्रीकृष्ण को राजकुमारियाँ तो अनेक मिल जायँगी परन्तु करोड़ों प्रयत्न करने पर भी नन्द से पिता और यशोदा सी मा कहाँ से मिल सकेंगी? गोवर्धन तथा ये ग्वालों की टोलियाँ और ताजा मक्खन भी उन्हें कैसे मिल सकेगा? सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! अब भाई यही काम करो अर्थात् कुछ ऐसा समझाओ और श्रीकृष्ण को फिर से यहाँ लिवा लाओ।

यह पद ज्यों का त्यों पीछे (१६२) आ चुका है। केवल क्रियाओं के कुछ रूप परिवर्तित हैं। वहाँ पर 'ऊधो! यह हरि कहा करयौ? इस प्रश्न से पद का प्रारम्भ किया गया है। अर्थ प्रायः एक सा ही है।

२६८ गोपियाँ उद्धव से वियोग व्यथा कहकर उसके एकमात्र प्रतीकार

श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए विनय कर रही हैं। वे कहती हैं कि हे मधुकर! अब चलचोर कृष्ण के आने में ही भलाई है। आपके दुर्लभ दर्शन हमारे लिए सुलभ हो गए पर पता नहीं आप क्यों पराई पीर की उपेक्षा कर रहे हैं। हे उद्धव! आपसे एक प्रार्थना है (हम बड़े विचार से आपसे निवेदन कर रही हैं) कि आप उनसे पता लगाना कि उन प्रियतम का हम पर स्नेह है कि नहीं? हे मधुकर! अब हम तुमसे प्रीति के रहस्य को क्या वर्णन करें वह कहने योग्य है ही नहीं। बस इतना संकेत पर्याप्त समझो कि प्रेम की कुछ रीति ऐसी न्यारी है कि जिसे तुम मन में ही अनुभव कर सकते हो। दलीलों के बल पर उसकी अनोखी रीतियों की परख नहीं की जा सकती। हमारे नयनों को प्रेम की पीर के कारण नींद नहीं पड़ती, रातदिन विरह का रोग देह में बढ़ता ही जाता है। परन्तु उधर नदनन्दन की कठोरता को देखो उन्होंने हमसे प्रेम जोड़ा और जोड़ के फिर उसे तोड़ दिया। अरे भ्रमर! अब हम तुमसे अपने हृदय की अन्य गुप्त वार्ता को क्या कहें। अर्थात् तुम उन्हें क्या समझ सकते हो। जो हो यह नहीं समझ में आता कि सूर के स्वामी श्याम के लिए यह कहाँ तक उचित है कि वे हम अबलाओं की हत्या करने पर ही उतारू हो रहे हैं।

२६६ गोपियाँ कृष्ण की कपाई देख के उद्धव से उनके प्रेम का उलाहना देती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! कृष्ण ने इतना प्रेम करके भी हमें यों भुला दिया सो यह उनका दोष नहीं। यह तो उनके काले रंग का दोष है। कालों की यही रीति है। वे बनावटी प्रेम जताकर खूब मन लगा के पराये सर्वस्व का अपहरण कर लेते हैं। भौरे को देखो। रात भर कमल की पखड़ियों में बंदी रह के उससे प्रेम जताता रहता है पर सवेरे सूर्योदय होते ही अन्यत्र उड़ जाता है और फिर उससे परिचय भी नहीं दिखाता। इसी प्रकार साँप भले ही माँ बाप के समान बड़ी सावधानी से पिटारे में रखकर पालो पर अवकाश पाने पर वह अपने वंश की करतूत नहीं छोड़ता और उन्हें (पालकों को) काटके भाग जाता है। इसी प्रकार कोकिल कौए और हिरण श्याम की चाण चाण हमें याद कराते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि पर हम क्या करें हमें तो रात दिन उन स्वामी का मुख देखना ही भाता

है और कुछ भाता ही नहीं।

इस पद में उपमा तथा स्मरण अलकार है।

२७० गोपियाँ उद्धव से निर्गुणोपदेश के लिए मना करके श्रीकृष्ण के दर्शन कराने का अनुरोध करती हुई कहती है—हे मधुकर! तुम बारबार यही बात क्यों कहे जा रहे हो? वही निर्गुण के गुण क्यों गाए जा रहे हो? यह निर्गुण गाथा नगर नारियों को रुचिकर होगी अतः उन्हीं को जाकर सुनाओ जहाँ तुम्हें इसके लिए इनाम मिलेगा। तुम नन्दनन्दन के मर्म से भी तो परिचित हो। अन्य कोई प्रसग क्यों नहीं चलाते? हे भ्रमर! हम कमलिनी के समान भोली-भाली नहीं हैं जिन्हें तुम चतुरता दिखाकर मना रहे हो। भ्रमर! तुम हमारे पैर न छुओ इससे हमारा विरह सन्ताप और अधिक बढ़ता है। (विशेष द्रष्टव्य—भौंरा उड़-उड़कर स्वभावतः गोपियों के पैरों पर गिर जाता है। इसी पर ये व्यंगोक्तियाँ गढ़ी गई हैं। देखिए मधुप कितवबन्धो! मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमाला कुंकुमश्मश्रुभिनः। तथा—विसृज शिरसि पाद वेद्म्यहं चाटुकारै रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्। इत्यादि। श्रीमद्भागवत्—१०-४७ १४ : १६)। हम लोग कुब्जा के समान सीधी-सादी नहीं हैं कि जिनके सामने यह चतुरता दिखा रहे हो। तुम चाहे जितना मनाओ पर हम नहीं मानेंगी। उद्धव! तुम तो बड़े ही विचित्र हो हमें भी बच्चों की तरह गुड़ दिखाकर बहला रहे हो सो हम तुम्हारे बहकावे में नहीं आ सकती हैं। (मिलाइये—पूत पियारा पिता का गोहन लागा धाय। हाथ मिठाई ताहि दै आपुन गया भुलाय॥ कबीर) उद्धव! हम किसी तरह भुलावे में नहीं आ सकतीं हमारा तो यही आग्रह है जो अटल है किसी न किसी प्रकार सूर के स्वामी रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण को हमसे लाकर मिला दो। इसके बिना और किसी बात पर हमारा आपसे समझौता नहीं हो सकता।

इस पद में मालोपमा अलकार है।

२७१ गोपियों के बार-बार अनुरोध करने पर भी जब उद्धव निर्गुणोपदेश का आग्रह दिखाते हैं तो गोपियाँ उनके रूप रङ्ग पर कटाक्ष करके अपनी विरह

व्यथा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि मधुकर ! तुम्हारा मुँह पीला किस लिये है ? (भौंरे के सिर पर पीले दाग को देखकर यह प्रश्न किया गया है)। इस प्रश्न का उत्तर स्वय देती हुई गोपियाँ तर्कना करती हैं कि तुम जो युवतियों को दु:ख देते फिरते हो इसके कारण तुम्हें पाडु रोग हो गया है। वह पाँडु रोग तुम्हारे शरीर में भीतर हुआ है जिसके कुछ ही लक्षण अभी ऊपर प्रकट हुए हैं। तुम्हारा तन मन मधुरिमामय श्याम के वर्ण से मिलता है। देखने से मालूम होता है कि तुम भी रसिक होगे पर बातें सुनकर ऐसी निराशा होती है जैसी हमें आजकल उजड़े हुए अधकारपूर्ण सकेत स्थल को देखकर होती है। हा ! एक दिन था कि इस स्थल के पास बैठकर कौआ भी प्रियतम के पीयूष से मधुर वचनों के घूँट पीता था पर आज देखो वह कौआ उसी रस क्षेत्र (सकेतस्थल) में कड़ुई और घृणित काय काय कर रहा है जो हमें बाणों के समान व्यथा-दायक प्रतीत होती है। क्या ब्रज के बाग का वसन्त का अत देने में ही उनकी (कृष्ण की) चतुरता देखकर लोग उन्हें धर्म सेतु या धर्म पालक कहा करते हैं ? जो लोग यहाँ रगरेलियाँ करते थे उनके भाग्य में अब योग बाँट पड़ा है जिसके शिक्षक और तो और भ्रमर महाशय तक यहाँ आकर प्रवचन कर रहे हैं। सची बात तो यह है कि उनके नेत्रों के सुन्दर कटाक्षों से जब तक छुटकारा नहीं होता (अर्थात् जब तक उनके कटाक्षों से जाग्रत हुई पीर नहीं जाती) तब तक हम इस ससार में अचेत ही जी रहे हैं। हमारा मन वचन और कर्म से सर्वात्मना केवल श्यामसुन्दर से ही प्यार है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हम अधिक क्या कहें ? जो कुछ भी हमारे मन में है वह उन्हें सब मालूम है।

इस पद में उत्प्रेक्षा, उपमा एव रूपक अलकार हैं।

२७२ गोपियाँ उद्धव से मधुकर सबोधन करके उसकी वचन और कर्म की भिन्नता पर आक्षेप करती हुई व्यग्यपूर्वक कहती हैं कि हे मधुकर ! तू शराब के नशे में मत्त हुआ इधर उधर घूम रहा है। जो दिल में आता उसे बके जा रहा है। तुझे लज्जा नहीं आती ? तू सीधी सादी (शिष्ट) बातें क्यों नहीं करता ? शराब के कारण बार बार तेरा शरीर चक्कर खा रहा है। लज्जा से रहित यहाँ तक हो गया कि सबों के सामने लताओं के कली रूपी मुखों को

चूम रहा है। तुझे अपने मन तक का होश नहीं वह किसी और ही जगह है। (अर्थात् तेरा मन कहीं और तू कहीं और है) पहले तू अपना मन सँभाल ले तब हमसे बातें कर। देख तेरे मुँह पर पराग की पीक लगी हुई है इसे धो क्यों नहीं डालता। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि अब उनसे क्या कहें जिन्होंने अपनी सब लज्जा धो डाली है। अर्थात् वेश्याओं से बात करना ठीक नहीं।

इस पद में रूपक अलकार है।

२७३ गोपियाँ योग से चिढ़कर उद्धव और कृष्ण को जली-कटी सुनाती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! ये लोग शरीर और मन दोनों से काले हैं। ये काले अङ्ग के लोग श्वेत सिद्धता के अङ्ग को कभी नहीं छू पाते। इन लोगों को तो कपट कुंभ (धोखा देने वाला घड़ा) समझो जो जहर से भरे हुए हैं केवल दिखाने के लिए मुँह पर दूध रख रक्खा है। (मिलाइए विषकुम्भपयो-मुखम्)। इनका बाह्य वेष बड़ा मोहक दिखाई पड़ता है पर अन्दर मन में ये वचना लिए रहते हैं। अब आप (उद्धव) ब्रज में ज्ञान का जहर देकर हमारे प्राण लेने के लिए चले हैं। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव और कृष्ण भला कैसे भले कहे जा सकते हैं जिनका कि रूप रङ्ग, वचन और कार्य सभी काले है।

इस पद में रूपक अलकार है।

२७४ गोपियाँ भ्रमर को लक्ष्य करके उद्धव और कृष्ण की कथनी और करनी की भिन्नता पर व्यग्य करती हुई कहती है कि मधुकर! तुम लोग बड़े ही रस के लोभी हो। अपन तो सदा कमल की कली में निवास करते हैं और हमें योग सिखलाते हैं अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए ब्रज में चक्कर काटते है क्षण भर के लिए भी व्याकुलता नहीं सहन करते। परन्तु फूल समाप्त हो जाने पर फिर फूलों के जरा भी पास नहीं जाते। तुम बड़े चचल हो और सर्वाङ्गत चार हो तुम्हारी बातों पर कैसे विश्वास किया जाय? सूरदास कहते है कि विधाता को धन्य है कि उसने भौंरे को और श्याम को एकसा शरीर दिया दोनों के ही एक से रङ्ग और एकसे शरीर हैं।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है।

२७५ गोपियाँ उद्धव से अपनी वियोग व्यथा से छुटकारा पाने के लिए निर्गुण को दूर रखके श्याम रूप औषध देने की प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि मधुकर ! हम किससे समझावें कहें कि हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गों ने श्यामने गुण ग्रहण किए हुए हैं फिर हम निर्गुण जिससे ग्रहण करवायें । कठोर वाणों के समान जब वे कुटिल कटाक्ष लगे थे तब तो नहीं मालूम पड़ा पर बाद में जब पूट ने पीछे की ओर खटके तब पता चला कि इतने गहरे चुभे हैं । उन बाणों के गहरे प्रभाव के कारण ही हम चक्कर खाते रहते हैं और बार २ उन्हीं के सम्मुख जाते हैं । यद्यपि प्रहारों से जर्जर होकर टुकड़े २ होगये हैं फिर भी पीछे को पैर नहीं रखते । रणभूमि में कबध के समान बार२ उठके सामने जाके ही भिड़ते हैं । इस प्रकार से उन कटाक्षों के प्रहार से अब ये अबलाएँ मृतप्राय हैं। इसलिये सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम इस अवस्था में श्याम रूपी अमृत लाके हमें प्राण दान क्यों नहीं देते ?

इस पद में साङ्ग रूपक तथा उपमालकार है ।

२७६ गोपियाँ उद्धव से वियोग व्यथा के प्रतीकार श्याम के दर्शन माग रही हैं । वे कहती हैं कि हे मधुप ! शरीर से ही नहीं तुम चित्त के भी काले प्रतीत होते हो । तुम यमुना के उस पार रहते हो और सुनते हैं कि तुम भी श्याम के ही मित्र हो । अन्य जो काले हैं जैसे भ्रमर, केश, साप और कोयल उनके समान तुम भी कुछ अवधि तक ही साथ देते हो । बाद में फिर साथ छोड़के चलते बनते हो । जिस प्रकार ये अपनी मर्जी के राजा हैं जब तक उनकी मौज रही वे रहे और बाद में चल दिये तुम भी उन्हीं के अनुसार चलने वाले हो । हरि भी कपटी कुटिल और निठुर हैं । वे हमें वियोग दुःख में टालके दूर चले गये । न जाने अब वे फिर कब एक बार के ही लिये सही आके नयनों की दर्शनाभिलाषा को तृप्त करेंगे ? उनकी बात मानना अपना सत्यानाश करना है । वे तो राह चलते चित्त को चुराते हैं ऐसे वज्र राहजनी करने वाले हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उनका मन सेवकों को पृथक करके न जाने कैसे तृप्त होता होगा ।

इस पद में उपमा अलकार है ।

२७७ गोपियाँ उद्धव के योग को हेय बताती हुई कहती हैं कि योग भेजके

वाले हमारे प्रियतम नहीं हैं। इसलिये यह चिट्ठी किसी और की है हमारी नहीं है। लो उन्हीं को वापिस दे देना। इसी भाव को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि हे मधुकर ! मथुरा कौन गया है ? तुम किसके कहने से संदेश लाए हो ? किसने तुम्हें यह चिट्ठी लिखके दी है ? वसुदेव और देवकी के पुत्र कौन है ? यदुकुल प्रभाकर कौन है ? हमारी इन महाशय से जान पहिचान नहीं है। लो यह कागज उन्हें वापिस दे देना, शायद तुम गलती से यहाँ ले आये हो। हमारी जान पहिचान तो गोपीनाथ राधावल्लभ और नंद यशोदा के प्रिय लाल श्रीकृष्ण से है। वे यहाँ गोकुल में प्रतिदिन प्रेम का दान लिया करते थे। एक नयी ही पद्धति उन्होंने गोकुल में चलाई थी। आप तो बड़े चतुर हैं पर फिर भी उद्धव ! कुछ का कुछ कह रहे हो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि अब बात हमारी समझ में आई। आप राह से भटक गए हैं इसीलिये व्याकुल होके पागलों की भांति बातें कर रहे हैं।

२७८ गोपियाँ अपने विरह की व्यापकता का वर्णन करती हुई उद्धव से निवेदन करती हैं कि उद्धव ! देख रहे हो कि यमुना अत्यन्त काली है। पथिक ! तुम जाके कृष्ण से कह देना कि और तो और यमुना भी तुम्हारे विरह ज्वर के संताप से काली पड़ गई है। मानो यह तड़प के मारे पलंग से धरती पर गिर पड़ी है और ये उठती हुई तरंगें ही मानो इसके शरीर की तड़पन है। यह किनारे पर पड़ी हुई सिकता ही उपचार (प्रतीकार-भेषज) का चूर्ण है और यह धारा उसके प्रस्वेद के प्रवाह की धाराएँ हैं। ये जो कुश कास दिखाई देते हैं ये ही मानो उसके बिखरे हुये केशपाश हैं और ये कीचड़ उसकी काजल सी चीकट साड़ी है। यह चारों ओर उड़ता हुआ भौंरा मानों उसका मति-भ्रम है। देखो अपने दु:खपूर्ण अङ्गों को लिए चारों ओर व्याकुल भटक रही है। यह देखो रात दिन चकई की रट के बहाने अपने प्रलाप को व्यक्त कर रही है। तुम इस समता को क्यों नहीं स्वीकार करते। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि देखो जो इस यमुना की दशा है वही हमारी भी दशा है।

इस पद में उत्प्रेक्षा (वस्तु और हेतु), रूपक, तथा अपह्नुति अलङ्कार है।

२७९ गोपियाँ कृष्ण की रुखाई देख के उद्धव से कह रही हैं कि वे मथुरा

जावे राजा हो गये हैं। वे अब गोपीनाथ कृष्ण नहीं रह गए वे तो बड़े आदमी हो गये हैं—वे तो सुना है कि मुरली को देख के भी लजाते हैं। यदि कोई प्रसगवश मुरली की चर्चा चलाता है या लाके दिखाता है तो वे सिंहासन पर बैठे हुए दूर से ही मुसकरा देते हैं। महलों की दीवारों पर चित्रित गैयों की ओर भी देखने में सकोच करते हैं। यदि मयूरपख का पखा भी सामने आ जाता है तो अन्यान्य बातें करके बहलाने लगते है। यदि वहाँ कोई हमारी (गोपियों की) चर्चा चलाता है तो उसके चलते ही सहम जाते है। सूरदास कहते है कि गोपिया उद्धव से कहती है कि भला हुआ उन्होंने व्रज को यों भुला दिया पर पता नहीं इसे वे भुला कैसे सकते हैं? यदि व्रज को और उसकी वस्तुओं से इतनी शर्म आने लगी तो पता नहीं वे दूध दही कैसे और क्यों खाते है?

२८० गोपियाँ अपनी वियोग व्यथा की तीव्रता और श्रीकृष्ण की रुखाई देखकर उसका कारण अनुमान करती हुई कहती हैं कि शायद उन देशों (जगहों) में जहाँ कृष्ण रहते हैं बादल नहीं गरजते हैं। यदि गरजते तो वर्षा पुरानी प्रीति को अवश्य उद्दीप्त कर देती और वे इस प्रकार रूखे न बन पाते। शायद भगवान् कृष्ण ने इन्द्र को सख्ती से मना कर दिया है ताकि वह वहाँ पयोदों को न उमड़ने दे और उनकी गरज उनके प्रेम को उद्दीप्त न कर सके। शायद वहाँ मेंढकों को नागों ने खाकर निश्शेष कर दिया है जिससे वर्षागमन की सूचना ही नहीं होती। शायद वहाँ के देश का मार्ग बक पक्षियों ने सर्वथा त्याग दिया और शायद वहाँ मूसलाधार वर्षा बरस के आस पास की धरा को पानी में सराबोर नहीं करती। शायद उस देश के मयूर चातक और कोकिलों को वधिकों ने मार के निश्शेष कर दिया होगा ताकि उनकी उन्मादक कूक नहीं सुनाई पड़ती होगी इसी से वे कृष्ण इस तरह रूखे हैं। शायद उस देश में स्त्रियाँ हर्ष निर्भर होकर मल्हार के गीत गाती हुई कभी झूलती भी नहीं होंगी उनकी उत्तेजक स्वर लहरी के अभाव में ही वे अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि क्या करें कोई यात्री भी श्रीकृष्ण की ओर नहीं जाते जिनके द्वारा हम उनके लिए सन्देश भिजवा देतीं।

इस पद में सन्देह अलकार है।

२८१ गोपियाँ विरहावस्था में उद्दीपक वर्षाकाल के आगमन पर तर्कना करती हुई आपस में कहती हैं—सखी ! मैं एक नई खबर सुनके आरही हू । वह खबर यह है कि इस सम्पूर्ण ब्रजभूमि को कामदेव ने देवराज इन्द्र से जागीर के रूप में पालिया है । ये बादल उसी के दूत हैं और ये बकपंक्ति उनके सिर की पगड़ी है तथा ये सुन्दर बिजलियाँ पताकाएं हैं । यह देखो कोकिल और चातक उच्च स्वर से बोल रहे हैं मानो वे सब मिलकर इस जागीर के मालिक कामदेव की दुहाई दे रहे हैं । मेंढक, मयूर, चकोर और तोते भी बोल रहे हैं फूलों की सुगन्धित सुन्दर हवा भी चल रही है सुना है कि कामदेव अपने सब साम धाम के साथ सिपाही प्यादे लेके अब वृन्दावन में ही रहना चाहते हैं । यदि ऐसा है तो हमारा विधाता से क्या वश चल सकता है ? जब कुँवर कन्हैया यहाँ रहते थे तब तो यहाँ की सीमा भी कोई न दबा सका पर अब सुनो सूरदास के स्वामी श्याम रूप केहरी की अनुपस्थिति में ये ठकुरायत (हुकूमत) करेंगे ।

इस पद में उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार है ।

२८२ उद्दीपक वर्षा के आगमन पर गोपियों का विरह और भी अधिक हो जाता है । इसलिए वे उमड़े हुए घनों को देखने कृष्ण के यों भूल जाने पर उलाहना देती हुई कहती हैं—सखि ! ये बादल भी बरसने के लिए आ गए ये भी तो कहीं अच्छे हैं । हे नन्दनन्दन ! देखो ये बादल भी आने की अवधि जानके गरजते हुए आकाश में छाने लगे । हे सखि ! सुना जाता है कि ये स्वर्ग लोक में रहते हैं और दूसरे के नौकर हैं (मिलाइये—जानामिला प्रकृति पुरुषकामरूप मघोन—मेघदूत) । परन्तु इतनी दूर रहते हुए तथा पराई सेवा में रहते हुए भी ये चातक कुल की व्यथा को समझ के उतनी दूर से यहाँ आ पहुंचे ! इन्होंने सूखे पेड़ों को हरा कर दिया और वेलें भी प्रसन्न होकर उन से मिलने लग गईं । इन्होंने मरे हुए मेंढकों को फिर से जिला दिया । यहाँ तहाँ घने जल और घास देखकर पक्षीगण भी प्रसन्न हो रहे हैं । सखि ! हमें तो अपनी कोई गलती समझ नहीं पड़ती फिर भी श्रीकृष्ण ने बहुत दिन लगा दिए । सूरदास कहते हैं कि गोपी कहती हैं कि करुणामय स्वामी ने मथुरा रह कर हमें ऐसा भुला दिया कि वर्षागमन में भी नहीं आए ।

यहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा गम्य है ।

२८३ श्री कृष्ण के वियोग में राह देखते देखते वर्षा आ गई । आषाढ़ बीता और सावन लग गया । चारों ओर की रमणीयता ने विरहानल को और भी तीव्र कर दिया । इस पद में सखियाँ कामोद्दीपक श्रावण के मास को बिताने का आयोजन सोचती हुई कह रही हैं—वियोग की व्यथा से अत्यन्त पीड़ित हम गोविन्द के बिना श्रावण के दिन कैसे बितावेंगी ? चारों ओर पृथ्वी हरि हो गई तालाबों म पानी भर गया । अब तो मोहन के आने की राह भी मिट गई । अर्थात् अभी तक तो उन राहों को ही देखकर ये नेत्र बहलाए जाते थे पर अब वह भी साधन नहीं रहा । सावन म जिधर देखो उधर ही सुन्दर वस्त्रों का धारण करके सौभाग्यवती स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड गाने और झूलने के लिए प्रस्तुत दिखाई देते हैं । चारों ओर से घुमड़ घुमड़ के घनघोर बादल गरज रहे हैं । कामदेव धनुष लेकर इधर उधर दौड़ रहा है और मेंढक और मयूर शोर कर रहे है तथा चातक और कोयल भी रात्रि के भय हाकर काम कर रहे हैं । सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ व्यथित होकर कहती हैं कि हाय ! अब ये रातें कैसे कटेंगी जब कि एक एक रात में तीस तीस घड़ियाँ होती हैं । यहाँ ऐसी विकट परिस्थिति मे एक एक पल काटना भी दूभर हो रहा है फिर घड़ी की तो बड़ी बात है और वह घड़ी भी एक नहीं तीस ! वास्तव में बड़ी विषम समस्या है ।

इस पद में उत्प्रेक्षा गम्य है ।

२८४ विरह व्यथा में मयूर की केका को अत्यन्त दाहक बनाती हुई गोपियाँ परस्पर कह रही हैं—'हाय री मा !' मोर भी तो हमारे पिसट (बैर) पड़े हैं बादलों की गरज सुनकर ये मना करने पर भी नहीं मानते प्रत्युत उत्तरोत्तर और अधिक ही कूकते हैं । मोहन ने इन्हें इकट्ठा करके इनके पर्खों को अपने शीश पर धारण कर लिया था इसीलिए ये शायद हमें मारते हैं । ढीठ ता इन्हें कृष्ण ने ही कर दिया है । अरी सखी ! न जाने इसमें इन्हें क्या मिल जाता है कि हमसे सदा अगड़े रहते हैं । सूरदास कहते है कि गोपियाँ कहती हैं कि श्रीकृष्ण तो अब परदेश चले गये पर ये वन से टलके न गए । भाव- यह है कि इन्हें यदि उनसे बदला लेना था तो उन्हें भी वहीं जाकर उनसे

भेड़ना था न कि यहाँ रहके हमें दुःख देना चाहिए । पर ये उनसे न जीतकर हमें यहाँ तङ्ग करते रहते है । ससम पै रिसानी लड़की को मारे वाली बात कर रहे हैं ये मोर ।

इस पद में प्रत्यनीक अलकार है ।

२८५ वियोग व्यथा में कृष्ण के व्यवहार पर कटाक्ष करने वाली किसी गोपी पर आक्षेप करती हुई दूसरी अपने को ही दोषी बताकर बड़ी दीनता से उद्धव से प्राणान्तक व्यथाकारी योग के विषय में चुप रहने का अनुरोध करती हुई कहती है कि सखी ! हरि को दोष मत दो । वास्तव में हमारा स्नेह ही बना-बटो हैं कि जिसके कारण हम इतना दुःख पा रही हैं । देखो, आज हम (जीवित रहके या साक्षात्) इन नेत्रों से अपने घरको सूना देखती है, तथापि श्रीकृष्ण का विरह शूल हमारे हृदय म बिद्ध होके एक बड़ा छेद नहीं कर देता अर्थात् श्रीकृष्ण के दुःखदायी हृदय से हमारा हृदय फट नहीं जाता । उद्धव ! अब तुम गड़े मुर्दे उखाड़के (पुरानी बात कह कह के) हमारे प्राण न लो । सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यदि तुम नहीं मानोगे तो हम कहे देती है कि यह हमारा शरीर निजाव हो जायगा ।

इस पद में रूपक अलकार है ।

२८६ कृष्ण के द्वारिका चले जाने पर गोपियाँ स्वय अपने किये पर पश्चा-ताप पूर्वक व्यग्य करती हुई व्यथित होकर आपस में कहती है कि लो परदेशी के प्रेम की कलई खुल गई । तब तुम बड़ी कन्हैया-कन्हैया पुकारती हुई हर्ष से फूला करती थीं लो अब उसका परिणाम भुगतो । तुमने अपने ही हाथों दूसरे को अपना सर्वस्व क्यों अर्पण कर दिया था ? वे तो महा ठग निकले मथुरा भी छोड़के चलते बने और अब जाके उन्होंने समुद्र तट पर घर बना लिया है यह खबर सुनके उन गोपियों के अङ्ग में और भी सन्ताप बढ़ गया और मन में सन्देह भी बढ़ गया (अब तो उनका यह सन्देह कि माधव ने उन्हें भुला दिया है और भी दृढ हो गया) । सूरदास कहते है कि गोपियाँ यह खबर सुनके अत्यन्त व्याकुल हुईं और उनके नेत्रों से आसुओं की झड़ी लग गई ।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है ।

२८७ गोपियाँ विरहव्यथा से सतप्त होने मरणासन्न हो आपस में कहा करती हैं हायरी मा ! हरि नहीं मिले जन्म यों ही बीत रहा है। उनकी राह देखते देखते एक दिन युग के समान बीत रहा है। चातक और कोकिला की कूक सखी ! अब कानों स सुनी नहीं जाती। चन्द्रमा तथा चन्द्रमा की किरण मानों करोड़ो सूर्य बनकर सताप देती हैं। सूरदास कहते हैं कि युवतिया कृष्ण के आग मन म सजधज के तैयार होती हैं पर फिर भी वे नहीं आ ते। इसलिए वे सजध के सामान भी साक्षात व्यथा देने वाले बन गए हैं। युवतिया (कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में) भूषण इस तरह सजाती हैं जैसे रणभूमि के लिए उत्कंठि योद्धा कवच धारण करता है। (कृष्ण के न आने पर वे ही आभूषण दु ख दायी बन जाते हैं । इसलिए सूर कहते हैं) जिस प्रकार अर्जुन के प्रेरि बाणों की शरशय्या बनाकर भीष्म लेटे थे उसी प्रकार मदन से प्रेरित बाण पर गोपियाँ व्यथित एव तड़पती हुई लेटी है। शरशय्या पर लेटे हुए मृत्यु जय भीष्म ने सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण परित्याग किए थे। जब त सूर्य उत्तरायण नहीं हुए थे तब तक वे उसकी प्रतीक्षा में लेटे धर्मोपदे करते रहे थे। गोपिया भी मरण शरशय्या पर लेटी हुई उत्तरायण सूर्य रु अवधि की प्रतीक्षा कर रही हैं उनके चचल प्राण शरीर त्याग नहीं करते। अवधि मे अटक रहे हैं।

इस पद मे उपमा, उत्प्रेक्षा एव सागरूपक अलकार है।

२८८ गोपियाँ विरह म कृष्ण को पुकारती हुई अपनी विरहव्यथा और असहायता का वर्णन करती हुइ कहती हैं कि हे प्यारे श्री कृष्ण ! तुम्हारे विरह दु.ख के कारण हमारे नयनो की नदी मे बाढ आगई है। वह बाढ़ इतनी बढ़ गई है कि दोनों पलक रूपी तटों को समेटे लिए जा रही है। अक्षिगोलकरूपी नई नाव भी इस चढी नदी में चल नहीं पाती क्योंकि यह नदी अपने प्रबल प्रवाहों से उछल के इसे डुबाए देती है। हमारे ऊर्ध्वश्वास की समीरों के बवडर ने इस नदी की तरङ्गो को इतना उच्छृलित कर दिया है कि वह तिलक रूपी पेड़ को तोड़े डाल रही है। काजल की कीच बहाकर इसने कपोल अधरा के तटों के अन्तर्भाग गदे कर दिए है। इसके सकट से स्थगित होकर हाथ पैर और मुख ने बोल रूपी पथिक जहाँ के तहाँ ठहर गए हैं अर्थात् इन्होंने चलना

जिसका बिलकुल त्याग दिया है । ऐसी असाध्य अवस्था में हे कृष्ण ! तुम्हारे दर्शन के बिना क्षण भर के लिए भी जीने का कोई उपाय नहीं है । सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती है कि आंसुओं की बाढ़िया में यह सब गोकुल डूबा जा रहा है कृपा करके अपने हाथ से इसे पकड़ लीजिए ।

इस पद में सांगरूपक अलंकार है ।

२८६ गोपिया अपनी विरहव्यथा के संताप का वर्णन करती हुई कहती है कि हम को तो स्वप्न में भी यही चिन्ता रहती है । जिस दिन से नंदनंदन बिछुड़े है उस दिन से (हमारा मन) यह बड़ा भयभीत हो गया है । मैंने स्वप्न में देखा कि मानों गोपाल मेरे घर आए है और हँस के उन्होंने मेरी बांह पकड़ली है । इसके आगे में और आनन्द स्वप्न में भी नहीं ले सकी । क्या करूँ नींद ही मेरी बैरिन हो गई जरा देर और न बनी रही । सूर कहते हैं कि गोपिया कहती है कि यह तो ऐसी हुई जैसी कि उस चकई की जो प्रतिबिंब को पानी म देखकर उसे प्रियतम समझ के आनन्दित होने लगी परन्तु इतने में ही निष्ठुर देवने हवा के बहाने आकर पानी को हिला दिया और बेचारी चकई का स्वप्न टूट गया । जैसे वह दु खी हुई उसी तरह मेरा स्वप्न टूट जाने से मैं भी दु खी हो रही हूँ ।

इस पद म उपमा एव अपह्नुति अलंकार है ।

२६० गोपिया विरह में नयनों मे उठी हुई प्रियतम के दर्शनों की आशा पर आक्षेप करती हुई कहती हैं—कि आज ये आँखें तरस रही हैं पर जब वे यहां थे तब तो ये आखे ही अज्ञ बनी रहीं । कुछ तो वैसे ही भोली और कुछ हरि की ओर निहारने से जो कुछ समझ थी वह भी मारी गई । ये ऐसी भूल रहीं थी जैसे भरे घर में घुस के चोर निधि को देखकर हक्का बक्का हो जाता है । बेचारा कुछ भी नहीं ले पाता । रातभर यह लू कि यह लू करते ही करते रात बीत जाती है । वह एक के बाद दूसरी चीज लेता और फिर डाल देता है । इसी तरह ये आखें उन शोभानिधि पर जाकर यह मांग देखू कि यह देखूँ करती रहीं कहीं पर मन भर के न रस सकीं एक एक गये सबको छोड़ती रही । आज ये दुखियाती है । हाय ! पहले ही ऐसी रस क्यों न हुई कि मुँह भर जीता (मन भर जाता) । सूर कहते हैं अब इन्हें शांति

लालच बढ रहा है और इनके नित्य नई पीर उपत्पन्न होती है।

इस पद में उपमा अलकार है।

२६१ विरहानल से सतप्त गोपिया विरहोन्माद मे चन्द्रमा द्वारा द्वारिका निवासी कृष्ण के लिए सदेश भेजती हुई कहती हैं कि हे उदधिसुत (चन्द्र)! तुम उस देश म जाया करते हो। सम्पूर्ण भुवनो के राजा श्री श्यामसुन्दर द्वारिका रह रहे हैं। तुम अत्यन्तशीतल हो तुम्हारा शरीर अमृतमय है। तुम कृपा करके हमारी यह बात कह देना कि तुम अपना काम निकाल के हम छोड़ के विदेश जा रहे हो। हे जगत के वन्दनीय नन्दनन्दन! एक बार हमारी खातिर फिर से नटवर का वेष धारण करके ब्रज में आओ! सूर कहत हैं कि गोपिया चन्द्रमा से कहती हैं कि उनसे हमारा यह सन्देश कह देना कि हे नाथ! तुम हमें अनाथ करके क्यों छोड़ गए?

२६२. विरह से व्यथित गोपिया विरहोन्माद मे कोयल को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि सखी! तुम मेरी एक शिक्षा सुनो। जहा संसार के मणि श्री यदुनाथ निवास करते हैं वहा भी एक बार चक्कर लगा आओ। हे चतुर बुद्धि रखने वाली कोकिला तुम बड़ी कुलीन हो और विरहिणियों की व्यथा को खूब जानती हो। इसलिए तुम जाके वहाँ उपवन में मीठी बोली सुना आओ और अपने इन मीठे वचनो से खरीद के हमे अपनी क्रीत दासी कर लो। भाव यह है कि यदि तू वहाँ जाके अपनी मधुर बोली वहाँ सुनावेगी तो इसके बदले म हम तेरी अनुचरी हो जावेंगी। जो शुभ यश प्राणोत्सर्ग करने पर हाथ लगता है उस सुयश राशि को तू मुफ्त (केवल बोल के बदले) खरीद ले। हमने खूब अच्छी तरह ससार म आँख फैला के देख लिया हमारा और कोई भी उपकारी नहीं है। अब हम निराश होके तुम्हारी शरण हैं तुम जाके उनके (श्रीकृष्ण) द्वार पर हमारी टेर सुना देना और कह देना कि बेचारी अबलाओं को काम ने घेर लिया है। किसी तरह यदि तुम सूर के स्वामी श्याम को यहाँ ले आओ तो हम सदा तुम्हारी सुन्दर कीर्ति का गान किया करेंगी। तुम्हारे उपकार के लिए सदा कृतज्ञ रहेंगी।

२६३ विरहानल से सतप्त होके विरहिणी राधा रात में उदीयमान चन्द्र को और भी आग बरसाते देखके कोस रही हैं। वह कहती है हाय री माँ! कोई

इस चन्द्र को रोकले। यह अपनी प्रेयसी कुमुदिनी को आनन्दित करता है पर हमारे ऊपर तो बड़ा कोप करता है। देखो जल के भस्म करे देता है। न जाने अमावस्या कहाँ गई, आके इसे छिपा क्यों नहीं लेती ! सूर्य और प्रभात का सदेशवाहक ताम्रचूड़ (मुर्गा) कहाँ चले गए आके इसे कान्तिहीन क्यों नहीं कर देते ! जाने काले बादल कहाँ मर गए आके इसे क्यों नहीं छिपा लेते ? यह ढीठ चलने का नाम नहीं लेता यह अपना रथ खड़ा करके रह गया है। हम विरहिणियों के शरीर को जलाए दे रहा है। वह मन्दराचल समुद्र वासुकि सर्प को बुरा भला कह रही हैं क्योंकि न ये होते न चन्द्र का जन्म होता फिर विरहिणियों को इतना दाह क्यों होता ? वे कठोर (निर्दय) कच्छप को जिसने कि समुद्र मथन में योग दिया था कोस रही हैं। जरा राक्षसी को देवी कहके उसे शुभ आशीर्वाद दे रही है वह कहती है हाय ! कितना अच्छा होता कि वह जरा आके भिन्न हुए राहु और केतु को फिर से जोड़ के एक देह बना देती जिससे वह इस चन्द्र को खा के पचा लेता और हमेशा के लिए इसकी कथा ही समाप्त हो जाती। जिस प्रकार जल से रहित होके मछली तड़पती है उसी तरह कृष्ण के विरह में व्रजबाला तड़प रही हैं। सहृदय सूर कहते हैं कि स्वामी मदन गोपाल श्रीकृष्ण को लाके शीघ्र ही इससे मिला दो वरना बड़ा अनर्थ होने की संभावना है। मामला बड़ा संगीन है।

अन्तःकथाएं १—विष्णु ने मंदराचल की रई बनाके तथा वासुकि की रस्सी बनाके देवताओं से क्षीर सागर का मथन करवाया था। उसके मथन से चन्द्र आदि चौदह रत्न और अमृत तथा विष निकले थे। विष्णु ने वह अमृत देवताओं को बाँटा था। जब वह अमृत बाँटा जा रहा था तब राहु राक्षस भी देवताओं की पंक्ति में आ बैठा था। उसने भी अमृत लेके पान ही किया था कि सूर्य और चन्द्र ने शिकायत कर दी विष्णु ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया। अमृत के प्रभाव से वे दोनों भाग अलग अलग अमर हो गए। शिरोभाग राहु और शेष कबंध केतु के नाम से पुकारा जाने लगा। तब से ये दोनों सूर्य चन्द्र को ग्रसने लगे परन्तु ये विकलांग होने से उन्हें पचा नहीं सकते और इसीलिए फिर सूर्य और चन्द्र ज्यों के त्यों निकल आते हैं।

अमृत मथन में नीचे की ओर मंदराचल की चोट संभालने वाला कच्छप

था इसलिए उसका भी योग समुद्र मथन में है। इसीलिए ये सबने सब कोते गए हैं।

२—जरा नामक एक राक्षसी थी जिसने कि जरासध नामक मगध नरेश को जो जन्म के समय दो टुकड़ो म विभक्त था जाड़ के एक कर दिया था। वह बाद म बड़ा प्रतापी हुआ। राजसूय यज्ञ करने के पूर्व भीमसेन से उसका मल्ल युद्ध हुआ था। भीमसेन की किसी तरह उससे पेश न गई तब श्रीकृष्ण ने तिनका चीर के जरासध के शरीर के जुड़े हुए दो भागा का संकेत भीम को दिया था और उन्होंने सकेत पाके ज्यों ही दाव मिला चीर के उस दो कर दिया। चन्द्र की दाहकता के कारण गोपियाँ इस पद म उसे देवी इसीलिए कह रही हैं कि प्रसन्न होके राहु केतु को जोड़ दे और चाद का काम तमाम हो जाय।

इस पद मे अतिशयोक्ति और उपमालङ्कार है।

२६४ कोई गोपी वेचारी विरहवेदना से परेशान है। उसे श्रीकृष्ण पर सदेश ले जाने वाला तक नसीब नहीं होता। अन्त में कोई चारा न देखके वह सन्देश ले जाने वाले के लिए बहुमूल्य पारितोषिक की घोषणा करती हुई अपनी विरह व्यथा का वर्णन कर रही है। वह कहती है कि मैंने श्री श्याम-सुन्दर के लिए चिट्ठी लिख रक्खी है। यदि इस चिट्ठी को कोई मथुरा पहुँचा दे तो मैं उसको हाथ का कगन दे दूँगी। हा माधव! अब वह प्रेम कहाँ गया जो पहले था। जब तुम वेणु बजाके हमसे मिला करते थे। आज आँखों से प्रवाहित होते हुए आँसू इस चन्द्रमुख (सारग=कमल का रिपु) को भिगोते रहते हैं। रात बड़े सकट से कटती है। सूना घर मुझे भयावह लगता

श्रीकृष्ण ने परदेश में बहुत दिन लगा दिये। वह बादलों को ही पथिक संबोधन करके कहती है कि भैया पथिक! तुम कौन देश से दौड़े आ रहे हो। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ देखो तुम मेरी यह चिट्ठी वहाँ जाके पहुँचा दो जहाँ घनश्याम श्रीकृष्ण रहते हैं। उनसे कह देना कि यहाँ वर्षागम में मेंढक, मयूर और चातक शोर मचा के हमारे प्रसुप्त काम को जगा रहे हैं। हाय! सूर के स्वामी श्याम हम से ऐसे बिछुड़े कि वे ब्रज पराए ही होकर रह गए। वे तो आने का नाम तक नहीं लेते मानो वे हमारे हैं ही नहीं।

इस पद में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

२६६ ब्रजगोपियाँ विरहानल से सतप्त होके उमड़ते हुए काले बादल को देख के कृष्ण की याद में विह्वल होके परस्पर कह रही हैं कि आज तो बादल श्याम के समान काले २ उमड़ रहे हैं। हे सखी, उनके रूप की मुद्रा देखो। के बिलकुल श्याम के ही सदृश हैं, उन पर पड़ा हुआ इन्द्र धनुष मानों उनके नवीन वस्त्र की शोभा को व्यक्त कर रहा है। विद्युत को उनकी दंत पंक्ति समझो। ये श्वेत बक पंक्ति मानो उनके वक्षःस्थल पर पड़ी हुई मोतियों की माला है। ये देखो अपने प्रेमियों को बड़े प्रेम से देख रहे हैं। आकाश में बादलों की गरजना के रूप में गोविन्द की वाणी को सुनके उनकी आँखों में आसू भर आए। सूरदास कहते हैं कि वे विरह विह्वल गोपियाँ उमड़ते हुये बादलों को देख के श्याम के गुणों को स्मरण करके अत्यन्त व्याकुल हुईं।

इस पद में स्मरण, वस्तूत्प्रेक्षा एव रूपक अलङ्कार है।

२६७ गोपियाँ विरह से व्याकुल होके दाहक चन्द्रमा को देखके उसे उपालंभ देती हुई कहती हैं–हे कृष्ण! तुम्हारी अनुपस्थिति में महादेव जी का शिरोभूषण यह चन्द्रमा हमारे चित्त को जला रहा है। इस नक्षत्र राज चन्द्रमा को लोग अमृतमय कहते हैं पर हमारे लिए तो यह अपना स्वभाव (अमृतवर्षा) छोड़ के अग्नि को धारण या प्रवाहित करने वाला है। हायरी सखी! रात नहीं बीतती, साप न जाने कहा रहता है। आके मेरे जीवन का अन्त क्यों नहीं कर देता! यह चन्द्रमा पश्चिम की राह नहीं पकड़ता अर्थात् अस्त नहीं होता। राहु इसे पकड़के क्यों नहीं ग्रस लेता ताकि यह हमें न निगल पाता। हे उदधि सुत (चन्द्र)! यों तो तुम बड़ी अचल समाधि लगा के मुनि तथा

शिवजी की दिनचर्या को अपनाते हो उन्हीं के समान रहते हो। लेकिन तुम्हारा यह सब ध्यान (समाधि) आदि लगाना कुछ ऐसा ही है। अर्थात् रहने का तो ऐसे रहते हो पर विरहिणियों के लिए तुम रिपु धरे हो। इस लिये तुम बगुला भगत हो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि चन्द्र का रूप हमारे प्रभु के समान मोहित करने वाला है। इसीलिए हम ध्यान मुद्रा में उसकी ओर देखने तो लगती हैं पर हमारा चित्त उसकी दाहकता के कारण उसे सहन नहीं कर पाता।

इस पद में विषम, उपमा और अन्तिम पंक्ति में विरोधाभास अलङ्कार है।
२६८ कोई विरहिणी विरह से सन्तप्त होके रात्रि में चन्द्र दर्शन से और भी अधिक सङ्कट में पड़ी। अनेक उपाय किये और ज्यों त्यों करके उससे छुटकारा पाया। प्रातःकाल वह आप बीती को अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! क्या कहूँ ? आज रात का दुःख मुझसे कुछ कहते नहीं बनता। चन्द्र-दर्शन से विरह सन्ताप जब बहुत बढ़ गया तो मन बहलाने के लिए बंशी हाथ में ली। परन्तु परिणाम उलटा हुआ। चन्द्र का रथ (उसमें जुते हुए मृगों के मोहित हो जाने से) खड़ा होगया और चन्द्रमा ने चलना बन्द कर दिया। प्राण-नाथ प्रियतम श्रीकृष्ण के वियोग में कामदेव ने अपने नए बाणों से मुझे जलाना शुरू कर दिया। फिर क्या था विरहिणी बहुत ही व्याकुल होके सोचने लगी कि हा! मुझे साँप आके क्या नहीं काट लेता कि मेरे इस दुःखी जीवन का अन्त हो जाय। अन्त में विरहिणी कहती है कि जब किसी तरह सताप का अन्त न हुआ तो सखियों ने सिंह का चित्र खींचा ताकि उसे देख के चन्द्र रथ में जुते हुए मृग भयभीत होके भाग जावें। चन्द्र अस्त हो जाये और इस बेचारी स्त्री की शोचनीय अवस्था टल जाय। सूर कहत हैं कि वह विरहिणी कहती है कि इस उपाय से चन्द्र का रथ शीघ्र ही चल दिया और देखा कि पीछे से (पूर्व की ओर से) सूर्य का उदय हो रहा है।

इस पद में विषादन एव सूक्ष्म अलङ्कार है।

उपर्युक्त पद के भाव को जायसी ने भी अभिव्यक्त किया है। देखिए—

कलप समान रैनि तेहि बाढी, तिल तिल भर जुग जुग जिमि गाढी।
गहै बीन मकु रैन बिहाई, ससि बाहन तहँ रहै ओनाई।

पुनि धनि सिप डरेहैं लागे, ऐसिहि विथा रनि सब जागे। इत्यादि।

जायसी—पद्मावत—(पद्मावती—वियोग खण्ड)

२६६ गोपियाँ कृष्ण के वियोग में रुदन करती हुई कहती हैं कि हाय री मैया! देखो इन नेत्रों से तो बादल भी पराजित होगए हैं। बादल तो वर्षा ऋतु में ही बरसते हैं पर ये तो बिना वर्षा के भी सदा रात दिन बरसते रहते हैं। इनके दोनों तारे (पुतलियाँ) सदा जल में डूबे रहते हैं। कहीं-कहीं मलिन पाठ है जो अधिक अच्छा है क्योंकि उसकी सगति वर्षा में बादलों के कारण धुँधले हुए तारों से ठीक बैठती है। तारों के सजल होने से यह सगति नहीं बैठती। ऊर्ध्व श्वास के बवडर से मुख रूपी अनेक पेड़ उखड़ के गिर पड़े हैं। यहां दुःख पाठ ठीक नहीं जँचता क्योंकि दुःख रूपी पेड़ों का तो उखड़ जाना इष्टापत्ति ही होगी। पावस ऋतु के भय से वचन रूपी पक्षी वदन रूपी अपने घोंसले में ही बसे रहते हैं वे बाहर नहीं निकलते। आँसुओं का पानी काजल से काला होके ढल ढलके बूँद-बूँद से चोलियों पर गिरता है जो वक्षःस्थल पर दोनों स्तनों के बीच श्याम होके बहता हुआ ऐसा प्रतीत होता है मानो दो शिव की पर्णकुटियों के बीच में एक श्याम नदी का प्रवाह बह रहा है जो उन कुटियों को अलग-अलग किए हुए है। श्री कृष्ण की याद कर-कर के बड़ी गरज के साथ रात दिन आँसुओं की जलधारा प्रवाहित हो रही है। सूर कहते हैं गोपियाँ कहती हैं कि इस मूसलाधार वर्षा के जल में डूबते हुए व्रज को प्यारे गिरिवरधारी के बिना और कौन बचा सकता है? भाव यह है कि उन्हीं के आगमन से ये अश्रुधाराएँ बन्द हो सकेंगी और व्रज स्वस्थ होगा। गिरिवरधर कृष्ण के अनेक नामों में से यह नाम यहाँ विशेष अभिप्राय से लिया गया है। एक बार इन्द्रने क्रुद्ध होके व्रज को नष्ट करने के लिए मूसलाधार वर्षा की थी तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत हाथ पर छाते की तरह धारण करके व्रज को बचाया था। इस पद में श्रीकृष्ण का गिरिवर-धर नाम लेके उनके उसी कार्य को याद कराया गया है। अर्थात् जब-जब व्रज के डूबने की नौबत आई तब-तब उन्होंने उसकी रक्षा की। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यदि उन्हें खबर लगेगी कि व्रज फिर से डूबने जा रहा है तो

वे उसे बचाने अवश्य आवेंगे। आखिर तो व्रज उन्हें प्यारा ही है।

इस पद में श्लेष रूपक और उत्प्रेक्षा से पुष्ट प्रतीप अलकार है तथा अन्तिम पंक्ति में गिरिवरधर सज्ञा के साभिप्राय होने से परिकराकुर अलकार है।

३०० विरह व्यथा के संताप में कोकिल का मधुर नाद सुनके गोपियाँ कहती हैं—अरे कोकिल ! तू जरा उड़ क्यों नहीं जाती ! अपनी अनेक प्रकार की स्वर माधुरी सुनाके तू यहाँ किसे रिझा रही है ? नीचे मुँह डालके निर्दयी पशु के समान तू इतनी क्रुद्ध क्यों हो रही है ? (कोकिल का स्वभाव है कि वह नीचे मुँह करके उत्तरोत्तर ऊचे स्वर में ही बोलती जाती है। इसी पर क्रुद्ध होने की कल्पना की गई है)। हाय ! क्या करें यहाँ कोई भी व्याकुल विरहिणी की थाह (व्यथा की सीमा) को कोई नहीं सुनता समझता। अरे मदन ! अवधि के दिन तक तो हमारे शरीर को बना रहने दे। मुँह फाड़के हमें खान डाल। तूने तो शिव के द्वारा जलाए हुए अपने शरीर की व्यथा का अनुभव स्वयं किया है। अतः तू जानता है कि तन दाह की व्यथा कैसी होती है। तुझे हम क्या समझावें कि दाह बड़ा व्यथादायक होता है। नन्द-नन्दन का विरह बड़ा व्यथादायक है इसका वर्णन करना शक्ति से बाहर की बात है। इसलिए गोपियाँ कोकिल से कहती हैं कि सूर के स्वामी व्रजनाथ की अनुपस्थिति में हे कोकिल ! तू मौन धारण करले। इसके लिए हम तुम्हारा बड़ा उपकार मानेंगी। तू मौन लेके हमें खरीद ले।

अन्तःकथा—कामदेव अपने मित्र वसंत के साथ शिवजी को क्षुब्ध करने के लिए उनके आश्रम में गया था। आकर्णशरासन खींच के वह समाधिस्थ शिव के पीछे खड़ा था कि शिवजी की समाधि उखड़ गई। पूजा के लिए आई हुई पार्वती को देखके उनका मन क्षुब्ध हुआ ही था कि उन्होंने उसका कारण काम को जान कर उसे अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से भस्म कर दिया था।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है।

३०१ विरह सतप्त गोपियाँ उद्धव से योग की बात सुनके उनसे कहती कि हे मधुकर सदेशों से योग नहीं होता। चाहे तुम करोड़ों यत्न करो इस

व्रज म इस उपदेश को कोई नहीं सुनेगा। शाम को प्रियतम से वियुक्त होती हुई चकवी को सूर्योदय होने पर पुनर्मिलन के लिए कोई सन्देह नहीं होता। अर्थात् उसे निश्चय रहता है कि सूर्योदय होने पर मैं प्रियतम से अवश्य मिलूँगी। इसी प्रकार हमें भी विरह में यह निश्चय है कि अवधि आने पर कृष्ण अवश्य मिलेंगे। चातक आदि पक्षी भले ही बन मे रहते हैं किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते पर बधिकों को तो उनकी हत्या से ही काम है। इसी प्रकार हम भी विरह को सहन करती हैं किसी का कुछ नहीं बिगाड़तीं पर उद्धव जैसों को तो हमारा जी दुखाने में ही मजा आता है। हमारा नगर एक नगर के नायक (हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण) के बिना सूना है। अन्य सब जो यहाँ ने रहने वाले हैं उनसे इस अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती। (मिलाइए—यदपि सन्ति जना जगतीतले तदपित्वद् विरहाकुलित मनः। कति न सन्ति निशाकर तारकाः कमलिनी मलिनी रविणा विना।) सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि यह सब होते हुए भी कृष्ण और उनके साथियो को इसकी क्या चिन्ता? क्योंकि ये तो काले नाग हैं जिनके यहाँ दूसरों को डसना ही उनकी क्रमागत परम्परा है।

इस पद म अन्योक्ति अलङ्कार है।

३०२ गोपिया अपनी असह्य विरह दशा में भी कृष्ण को न लौटता देख कृष्ण के कुपित होने की आशका से तर्कना करती हुई परस्पर कहती हैं—कि अरी सखी सुनो! हमारे विचार से तो श्रीकृष्ण इस डर के कारण गोकुल नहीं लौटे। वे वास्तव में हमारी करतूतो को सोचकर ही मथुरा में जम गए हैं। वे सोचते होंगे कि यदि व्रज में जाऊँगा तो वहाँ बालक लोग (पहले की तरह) आधी रात से उठके मुझे भी आके जगाया करगे और गोपियाँ मुझे नगे पाव (बिना जूत के) बन में गैया चराने भेजेंगी। सूने घर में दही और मक्खन चुराते हुए मुझे ग्वालिनें मना करेंगी और कितने ही लच्छन लगाके मुझे बाप के नाचतीं गातीं यशोदा के पास ले जाया करेंगी। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि इन दुःखों को याद करके वे अपने मन मे सोचते होंगे कि फिर जाके इन दुखों को कौन सहे?

३०३ उद्धव के लौट जाने पर अन्य कोई सन्देश न मिलने से गोपिया

अत्यन्त व्यथित हो वर्षागमन के कारण और अधीर होके आपस में कहने लगी कि अरे! फिर कोई भी न आया। वही एकबार उद्धव आए थे जिनसे कुछ खबर मिली थी। सखी! हम यही सोचा करती हैं कि श्रीकृष्ण ने इतनी देर क्यों लगाई? गोकुलनाथ श्रीकृष्ण ने हम पर दया करके कभी पत्र भी तो नहीं लिख भेजा! इतने दिनों अवधि की आशा में काट लिए पर अब तो हमारा मन उनके न आने पर पागल हो जायगा। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं 'लो अब और सकट आया। वह देखो चातक बोल रहा है और बादल आकाश म छाने लगे। वर्षा आ गई। अब तो प्राण संकट में पड़ेंगे।'

२०४ उद्धव द्वारा योग की बात सुनके गोपी कहती है कि मेरा मन तो मथुरा मे श्रीकृष्ण के ही साथ रह रहा है। वह हमारे शरीर को छोड़ के चला गया और फिर लौट के नहीं आया, गोपाल ने उसे पकड़ रक्खा है। हमारे नेत्रों का रहस्य है कि उन्होंने कृष्ण के रूप को चुराया है कोई नहीं जानता था परन्तु मालूम होता है कि किसी भेद जानने वाले ने यह भेद खोल दिया। मैंने जो उनके रूप को अपने चित्त के भीतर छिपा लिया था उसका पता श्रीकृष्ण ने पा लिया। अब पता पाके वहाँ अपना रूप न देखके उद्धव उसे वापस ले जाने के लिए शोर मचाते हुए यहाँ आए हैं। वे हमसे रूप रूपी मणि देकर निराकार रूपी मट्ठा लेने की कह रहे हैं। आज वह हमसे निर्गुण के बदले गोविंद को चाहते हैं। हा! यह व्यथा हम कैसे सहन कर सकती हैं? सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि इस विरह की असह्य दशा में भी जो रूप हमारे शरीर के लिए किसी न किसी दशा में निर्वाह का अवलंब रहा है उसे हम से छीनके हमारे हृदय को उद्धव भस्म कर डालना चाहते हैं।

इस पद में रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार है।

२०५ योग के विषय में चिकनी चुपड़ी (ब्रह्म की प्राप्ति एव मोक्ष प्राप्ति आदि आकर्षक फल प्राप्ति से युक्त) बातें सुनके गोपियाँ उद्धव पर कटाक्ष करती हुई कहती हैं कि लोगों को चिकनी चुपड़ी बातें करने की आदत हुआ करती है। ये सब (योग की साधना आदि) कहने मे ही बड़ी आसान हैं, पर करने पर पता लगता है कि ये कितनी कड़ी हैं। देखो न इसीलिए अब उद्धव चुप्पी साधे हैं। उनसे जवाब नहीं बन रहा। पहले अग्नि को चन्दन सी ठण्डी सुन-सुन के सती

होने वाली स्त्री बहुत उमंगित होती है पर जब वह जल के भस्म हो जाती है तो कौन बताए कि आग गरम या ठण्डी लगी थी। हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार सती स्त्रियों के लिए 'हुताशनश्चन्दन पंक शीतलः' वाला प्रवाह सत्य है। सूर का तात्पर्य यह है कि इसी प्रवाद से आकर्षित हो पति के वियोग से दह्यमान पत्नी चिता में प्रवेश के लिये उत्कण्ठित होती है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि ये सभी कहते हैं कि सच्चे सूर के लिए युद्ध एक खिलवाड़ है और तलवार फूलों की लता है। लेकिन जब शूर भी अपना सिर कटा लेता है तो इस विचार का सही सही प्रतिपादन कौन कर सकता है?

भावार्थ य हहै कि अर्थवादों को सत्य समझ के लोग कठोर से कठोर कार्यों के लिए उत्कंठित हो जाते हैं। परन्तु जब वस्तुस्थिति आती है तब पश्चात्ताप करते हैं।

इस पद में अन्योक्ति अलंकार है।

३०६ श्रीकृष्ण के वियोग में गोपियाँ शोभा-विहीन अपने नेत्रों पर आक्षेप करती हुई अपनी विरह व्यथा प्रकट कर रही हैं। वे आपस में कहती हैं कि सखी! आज ब्रजराज श्रीकृष्ण के बिछुड़ जाने पर इन नेत्रों का विश्वास जाता रहा। ये यदि खञ्जन हैं तो पक्षी होकर भी ये हरि के साथ उड़के क्यों न लग लिए। ये घनश्याममय क्यों न हो गए? इन दुष्ट कुटिलों ने व्यर्थ में ही मछलियों के कालेपन की शोभा को धारण किया। उन मछलियों की करनी तो इन्होंने कुछ न कर पाई। व्यर्थ मे ही घनश्याम के रूप को प्यार करने वाले कृष्ण रूप के लोभी कहलाए। यदि इन्होंने मछलियों की सुन्दर श्यामलता ली थी तो इन्हें उनके समान ही प्रेमी बनकर दिखाना चाहिए था। मछली जल के वियोग मे प्राण परित्याग कर देती है पर ये घनश्याम के वियोग मे भी जीवित हैं। कृत्रिम प्यार करने वालों को यही सजा मिलनी चाहिए। अब क्या ये सोच में मग्न कर जल बरसाते रहते हैं। समय बीत जाने से अब नित्य नई व्यथा का अनुभव करते हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि जब से पलकों ने इन्हें धोखा दिया तब से सदा जड़ बन गए हैं।

इस पद में हीनांग रूपक अलङ्कार है।

३०७ गोपियाँ विरह विह्वल होकर सामने उद्धव जैसे हृदयहीन को देखकर

निराशा से कहती हैं कि हाय ! हमारे मन की बात हरि से कौन कहे ? अर्थात् कोई कहने वाला नहीं है । हमने तो यह बात कि हमारे सुख दु ख की , वाला अब कोई नहीं है तभी से जान ली जब से कि उनके यहाँ भ्रमर महाशय अधिकारी हुई । दोनों का एकसा ही स्वभाव और एक सी ही धोखा देने को आदत है । उसके गुणों का सोच कर हमारे मन में तो यही निश्चय होता है कि हमारी कहने वाला कोई नहीं है । वहां (मथुरा में) नया कमल खिला है फिर यहाँ ब्रज में वह टेसू के फूल के पास क्यों आने लगा ? लेकिन ये तो भ्रमर हैं कहीं भी स्थिर होकर नहीं रहते । आज कमल के लिए किंशुक को ही छोड़ा है पर कमल के पास रहकर मन में चंपा को सोचते रहते हैं भले ही वह चंपा उनके काम का न हो । पर इससे उन्हें क्या ? उन्हें तो नित नई कुसुमाली के लिए ललचाना, क्योंकि इनकी दशा सबसे अद्भुत है । ऐसे भ्रमरों की संगति में मथुरा रह के सूर के स्वामी श्रीकृष्ण ने हमारी याद भुलादी ।

इस पद में अन्योक्ति अलङ्कार है ।

२०८ कृष्ण के द्वारका प्रयाण का समाचार सुनकर विरह व्यथित गोपियों से कोई गोपी कहती है कि सुना है अब हमारे प्रियतम श्याम दूर जाना चाहते हैं । सखी ! मथुरा रहते हुए तो मिलन की कुछ आशा भी थी पर अब हम रो रो मरगीं । ऐसा सुनकर सब सखियाँ स्तब्ध होकर उससे पूछती हैं कि तुमसे यह किसने कहा ? कहाँ से सुनकर आई हो ? किस ओर रथ की धूल उड़ते तुमने देखी है ? बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही अत्यन्त उत्कण्ठा से वे कह

कृष्ण के ब्रज में आने की कोई आशा नहीं है। हे कृष्ण ! अपने वियोग का सन्देश भेजने के लिए भी अब हमें कहाँ और कौन मिलेगा ? अर्थात् इतनी दूर तो जाने के लिए कोई भी तैयार नहीं होगा। सुना है कि समुद्र के किनारे किसी का कोई भला ही देश है, जिसके बारे में हमने न कभी सुना न देखा। उसकी दूरी के बारे में केवल मन की कल्पना ही कर सकते हैं। वहीं नन्द-नन्दन ने एक नगर बसाया है जिसको द्वारिका कहते हैं। वहाँ सब घर सोने के बने हुए हैं राजा से लेके रंक तक अर्थात् छोटे बड़े कोई भी वहाँ घासफूस के छप्पर नहीं छाते। यह भी कहते हैं कि वहाँ के निवासियों को ब्रज में रहना अच्छा नहीं लगता। (लगेगा भी क्यों ? वहाँ तो समृद्धि ही समृद्धि है और यहाँ दीनता)। सूरदास कहते हैं कि विरहिणी गोपियाँ अनेक तरह विलाप करती हैं और अनेक उपाय भी करती हैं पर उनका चित्त नहीं लगा। वे व्यथित होके कहती हैं कि कहाँ जायें क्या करें ? कोई हमें हरि के पास पहुँचा दे तो बड़ा उपकार हो।

३१० गोपियाँ कृष्ण के वियोग में पश्चात्ताप करती हुई कहती हैं कि हमें तो नन्दनन्दन पर गर्व है। इन्द्र के क्रोध से जब ब्रज बहा जाता था तो उन्होंने ही गिरिवर गोवर्धन धारण करके उसे बचाया था। बलराम के कृष्ण के बलबूते पर ही हम किसी की परवाह नहीं करती थीं और निडर होके अपनी गैयाँ चराती थीं। हमारे सब बिगड़े कार्यों को सँभालने वाला बलवीर श्री कृष्ण हमारे संरक्षक थे। हमें उन पर पूरा विश्वास था परन्तु केशी और तृणावर्त के वध के पश्चात् उनकी कोई विश्वास बँधाने वाली बात नहीं हुई। प्रतीत होता है कि शायद अब उन्हें हम पर और हमारे ब्रज पर वह प्रेम नहीं रहा जो इसे वे मिटने से बचा सकें। इसीलिए तो उनकी तब से कोई खबर भी नहीं मिली। हाँ उनके जाने पर यह सुना था कि युद्ध में कंस परास्त हुआ और सूर के स्वामी श्याम विजयी हुए थे।

१ अन्तःकथा—एक बार श्रीकृष्ण ने इन्द्र का अभिमान चूर्ण करने के लिए उनके लोगों से इन्द्र की पूजा करने को मना किया। इन्द्र ने क्रुद्ध होके प्रलयकाल के सम्वर्तक पयोदों से ब्रज पर मूसलाधार वर्षा की। तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण करके ब्रज को बचाया। उनके अलौकिक पराक्रम और

निराशा से कहती हैं कि हाय ! हमारे मन की बात हरि से कौन कहे ? अर्थात कोई कहने वाला नहीं है। हमने तो यह बात कि हमारे सुख दुख की ... वाला अब कोई नहीं है तभी से जान ली जब से कि उनके यहाँ भ्रमर महाशय अधिकारी हुई। दोनों का एकसा ही स्वभाव और एक सी ही धोखा देने की आदत है। उसके गुणों का सोच कर हमारे मन में तो यही निश्चय भया है कि हमारी कहने वाला कोई नहीं है। वहां (मथुरा में) नया कमल खिलता है फिर यहाँ ब्रज म वह टेसू के फूल के पास क्यों आने लगा ? लेकिन ये तो भ्रमर हैं वहीं भी स्थिर होकर नहीं रहते। आज कमल के लिए किंशुक को ही छोड़ा है पर कमल के पास रहकर मन में चपा को सोचते रहते हैं भले ही वह चपा उनके काम का न हो। पर इससे उन्हें क्या ? उन्हें तो नित नई कुसुमाली के लिए ललचाना, क्योंकि इनकी दशा सबसे अद्भुत है। ऐसे भ्रमरों की संगति में मथुरा रह के सूर के स्वामी श्रीकृष्ण ने हमारी याद भुलादी।

इस पद में अन्योक्ति अलङ्कार है।

२०८ कृष्ण के द्वारका प्रयाण का समाचार सुनकर विरह व्यथित गोपियों से कोई गोपी कहती है कि सुना है अब हमारे प्रियतम श्याम दूर जाना चाहते हैं। सखी ! मथुरा रहते हुए तो मिलन की कुछ आशा भी थी पर अब हम रो रो मरेंगी। ऐसा सुनकर सब सखियां स्तब्ध होकर उससे पूछती हैं कि तुमने यह किसने कहा ? कहाँ से सुनकर आई हो ? किस ओर रथ की धूल उड़ते तुमने देखी है ? बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही अत्यन्त उत्कण्ठा से वे कह उठती हैं चलो माई सब मिलके माधव के साथ चलें। नहीं तो सन्ताप से जलके मरना होगा। सखी उनके प्रश्न का उत्तर देती हुई कहती हैं कि पश्चिम की ओर एक द्वारिका नगर है जो चारों ओर समुद्र से घिरा है। यह सुनकर गोपियाँ कहती हैं कि हाय सूर के प्रभु श्याम ! तुम द्वारिका जा रहे हो परन्तु ये बालाएँ अब कैसे जियेंगी, क्योंकि इनकी संजीवनी जड़ी आप तो अब सदा के लिए बिछुड़ रहे हो।

इसमें रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार है।

२०९ कृष्ण के द्वारिका चले जाने पर गोपियाँ निराश होकर कहती हैं कि उतनी दूर से भला कोई क्यों आने लगा अर्थात् द्वारिका चले जाने पर अब

कृष्ण के ब्रज में आने की कोई आशा नहीं है। हे कृष्ण ! अपने वियोग का सन्देश भेजने के लिए भी अब हमें कहाँ और कौन मिलेगा ? अर्थात् इतनी दूर तो जाने के लिए कोई भी तैयार नहीं होगा। सुना है कि समुद्र के किनारे किसी का कोई भला ही देश है, जिसके बारे में हमने न कभी सुना न देखा। उसकी दूरी के बारे में केवल मन की कल्पना ही कर सकते हैं। वहीं नन्द-नन्दन ने एक नगर बसाया है जिसको द्वारिका कहते हैं। वहाँ सब घर सोने के बने हुए हैं राजा से लेके रंक तक अर्थात् छोटे बड़े कोई भी वहाँ घासफूस के छप्पर नहीं छाते। यह भी कहते हैं कि वहाँ के निवासियों को ब्रज में रहना अच्छा नहीं लगता। (लगेगा भी क्यों ? वहा तो समृद्धि ही समृद्धि है और यहाँ दीनता)। सूरदास कहते हैं कि विरहिणी गोपियाँ अनेक तरह विलाप करती हैं और अनेक उपाय भी करती हैं पर उनका चित्त नहीं लगा। वे व्यथित होके कहती हैं कि कहाँ जायें क्या करें ? कोई हमें हरि के पास पहुँचा दे तो बड़ा उपकार हो।

३१० गोपियाँ कृष्ण के वियोग में पश्चात्ताप करती हुई कहती हैं कि हमें तो नन्दनन्दन पर गर्व है। इन्द्र के क्रोध से जब ब्रज बहा जाता था तो उन्होंने ही गिरिवर गोवर्धन धारण करके उसे बचाया था। बलराम के कृष्ण के बलबूते पर ही हम किसी की परवाह नहीं करती थीं और निडर होके अपनी गैयाँ चराती थीं। हमारे सब बिगड़े कार्यों का सँभालने वाला बलवीर श्री कृष्ण हमारे संरक्षक थे। हमें उन पर पूरा विश्वास था परन्तु केशी और तृणावर्त के बध के पश्चात् उनकी कोई विश्वास बँधाने वाली बात नहीं हुई। प्रतीत होता है कि शायद अब उन्हें हम पर और हमारे ब्रज पर वह प्रेम नहीं रहा जो इसे वे मिटने से बचा सकें। इसीलिए तो उनकी तब से कोई खबर भी नहीं मिली। हाँ उनके जाने पर यह सुना था कि युद्ध में कंस परास्त हुआ और सूर के स्वामी श्याम विजयी हुए थे।

१ अन्त कथा—एक बार श्रीकृष्ण ने इन्द्र का अभिमान चूर्ण करने के लिए उनके लोगों से इन्द्र की पूजा करने को मना किया। इन्द्र ने क्रुद्ध होके प्रलयकाल के सम्वर्तक पयोदों से ब्रज पर मूसलाधार वर्षा की। तब श्रीकृष्ण ने गोवर्धन धारण करके ब्रज को बचाया। उनके अलौकिक पराक्रम और

लोकोत्तर चरित्र से प्रभावित होकर इन्द्र ने उनसे क्षमा माँगी।

२ केशी नामक एक राक्षस कंस द्वारा कृष्ण को मारने के लिये भेजा गया था। वह एक महान घोड़े के रूप में नन्द ग्राम में आया था। वह बड़ा बलवान था और उसके पैर जमीन पर और मुख आसमान में था। उसने गोकुल में एक अद्भुत उपद्रव खड़ा कर दिया था। उसने अपने पैरों से कृष्ण को कुचल कर मार डालना चाहा था। परन्तु कृष्ण ने बड़े पराक्रम से उसे मार गिराया था। (देखिए भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ३७)।

३ तृणावर्त्त भी एक दूसरा राक्षस कंस द्वारा बालकृष्ण को मारने के लिये नन्द ग्राम में भेजा गया था। यशोदा कृष्ण को गोदी में लिये थी कि यकायक यह राक्षस वात्याग्नि (बवडर- हवा का भूत) के रूप आया और सम्पूर्ण व्रज को धूल से भर दिया। अपना पराया कुछ नहीं सूझता था तृणावर्त्त बालकृष्ण को यशोदा की गोदी से आकाश में उड़ा ले गया। व्रज के लोग कृष्ण को यों अदृश्य हुआ देख कर बड़े क्षुब्ध हुए। सब लोग रोने लगे। थोड़ी देर बाद बाल कृष्ण ने आकाश में उड़ते हुए दैत्य को मार डाला। थोड़ी देर बाद व्रजवासियों ने एक चट्टान पर मरे हुए दैत्य को गिरते देखा। कृष्ण भी उसके साथ वहीं उसकी छाती पर बैठे आ पड़े। दैत्य के मरने से उपद्रव शांत होगया था। व्रजवासियों ने कृष्ण को पाकर बड़ा आनंद मनाया।

(देखिये—भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ७)

३११ गोपियाँ श्रीकृष्ण के वियोग में वर्षा के आगमन को देखके कृष्ण की याद करके व्यथित होकर आपस में कहती हैं कि हाय री मा! ऐसे ही पावस ऋतु के आगमन में श्रीकृष्ण हमारी याद करके पहले की तरह आ जावेंगे। देखो वरषा आई। रंग बिरंगे अनेक बादल सुन्दर वेष धारण किए हुए उठ रहे हैं। इस समय आकाश की शोभा सब ऋतुओं की अपेक्षा अधिक होती है। बगुले उड़ रहे हैं, तोतों के झुण्ड के झुण्ड बहुत सुशोभित हैं मयूर और चातक शोर कर रहे हैं। गर्जते हुए बादलों में विद्युन्माला की चमक देख कर अनेक प्रकार की मनोगत अभिलाषाएँ बढ रही हैं। पृथ्वी के शरीर पर प्रियतम के मिलन के कारण तृण रूपी रोमाच हर्षित हो रही है। हंस (सम्भवत यहाँ कल हंस वत्तक से तात्पर्य है क्योंकि वैसे हंस तो वर्षागम

में अदृश्य हो जाते हैं।) कोकिल, तोता मैना और भ्रमर समूह नाना प्रकार से गुंजार कर रहे हैं। आनन्द से उमड़ कर बादल मंगलप्रद जल भी वर्षा कर रहे हैं। पक्षी विषाद रहित दीख पड़ते हैं। अनेक प्रकार के तरु वनस्पति कुटज, कुन्द, कदम्ब, कचनार, कनियारी का पेड़, कमल केतकी और कनेर आदि की प्रभा बसन्त काल के समान सुन्दर हो रही है। घने घने पेड़ों पर कलियाँ खिल रही हैं, सुन्दर फूलों का सुगन्ध फैल रहा है। इन सब हृदय हारिणी शोभाओं को देख कर मन में माधव से मिलने की आशा घर कर रही है। मनुष्य से लेकर पशुपक्षियों तक जिनके अनन्त नाम हैं उन सबके प्रियतम जो विदेश प्रवासी हैं इस ऋतु में स्वदेश का सुख याद करके अपने घर की ओर प्रयाण करते हैं। सूर कहते हैं कि व्रजवासियों के चित्त में और कोई उपाय नहीं दीखता। अन्य कोई विचार उनके दिल में कभी नहीं उठता। अगर उठता है तो केवल कृष्ण की समीपता का। उसे वे कभी नहीं भूल पाते। वे कृपालु कृष्ण की सुन्दर चाल और मृदुल हास की सदा याद करते रहते हैं। उनके सुन्दर कपोल और चंचल कुण्डलों का वृत्ताकार प्रकाश उनके चित्तों में चुभा रहता है। वे मनाती हैं कि कृष्ण हाथ में वेणु लेकर गाते हुए बहुत से ग्वाल बालों को बटोर कर संग लिए हुए कब आवेंगे। वह सौभाग्यशाली दिन कब आवेगा जबकि वे हमें अपनी इन्हीं आँखों से उनकी बाल लीलाएँ फिर से देखेंगी ? उनको बार-बार उनकी याद रहती है जिससे वे बड़ी व्याकुल होती हैं। वर्षाकालीन हवा के झोंके से दीप ज्योति के समान वे चंचल और ज्योतिहीन हो जाती हैं ! उनके विलाप को सुनकर परमभक्त सूरदास अपने प्राणों में श्री कृष्ण की भक्तवत्सलता पर अटूट विश्वास के कारण कह रहे हैं कि वे भक्त वत्सल दर्शन देकर इन दुखियारी गोपियों के दुःख अवश्य ही दूर करेंगे। वे भक्त हृदय में इस उत्कट प्रेम की पीर को कभी नहीं सहन कर सकते। भक्तों की दीनता पर द्रवित होने की उनकी आदत है।

इस पद में रूपक और उपमा अलङ्कार है।

२१२ गोपियाँ विरह व्यथा में पागल हो गईं, परन्तु कृष्ण न आये। अन्त में उन्होंने विचार बांधा कि चलो सब मिलकर उन्हें लिवा लावें। उनकी दीन बन्धुता पर उन्हें अब भी विश्वास है। इसलिये वे कहती हैं कि न हो तो हम

सब मिलके गोपाल को लिवा लावे। उनके चरण पकड़ के निहोरे करके और प्रार्थना पूर्वक हलधर (बलराम) को भी विशाल बाँह पकड़ के लिवा लावें। नन्द फिर एक बार अपने बच्चों को लेके देख लें। फिर से कृष्ण यहाँ गोप और गोपियों के साथ अपनी गौएँ गिनके तथा मधुर वेणुवादन सीखकर अपना काल बितावें। यद्यपि आजकल वे महाराज हैं, उनकी सुख सम्पत्ति अपार है, मोती और हीरों की कोई गिनती नहीं है तथापि सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हमें विश्वास है कि वे हमारा निमन्त्रण स्वीकार करेंगे क्योंकि उनका मन अब भी घुंघुची (गुंजा) की माला की ओर आकर्षित है। यह प्रमाण है कि राजा होते हुए उन्हें गरीबी और गरीब ही प्यारे हैं।

३१३ विरहिणी गोपियाँ विरहोन्माद में बादल द्वारा सन्देश भेजने के लिये उत्कंठित होके कहती हैं कि हे भैया बादल! हम तुम्हारी बलिहारी जाती हैं। तुम्हारे ही जैसे रूप के हमारे प्रियतम भी हैं जो आजकल समुद्र के जल के किनारे बसी हुई द्वारका रह रहे हैं। तुम वहाँ जाके विरहिणी के दुःख के नाशक बनो। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि करुणानिधि नाम से प्रख्यात श्यामसुन्दर का संग ऐसा ही है। अर्थात् उनका प्रेम ऐसा है कि बिछुड़ जाने पर अत्यन्त दुःखद होता क्यों न हो 'बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुण दुःख देहीं। (तुलसी)'

३१४ गोपियाँ विरहावस्था में कृष्ण के सौन्दर्य का स्मरण करके कहती हैं कि उनके अंगप्रत्यंगों के लिए कवियों ने जो उपमान प्रस्तुत किए हैं वे न्याय संगत ही हैं। वे कहती हैं कि श्रीकृष्ण के अङ्गों की उपमाएँ कवियों ने ठीक ही कही है। करोड़ों अनंगों की शोभा वाले वे मथुरा चले गए। वे अब वहाँ से क्यों लौटने लगे? भाव यह है कि यदि कोई कुरूप होता तो उसके चाहने वाला कोई न होता और वह बेचारा 'हमको और न तुमको ठौर' सोच के फिर यहीं आ जाता। पर भगवान ने हमारे प्रियतम को तो रूप निधि दी है वे तो बहुश्रेयसी हैं वे क्यों लौटने लगे? उनके सिर पर विराजमान मयूर मुकुट है जो दूर से ही इन्द्र धनुष की शोभा प्रदर्शित करता है। यह उपमा भी ठीक ही है क्योंकि करोड़ों उपाय करने पर भी उस मुकुट को कोई छू नहीं सकता उनके केशपाशों को भ्रमर कहना नितान्त ही उचित है क्योंकि वे भ्रमरों के

समान चक्कर काट २ के अनेक बेलों के रस को चखते फिरते हैं और कमल की कलियों में रहते हुए भी अपने वश रूपी बास की ओर ही लौ लगाए रहते हैं। केशव के कुण्डलों के लिए मकर का उपमान रखना भी अत्यन्त उचित है क्योंकि मगर (मछली) के समान वे भी सदा (झिलमिलाने के कारण) चञ्चल रहते हैं। उनके नेत्रों को कमल कहना ठीक ही है क्योंकि कमल रात्रि में सकुचित होते हैं और उनके नेत्र भी हमारे बुरे दिन आने पर सकुचित हो रहे हैं। यहाँ रहके प्रेम जताने और अलग हो जाने पर सुध भी न लेना श्रीकृष्ण का तोताचश्म होना ही प्रगट करता है। सम्भवतः उनके नेत्रों का रात्रि में सकोच दिखाने से कवि का यही तात्पर्य है। यों रात्रि में सोने के कारण तो सभी के नेत्र सकुचित होते ही हैं। पर इस सकोच में कुछ विशिष्टता नहीं श्रीकृष्ण की नासिका को कविकुल ने शुक कहकर गाया है। यह भी यथार्थ ही है क्योंकि जिस प्रकार तोता पिंजड़े में रहने अपनी मीठी बोली से लोगों को मोहित करता है, इसी तरह से उनकी नासिका भी शरीर पजर में निवास करती हुई वेणु को बजाकर लोगों को मोहित करती है। उनकी भ्रूलता प्रेक्षकों के प्राण हरण करने के कारण यथार्थ ही है। स्वभावतः कठिन होने के कारण उनके दाँतों को हीरा कहना भी युक्ति सगत ही है। उनके अधर को बिम्बाफल की उपमा देना भी न्यायोचित है क्योंकि दोनों के सेवन से बुद्धि का नाश होता है। ये सब उन कृष्ण के ही आश्रय में रहते हैं। उनके उद्दण्ड भुजदण्ड शत्रुओं के नाशक हैं। फिर भला वे हमारे कन्धों पर कैसे और कब तक ठहर सकते हैं ? उस पर कोढ में खाज यह कि उन भुजाओं को, सात छिद्रों से युक्त (सब अवगुणों से भरी-पूरी) मुरली दूसरों के मन को (हरण करने वाले) वशीकरण मन्त्र पढ़ाती रहती है। एक तो करेला और नीम चढ़ा। श्रीकृष्ण के अङ्ग-प्रत्यङ्ग ही काफी मनोमोहक हैं उस पर फिर मुरली का सयोग बताओ फिर कोई कैसे अपने को काबू में रख सकेगा ?

इस पद में रूपक उपमा श्लेष तथा उपमालङ्कार है।

२१५. विरह व्यथा से पीड़ित गोपियाँ तथा राधा श्रीकृष्ण से मिलने की उत्कठा प्रकट करती हुई कह रही हैं कि हे माधव ! तुम कम से कम एक बार मिल जाओ। कौन जानता है कि ये प्राण पखेरू कब उड़ जायगे ? अगर न

मिले तो हमारे मन की (उत्कंठा) मन में ही रह जायगी और नहीं तो तुम नंद बाबा के यहाँ मेहमान बनके ही आजाओ। हम तुम्हें आधे पल के लिए ही देख लें। हाय! सब बातें बन जाने पर भी भाग्य ने सब पलट दिया कि हमारे लिये तुम्हारे दर्शनों की बाधा खड़ी हो गई अर्थात् तुम्हारे दर्शन नहीं होते। श्रीकृष्ण के दर्शनों के लिये उत्कंठित गोपियों के प्रेम पर बलि जाने वाले कृष्ण भक्त सूर उनकी इस भावना पर मुग्ध होकर कह रहे हैं कि जो सुख गोपियों ने प्राप्त किया उसके लिए प्रसिद्ध भगवद्भक्त शिव और सनकादि भी सदा तरसते रहते हैं। राधा आज कृष्ण के दर्शनों के लिए विलाप कर रही है। सचमुच श्रीकृष्ण की रूप माधुरी अथाह है जिससे बिछुड़ के राधा जैसी विश्वविमोहिनी की भी यह दशा है।

३१६ गोपिया अपनी विरह व्यथा का वर्णन करती हुई कह रहीं हैं—हमारे नेत्र रात दिन बरसते रहते हैं। जब से श्रीकृष्ण गोकुल से गए हैं हमारे यहां सदा वर्षा ऋतु लगी रहती है। अविरल अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने के कारण हमारी आँखों में कभी अंजन नहीं लग पाता। आँसुओं के साथ बह-बह के अंजन ने हमारे कपोलों को तथा वक्षःस्थल को काला कर दिया है। हमारे वक्षःस्थल पर आँसुओं के प्रवाह सदा प्रवाहित होते रहते हैं जिस के कारण हमारी चोली कभी नहीं सूखती। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि आसुओं की निरन्तर वर्षा होने के कारण गोकुल में पानी की बाढ़ आ रही है। हे स्वामिन्! अब आके इसका उद्धार कीजिए सचमुच घनश्याम के विरह में गोकुल निवासी अत्यन्त व्याकुल हैं।

इस पद में रूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकार है।

३१७ गोपियाँ कृष्ण के विरह में अपनी दशा का वर्णन करती हुई कहती हैं कि एक सुन्दर कमल की कली के आनन्द के लोभी अर्थात् श्रीकृष्ण के मुख कमल के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित ये दो भ्रमर (हमारे नेत्रों की दो पुतलियाँ) सदा चिन्तित रहते हैं। स्वर्णलता और नवीन पखड़ी के पास रहने वाले ये भ्रमर उचट कर चले गए। स्वर्णलता से गोपियों की गौर शरीर यष्टियों और नवीन पखड़ी से उनके कमल नेत्रों से तात्पर्य है। कभी-कभी ये भ्रमर अपने परों(पलकों) को समेट के आँसुओं के प्रवाह को बरसाते हैं। कभी-

कभी काँपते हुए नितान्त चकित होके अपनी लोलुपता मे खो जाते हैं। यद्यपि ये चन्द्रमण्डल (मुख) के बीच में निवास करते हैं और इनने अङ्ग प्रत्यङ्ग अमृत में सराबोर कर रक्खे हैं तथापि इतने यत्नों के करने पर भी इनकी रक्षा असम्भव हो रही है। ये व्यथा से सदा तड़पते ही रहते हैं और मुँह न होते हुए भी ये अपनी कहानी कहते रहते हैं। इनकी इस प्रकार व्यथा पूर्ण दशा को देखके शुक (नासिका) कमल (मुख) कोकिला (वाणी) और उरगकुल अर्थात् नागो का समूह (केशपाश) सभी चिन्तित से (खोये हुए से) रहते हैं। आँखों के खिन्न होने से हमारी प्रत्येक अङ्ग माधुरी फीकी हो गई है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ विरह में श्याम को पुकारती हुई कहती हैं कि आप स्वय आकर के क्यों न देख जाओ भला आपका यहाँ आके इनकी दशा देखने से क्या बिगड़ जायगा ?

इस पद मे रूपकातिशयोक्ति एव विभावना अलकार है।

३१८ गोपियाँ श्रीकृष्ण के विरह मे कामदेव के प्रहारो को वर्णन करती हुई तथा काम को जो उन्हें अपना शत्रु शिव समझकर प्रहार करता है सावधान करती हुई कहती हैं कि वे उसकी शत्रु शिव नहीं हैं इसलिए उसे उन पर प्रहार नहीं करना चाहिए। गोपियाँ काम से कहती हैं कि स्त्रियाँ सबके लिए अवध्य हैं तू उनका वध मतकर। हे कामदेव ! हमारे शिर पर मोतियों की माला है यह गगा की धारा नहीं है। तुम इसे गलती से गगा की धार समझ के शिव का धोखा खाके हम पर वार कर रहे हो। विरहावस्था में भला मोतियों की माला का क्या काम ? इस शका का समाधान करती हुई वे कहती हैं कि सुन्दरियों ने आज घनश्याम श्रीकृष्ण के समागम की आशा से सोलह शृ गार कर रक्खे हैं। हमारे माथे पर तिलक है तुम इसे चन्द्रमा समझ के हमें चन्द्र शेखर जानके मार रहे हो। हमारे सिर पर वेणी की गाठ (जूड़ा) है यह सहस्र फण वाला शेष नहीं है जिसकी भ्रान्ति से तुम हमें शिव अपना शत्रु समझ के हमारे ऊपर वार कर रहे हो। हमारा यह शरीर कस्तूरी तथा चन्दन से भूपित है तुम इसे भभूत और चन्द्र की सफेदी समझे बैठे हो। अरे मूर्ख ! यह भभूत और चन्द्र की सफेदी नहीं है। वक्षः स्थल पर धारण की हुई यह काली चोली है यह शिव की हाथी की खाल नहीं

हैं। भला सोच तो कि यदि हमें शिव होतीं तो हमारे नन्दीगण न होता ? पर तुम्हीं विचार कर देखो कि यहाँ नन्दीगण कहाँ है? यह सब कहने पर भी सूर कहते हैं कि काम उन्हें नहीं छोड़ता। अतएव वे व्यथा से पीड़ित होकर श्याम को पुकारती हैं और कहती हैं कि हे स्वामिन् ! तुम्हारी अनुपस्थिति में काम हमसे जबरदस्ती कर रहा है। हमारा ख्याल था कि वह हम अपना शत्रु महादेव जानकर हमारे ऊपर चोट करता है पर यह बात नहीं है। हम उसकी भ्रान्ति दूर करके उसे सचेत भी कर देती हैं फिर भी वह हमें नहीं छोड़ता।

इस पद में अपन्हुति अलंकार है।

इस पद का मूल भाव निम्नलिखित संस्कृत श्लोक से लिया गया है—

जटा नेयं वेणी कृतकचकलापो नगरलं,
गले कस्तूरीयं शिरसि शशिलेखा न कुसुमम्।
इयंभूतिर्नाङ्गे प्रिय विरहजन्मा धवलिमा,
पुराराति भ्रान्त्या कुसुमशर ! किं मां व्यथयसि ॥

३१६ विरहावस्था में उद्दीपक कोकिल की वाणी सुनके अत्यंत व्यथित हो गोपियाँ उससे प्रार्थना करती हैं कि वह श्रीकृष्ण के निवास स्थान के पास जाके बोले तो सम्भवतः उनमें भी उत्कंठा जाग्रत हो और वे यहाँ आने का उपक्रम करें। वे कहती हैं कि हे कोकिल ! तुम अपनी स्वर माधुरी कृष्ण को जाके सुनाओ और उन्हें मथुरा से उचाटकर इस व्रज में ले आओ। हम तुम्हारी शरण में आये याचक बनी हैं। ऐसी अवस्था में तुम्हारा कर्त्तव्य हो जाता है कि तुम सर्वात्मना हमारी रक्षा करो। क्योंकि चतुर लोग शरणागत याचक को अपना तन, मन, धन अर्थात् सर्वस्व दे डालते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। तुम्हें तो आज अपनी बोली के बदले में दुष्प्राप्य यश मिल रहा है उसे क्यों नहीं खरीद लेते ? हीरों की कीमत की चीज कौड़ियों में मिल रही है फिर ऐसा अवसर क्यों खो रहे हो ? जहाँ तक बन सके पराया उपकार करना ही संसार में चतुरता है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कोकिल से कहती हैं कि तुम जाके श्री कृष्ण को सूचित करदो कि आज ब्रज ब्रज में बसन्त

माँ! नन्दनन्दन क्यों रट रहे हैं? हमारे चित्त से वह उनकी मोहनी मूर्ति क्षण भर को नहीं भूलती। हा! वह समस्त संसार की शोभा के केन्द्र हमें छोड़कर चले गए। अब कृष्ण के बिना बछड़ों को कौन चराए और दूध दुहाकर कौन लाए? हमें याद आती है कि वे किस प्रकार अपने ग्वाल मित्रों के साथ लेकर माखन खाते डोलते थे। कोई गोपी किसी दूसरी से कहती है कि अरी सखी! मैं ज्यों ज्यों उनकी याद करती हूँ त्यों त्यों मेरा मन अधिक मोहित होता है। सूर कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि श्रीकृष्ण के बिछुड़ जाने पर इन क्षोभों से पीड़ित होकर भला अब हम कैसे जी सकेंगी?

३२१ श्रीकृष्ण का वियोग अनेक सङ्कटों का कारण है इस आशय को प्रकट करती हुई एक गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखी! श्रीकृष्ण की उपस्थिति में हमें कोई दुःख नहीं था पर आज अनेक दुःख हैं। इसका कारण यह है कि वे परम चतुर अत्यन्त सुख और सुषमा के केन्द्र वे श्री कृष्ण अपने विश्वविमोहन रूप की छड़ी लेकर हमारे शरीर के सुन्दर द्वारपाल थे। अब उनके वियोग में इस सूने हृदय भवन में काम की आमदरफ्त (आवाजाई) शुरू हो गई है या काम का प्रवेश हो गया। मन में दुःख आ धमकता है वह किसी की रोक नहीं मानता। माने भी कैसे घर सूना है तो फिर उसे किसका डर हो सकता है। हमारे प्राण भी अब निरङ्कुश हो गए। वे उच्छ्वासों के साथ निश्शक होकर भीतर से निकल जाते हैं। रात में पलक कपाटों से खुले रहने के कारण चन्द्रमा सैकड़ों बाण मारता है। श्रीकृष्ण के बिना मेरी यह दशा हो गई है। इससे छुटकारा पाने की कोई सूरत नहीं है। अतएव सूर कहते हैं कि व्यथित गोपियाँ कृष्ण को पुकारती हुई कहती हैं कि हे चतुर रसिक नन्दकुमार! तुम हमारे स्वामी हो। हमारी ऐसी सङ्कटापन्न अवस्था है आकर शीघ्र ही दर्शन दीजिए।

इस पद में रूपक तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

३२२ विरहीजनों के लिए वर्षा (श्रावण और भाद्र मास) अत्यन्त दाहक प्रसिद्ध हैं। अतएव श्रावण के दो होने की खबर पाके गोपियां आगामी सङ्कट की आशङ्का से व्यथित होकर आपस में कहती हैं कि सुना है कि अबकी साल दो श्रावण हैं। हमें यही बात बार बार दुखित कर रही है कि श्रीकृष्ण ने

आने को कहा था पर अभी तक आए नहीं। क्या करें ? तब तो हम बिना सोचे विचारे उनसे प्रेम कर बैठीं अब उसी का यह परिणाम भुगत रही हैं। सखी! इस दुःख ने मारे तो हम कहीं ऐसी जगह निकल जातीं जहाँ कोई हमारा नाम भी न सुन पाता तो अच्छा होता। उन्होंने एक ही बार जाकर हमें सगरे लिए भुला दिया और मथुरा से प्रेम बढ़ाने लगे। सूरदास कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि भला अब उन्हें हमारी याद क्यों आने लगी ? उन्हें तो अब हमसे कहीं अधिक रूपवती स्त्रियाँ प्रेम करने के लिए मिल गई हैं।

३२३ श्रीकृष्ण की ढिठाई की शिकायत करती हुई गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि अब पछताने से क्या होता है ? हमने खेलते खाते तथा हँसते हुए उनके साथ रहकर भी हमने उन श्याम के गुण न जान पाए। हमें नहीं मालूम कि वसुदेव कौन हैं और वे कृष्ण को धरोहर रूप में यहाँ कब लाए थे ? क्या जब वे उन्हें लाए थे उस वक्त का उनका कोई भी गवाह है ? ऐसी हालत में हम तो ये बात मानने को कभी तैयार नहीं हैं। उद्धव ! तुम तो काफी होशियार हो तुम्हीं बताओ कि यह कहाँ तक ठीक है कि बिना गवाही साखी के हम यह मानलें कि वे यहाँ धरोहर के रूप में थे। अगर तुमने उन्हें धरोहर के रूप में लाते देखा हो तो बताओ। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि धरोहर आदि बातें तो केवल (कपोल कल्पित) कहानियाँ हैं। वास्तव में तो बात यह है कि उन्होंने (श्याम ने) हमसे कपट प्रेम किया। जिस प्रकार कोयल बचपन में कौए से प्रेम करती है परन्तु पलकर पुष्ट होकर बसन्त आने पर अपने कुल को पहचानकर उसमें मिल जाती है। इसी प्रकार कृष्ण भी बचपन में यहाँ रहकर हमसे कपट स्नेह दर्शाते रहे और बड़े होकर अपने कुल में जा पहुँचे।

३२४ विरह में क्षीण हुई राधा की चर्चा करती हुई कोई गोपी अपनी सखी से कह रही है कि हे सखी ! माधव के वियोग में राधा के शरीर की दशा बिलकुल उलटी हो गई है। उसके शरीर की चन्द्र कान्ति अब नहीं दिखाई देती है। अत्यन्त कृशता के कारण कालिमा आ जाने के कारण वह केवल कलङ्कमयी ही दिखाई देती है। भाव यह है कि राधा की शोभा पूर्ण चन्द्र के समान थी अब कृशता के कारण चन्द्रमा का कान्ति का अंश तो मिट गया केवल उसका कलङ्क शेष रह गया है जो उसकी कालिमा से अनुमेय है। विरह

कृशता के कारण राधा की आँखें भी ज्योति विहीन हो गई हैं। अतएव ऐसा मालूम पड़ता है कि उसके नेत्रों से शरत्कालीन कमल की शोभा को किसी ने बिलकुल निचोड़ लिया है। जिस प्रकार से अग्नि के सन्ताप से सोना घरिया से पिघलकर बह जाता है, उसी प्रकार विरहाग्नि के ताप से राधा के शरीर का स्वर्ण पिघलके बह गया। स्वस्थ दशा में केले के पत्ते के ऊर्ध्वभाग के समान सुन्दर पृष्ठ भाग अब कृशता के कारण उलटी होकर उसके अधोभाग जैसी हो गई है। कृशता में रीढ़ की हड्डी के निकल आने के कारण यह कल्पना है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि राधा के शरीर की सम्पत्ति तो सब भगवान् कृष्ण ने हरली उसके बदले में विपत्ति दे दी है।

इस पद में उत्प्रेक्षा उपमा तथा परिवृत्ति अलङ्कार हैं।

३२५ विरहिणी ब्रजाङ्गनाएँ चातक की बोली सुनकर उससे कृष्ण को मिलाने की सानुरोध प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे पपीहे! तुम श्याम को हमारा स्मरण कराओ। जहाँ पर श्रीकृष्ण लेटे हों वहाँ अपनी ऊँची पुकार सुनाओ ताकि उन्हें मालूम हो जाय कि गर्मी बीत गई और वर्षा ऋतु आ गई जिसके कारण सबके चित्त में उत्कण्ठा जाग्रत हो गई है। श्रीकृष्ण के बिना ब्रजवासी लोगों की ऐसी दशा है जैसी बिना कर्णधार के नाव की दशा हो जाती है। चातक! हमें विश्वास है कि वे तुम्हारा कहना जरूर मानेंगे। तुम उन्हें निहोरे करके लिवा लाओ। सूर के स्वामी कृष्ण का अब की बार और इन नेत्रों को दर्शन करा दो।

इस पद में दृष्टान्त अलङ्कार है। विरह ही उन्माद अवस्था का सम्यग् दिग्दर्शन है।

३२६ श्रीकृष्ण के वर्त्तमान वैभव को देखकर विरह व्यथित गोपियाँ परस्पर उन पर व्यङ्ग्य करती हुई कहती हैं कि अरी सखी! कृष्ण अब यहाँ क्यों आने लगे! वे राजा हैं और तुम ठहरे ग्वाल! तुम उन्हें बुलाने की हिम्मत कैसे कर रही हो हमें तो यही सोच है। (भाव यह कि 'सम ही सों कीजिए ब्याह बैर और प्रीति' तथा 'समान शील व्यसनेषु सख्यम्' आदि उक्तियों के अनुसार बराबर वालों में प्रेम तथा आवा जाई का व्यवहार ठीक होता है। फिर भला

विषम वर्ग में यह व्यवहार कैसे चल सकता है)। गोपी कहती है कि तुम लोग पहले के ही धोखे में हो तुम्हें नहीं मालूम कि अब उनके सिर पर छत्र रक्खा हुआ है तथा स्वर्ण और मणियों के मुकुट सजे हुए हैं अब उन्हें अपना पुराना मयूर मुकुट अच्छा नहीं लगता। तुम्हें नहीं मालूम कि अब वे पुरानी उपाधि ब्रजराज सुनकर पीठ फेर लेते हैं अब तो वे अपने यदुकुल सम्बन्धी प्रशस्तियाँ को कहलवाते हैं। यदि तुम लोग (ब्रजवासी लोग) वहाँ जाना चाहो तो भी अनेक बाधाएं हैं। उनके महलके हरएक द्वार पर द्वारपाल रहते हैं और उनके यहाँ अनेक सहस्र दासियाँ हैं। ऐसा वैभव वे आजकल भोग रहे हैं। अतएव सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि ऐसी सम्पन्नदशा में रहते हुए वे बहुत सुकुमार हो गए हैं। वे यहाँ गोकुल में गैयों के दुहने के दुःख को कहाँ तक सहन कर पावेंगे।

३२७ विरह से पीड़ित होकर और उद्धव के सन्देश से तिलमिलाके गोपिया प्रतिसंदेश कह रही हैं कि कृष्ण ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि बालपन का स्नेह बड़ा सुखदायी होता है। हे सुजान ! तुम यह जानकर (शैशव के मधुर स्नेह को जान के) दूर रह कर छोड़ो मत। भ्रमर, साप तथा काक और कोकिल की प्रेम पद्धति पर से अपनी आस्था दूर करो। उद्धव तथा अक्रूर के कृत्य बड़े ही क्रूर हैं जिनके कारण घर बन सब उजड़ हो गए। तुम इन्हें बढ़ावा देकर हमारा सत्यानाश न करो। हम दो प्रार्थनाएँ लिखके कर रही हैं :—हे कृपालु ! आप इन प्रार्थनाओं पर सावधानी से ध्यान दीजिये। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हे प्रभु ! किसी प्रकार आवे दर्शन दीजिए अन्यथा ये हमारे तन मन निर्जीव हो रहे हैं।

३२८ गोपियाँ विरह-कृशिता राधा की क्षीण कान्ति को देख के कह रही हैं कि इस राहु (काम) ने धड़ (अङ्ग) न होते हुए उस मुख चन्द्र को ग्रस लिया। न जाने इस राहु (काम) ने अपने शत्रु शिव (मुख) को यहाँ से ढूँढ निकाला। सम्भवतः यह उसी (मुख) के मध्य नेत्रों में अजन के रूप मे पहले से ही रहता रहा। आज विरह रूपी सागर से बल पाकर ऐसी जोर से प्रकट हुआ कि कुछ कहते नहीं बनता। यह आज असह्य वेदना देके अपने दाँतों से उस मुख को ऐसे काटता है कि नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होते हैं जिन्हें छूते

नहीं बनता। आंसुओं के रूप मे मानों मुख चन्द्र का अमृत भीतर से निकल निकल के वक्षःस्थल पर प्रवाहित हो रहा है और इस तरह अमृत के निकल जाने से क्षीण हुआ मुख चन्द्र मक्खन रहित मट्टे के समान सार हीन हो गया है। सूरदास कहते हैं कि ऐसी ग्रहणावस्था में हरि-दर्शन का दान किए बिना इसका सुखमय प्रकाश नष्ट ही हो गया है अर्थात् हरिदर्शन का दान किया जाय तो ग्रहण से छुटकारा हो और इस मुख चन्द्र को सुखदायी प्रकाश पुन. मिल जावे, अन्यथा यह सुखमय प्रकाश अस्त ही समझो।

इस पद में रूपक, रूपकातिशयोक्ति उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलङ्कार है।

३२६ गोपियाँ उद्धव से श्रीकृष्ण द्वारा अपना मन चुरा लेने की शिकायत कर रही हैं। वे कहती हैं कि चोरी करना गोपाल की बचपन की आदत है। न मालूम ये चोरी के दाव पेंच किससे सीखे हैं? जब ये चुराकर मक्खन और दूध खा जाते थे तब हम लोग इनकी चोरी की इतनी ही यह समझ के सतोष करके उसे सहन कर लेती थीं परन्तु हे सखी! अब जब ये मन रूपी मणि चुराने लग गये तो हम इतनी बड़ी क्षति कैसे बरदाश्त करें? हे मधुप (उद्धव) श्याम से हमारा सदेश राजनीति को समझाकर कह देना। कि तुम यदुराज होकर अब भी अपनी पुरानी आदत नहीं छोड़ते। यह उचित नहीं। आज तुम ब्रजवासियों के बुद्धि विवेकादि सर्वस्व चुराके उन्हें चकमा देके मुसकरा रहे हो। हे मधुप! अधिक क्या? हम प्रभु के गुण अवगुणों की शिकायत किससे जाके करें? कहा भी है 'राजा हुै चोरी करे न्याय कौन पै जाय।'

इस पद में रूपक अलङ्कार है।

३३० विरहावस्था में दुःखदायी विविध उपकरणों के होते हुए भी राधा का जीवन बना रहा। वे मरी नहीं। इसका कारण समझ में नहीं आता। इसी आशय को व्यक्त करती हुई वह अलङ्कारिक भाषा में उद्धव से कह रही हैं कि यद्यपि मैंने बहु उपाय किये कि मेरा मरण हो जाय तथापि हे मधुप! मुझे हरि की प्रियतमा समझके किसी ने मेरे प्राण नहीं लिए। उन्हीं उपायों की चर्चा करती हुई वह कहती हैं कि मैंने अपने हाथसे सुगन्धयुक्त फूलों को अपनी शय्या पर रक्खा, तथा फिर अपनी सखी को सम्बोधन करके कहती है :—हे सजनी! शरत्कालीन चद्रमा के सम्मुख हुई तथापि मेरे अङ्ग नहीं जले, सुर-

च्छित रहे। चातक, मयूर, कोकिल तथा भ्रमर की स्वर माधुरी को अनेक बार कानों में उँडेला और अपलक नेत्रों से सावधानी के साथ काम की चाटों को परखती रही पर परिणाम कुछ न निकला। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि मैं रातदिन नन्दनन्दन को रटती रही। वे इस हृदय से क्षण भर के लिए भी पृथक नहीं हुए। इसीलिए काम ने बड़ी आतुरता से अपनी चतुरंगिणी सेना सजाके मेरे ऊपर चढ़ाइ की आयोजना की पर एक बाण भी न चला सका। मुझे नहीं मालूम कि इस शरीर में ऐसी कौनसी खूबी है जिससे सबको डर लगता है। सूर कहते हैं कि राधा कहती है कि मुझे तो इसका एक ही कारण समझ में आता है कि श्रीकृष्ण के भय से ऐसे ऐसे नामी योद्धा अपने पराक्रम को भुला बैठे और मेरे ऊपर बार न कर सके।

इस पद्य का मूल भाव भवभूति के निम्नलिखित श्लोक से लिया गया है–

धत्तेचक्षुर्मुक्त्लिनि रणत्कोकिले बालचूते,
मार्गेगात्र क्षिपति बकुलामोदगर्भस्यवायो,
दावप्रेम्णा सरसबिसनीपत्रमात्रोत्तरीय,
ताम्यन्मूर्ति श्रयतिबहुशो मृत्यवेचन्द्रपादान्॥

इस पद में काव्यलिंग अलङ्कार है।

२३१ कृष्ण को छोड़कर योग को अपनाने की बात सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमारी माधव से मुख मोड़ने से नहीं बन सकती। जिन आँखों ने चन्द्र के समान आह्लादकारी श्याम का दर्शन किया है वे आँखें सूरज से कैसे मिलाइ जा सकती हैं। अर्थात् उन आँखों से सूरज नहीं देखते बनेगा। यह योग मुनियों के मन में रहने वाला है। मन्दराचल के भार को कमठ (कछुए) के शरीर को छोड़ और कौन सहन कर सकता है। तरुणियों के हृदय के कुमुद से सुकुमार बन्धनों को हाथी बिना तोड़े कैसे रहेगा। अर्थात् स्त्रियों का हृदय बड़ा कोमल है उसमें योग का आधान हाथी के समान है। इस योग का भार वह सुकुमार हृदय सहन नहीं कर सकता। नीलाकाश से सुन्दर घनश्याम को कोई धुँएका धोखा देके नहीं बहला सकता। अर्थात् घनश्याम और धूम्र में वर्ण साम्य है सही परन्तु घनश्याम की जगह धुँआ से भेंटकर श्याम के भक्तों को सन्तोष नहीं हो सकता। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से

कहती हैं कि कमल से प्रेम करने वाले भौंरों का मन चपक के फूलों से नहीं दल सकता। भाव यह है कि गोपियों का मन कृष्ण से मिलने के लिए त्कण्ठित है। वह योग को कैसे अपना सकता है?

इस पद मे निदर्शना अलङ्कार है।

।३२ विरह व्यथित कोई गोपी अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए उद्धव से प्रपने नेत्रों की व्याकुलता की कहानी कह रही है। वह कहती है कि हे उद्धव! रे सब अङ्गों से आखें ही अधिक दुखी हैं। (प्रिय के दर्शनों के अभाव में था 'सर्वेन्द्रियेषु नयन प्रधानम्' के अनुसार नेत्रेन्द्रिय के मुख्य होने के कारण ाखों की व्यथा का उत्कृष्ट होना न्याय सगत ही है)। मैं अनेक उपाय करके ार गई पर ये आखें बड़ी व्यथित रहती हैं तथा इनका सन्ताप कभी शान्त हीं होता। ये सदा निर्निमेष रहती हैं व्यथा से अत्यन्त बेचैन हो गई हैं। श्रीकृष्ण के दर्शनों के अभाव में विरह की वायु से भर गई हैं जिससे वे खुली ही खुली रह गई हैं और यों ही नगी टकटक देखती रहती हैं। अरे भौंरे! उद्धव) ये व्यथित नेत्र तुम्हारी भारी ज्ञान की शलाका को कैसे सहन कर सकती हैं। सूर कहते हैं कि गोपी उद्धव से कहती हैं कि तुम हमारी आखों की यथा हरण करने वाले श्रीकृष्ण के रूप रूपी अञ्जन को लादो ताकि ये शीतल ो जावें।

इस पद में रूपक अलङ्कार है।

१३३ कोई गोपी उद्धव की चिकनी चुपड़ी बातें सुनके अन्य गोपियों को प्रबोध करती हुई कहती है कि अरे तुम इनकी चिकनी चुपड़ी बातों के भुलावे में क्यों आरही हो? ये भ्रमर उन्हीं के साथी हैं। देखती नहीं ये वैसे ही चचल चित्त और श्यामल शरीर हैं। वे कृष्ण मुरली के नाद से ससार को मोहित करते हैं और ये भ्रमर महाशय अपने मधुर गुंजन से पुष्पों के मन अपनी ओर गिराते हैं। ये नित्य उठके अन्यान्यों के मन को प्रसन्न करते हैं तथा ये उड़ करके अन्यत्र ही रँगरेलियाँ करते हैं। ये नई नवेली मानिनियों के घर मे रहते हैं और ये हजरत दिनरात कमलों में रहते हैं। भ्रमर के छः पैर हैं और कृष्ण के भी दो पैर और चार भुजाएँ मिलके छः हो जाते हैं। इस प्रकार इन दोनों मे किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता। दोनों के दोनों

अपना मतलब गाठने मे बड़े चतुर हैं। सबों के साथ रँगरेलियाँ करके मजा उड़ाने वाले हैं। विरह दुःख देने वाले इन दोनों का कोई विश्वास मत करो। सूर कहते हैं कि गोपी कहती है कि ये माधव और ये मधुप इन दोनों में कोई किसी से कम नहीं है।

इस पद मे सम अलङ्कार है।

३३४ गोपियाँ उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि उद्धव! श्रीकृष्ण से जाके कह देना कि जैसे भी बने गोकुल चले आवें। दस दिन (कुछ समय) वहाँ रह लिए यह कोई बुराई की बात नहीं है। परन्तु अब विलम्ब न करें। तुम्हारे बिना हमें कुछ भी नहीं अच्छा लगता, न घर सुहाता है और न वन ही भाता है। उद्धव! ये सब बातें तुम अपनी आँखों देखे जाते हो। हम अपने मुँह से इसका कथन क्या करें! तुम देख रहे हो कि बच्चे बिलख रहे हैं गौएँ मुँह से घास नहीं चरतीं और बछड़े दूध पीने के लिए नहीं दौड़ते। सूर कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव को सम्बोधन करके कहती हैं कि श्रीकृष्ण के बिना हम सब रातदिन विलाप करती फिरती हैं। ऐसी अवस्था में उनसे मिलकर ही यहाँ अमन की सम्भावना हो सकती है।

इस पद में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

(नोट—यह पद कुछ परिवर्तन के साथ पहले भी आचुका है। देखिए-ऊधो! तुम कहियो ऐसे गोकुल आवें' १८० पद)।

३३५ कोई गोपी योग की बेतुकी बात करने वाले उद्धव की खिल्ली उड़ाती हुई अन्य गोपियों से कह रही है कि हे सखी! मथुरा म दो ही हस हैं, एक तो अक्रूर और दूसरे ये उद्धव! दोनों ही मन के सशयों को अच्छी तरह पहिचानने वाले हैं। इन दोनों को क्षीर नीर विवेक भली भांति आता है। इसीलिए इन्होंने ही कस को मरवाया है। यह इनके कुल की परम्परा में दाखिल है इनका यश सदा से इसके लिये प्रसिद्ध है। महाराज! मथुरा पर आज भी कृपा करो। उसे बख्श दो। वहाँ भी आखिर तुम्हारा ही वश है। सूर कहते हैं कि गोपी अन्यो से कहती हैं कि जरा आपको देखिए आप अबलाओं को योग की पाटी पढाने पधारे हैं। भला यह सुनकर किसका मन खिन्न नहीं होगा!

इस पद में काकु वक्रोक्ति अलङ्कार है।

३३६ विरहातुर गोपियाँ श्रीकृष्ण से विनय करती हुई उद्धव से कह रही हैं कि हे श्रीकृष्ण ! एक बार इधर फेरा क्यो नहीं कर जाते ? हमें दर्शन देके आप फिर मथुरा चले जाना हमारे लिए इतना ही सुख पर्याप्त होगा। श्रीकृष्ण यहाँ से चले गए और वहाँ अपने माँ बाप देवकी तथा वसुदेव एव अन्य बहुत से परिवार के लोगों से मिल गए यह सब ठीक है पर उद्धव ! बताओ नन्द और यशोदा के दुःख को देखकर हम कहाँ जाएँ ? किसके सहारे रहें ? हे कृष्ण ! तुम्हारे बिना अनाथो का प्रतिपालक और कौन है ? हमारी यह नैया भँझरी हो रही है और सबका सब यहाँ कुसग ही है। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि तुम्हारे चले जाने पर इस दु.ख सागर से हमें कौन पार उतारेगा ?

यह व्रज का बेड़ा शिथिल एव स्थगित है। आप ही इसे आके उबार सकते हैं।

३३७ निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने वाले उद्धव से गोपियाँ व्यग्य करती हुई कहती हैं कि कृष्ण और उद्धव मानों एक ही साचे में ढालकर बनाये गये हैं। इन दोनों ही के अन्दर भ्रमर के समान गुण विद्यमान हैं और ये ऊपर से देखने में ही केवल तनके काले नहीं हैं अपितु ये दोनों हृदय से भी काले हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे भ्रमर ऊपर और अन्दर समान रूप से काला होता है। ये दोनों ही हम गोपियो को धूयें का हाथी अर्थात् निर्गुण ब्रह्म की बातें बतलाते हैं जो कि केवल बकवास हैं, व्यर्थ हैं और थोथा है। अपनी किसी सखी को सबोधन करके गोपियाँ कहती हैं कि हे सखी ! ये सब जितने काली देह धारण करने वाले हैं अर्थात् काले रग के हैं उन्हें तू ऐसा ही समझ। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कृष्ण और उद्धव के लिए कहती हैं कि मथुरा नगर ऐसे लोगों की खान है उस खान में एक से एक बढ़कर हैं।

इस पद मे उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

३३८ गोपियाँ उद्धव की निर्गुण ब्रह्म की बातों को अरुचिकर एव चतुरता पूर्ण बतलाती हैं। वे कहती है कि हे उद्धव ! तुम चतुर मनुष्यों की भाति बातें करते हो। तुम्हारा इस प्रकार का कपट पूर्ण व्यवहार साफ साफ उसी प्रकार से थोथा ज्ञात हो रहा है जिस प्रकार कि जल में सीसी डालने पर बलबूले

उठने लगते हैं जो यह कह देते हैं कि शीशी में कुछ नहीं है। हे उद्धव! हम तो ये सारी बातें तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रही हैं पर तुम क्यों भ्रम में पड़े हुए हो। अरे हम भी तुम्हारी कुछ लगती ही हैं और हमें भी कुछ तुम्हारा माया मोह है। पहिले तो यहाँ सुफलक सुत (अक्रूर) आए जिन्होंने कि अपने करतूत की झोपड़ी छाई और बसाई और अब (सूर की गोपियां उद्धव से कहती हैं) हे उद्धव! तुम उस झोंपड़ी की दीवाल उठाने के लिए मिट्टी की ओर एक खेप डालने आये हो।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

३३९ उद्धव को ताना देती हुई गोपियाँ आपस में कहती हैं कि उद्धव कृष्ण के मन्त्री बनकर यहाँ आये हैं। उन्होंने इस गोकुल में आकर जो योग की चर्चा फैलाई है, वह भी एक विचित्र बात है। हे उद्धव! उस समय तुम कहाँ थे जब कृष्ण ने हमारे साथ वृन्दावन में रास लीलायें की थीं। उठो अब तुम हम युवतियों को योग की शिक्षा देने के लिए तथा भस्म और अधारी (साधुओं के पास एक लकड़ी की बनी हुई वस्तु होती है जिसके सहारे बैठा करते हैं) का सेवन करने के लिए कहते हो। हमारे सम्मुख तुमने क्यों ऐसा दुष्कर मत (निर्गुण ब्रह्म की उपासना) फैलाया जो हम भोगिन सगुण भक्त गोपियों के लिए ठीक उसी प्रकार दुष्कर है जैसे जोगियों के लिए भोग! सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ कह रही हैं कि हे उद्धव! हमें यह चर्चा सुनकर अधिक दुःख हो रहा है। इसे सुनकर वियोग की वेदना से हम और भी अधिक व्याकुल हो जाती हैं।

३४० गोपियाँ उद्धव से निर्गुण का सन्देश सुनके उन पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि मानो उद्धव और अक्रूर दोनों की एक ही सलाह रहती है। ये दोनों उद्धव और अक्रूर बहेलिए हैं जिन्होंने आपस में सलाह करके ब्रज में शिकार की ठान ली है। इन्होंने ही अपनी अपनी बातों के जाल में माधव रूपी मृग को फँसाया और उससे उछलते ही उन पर चोट की। इन्हीं ने ज्ञान के बाणों के प्रहार से गोपी हिरणियों को मारा है। देखो न, इनकी लगाई हुई विरह की तापाग्नि रूपी वनाग्नि चारों ओर दिखाई दे रही है। इतने पर भी इन्हें सन्तोष नहीं। न जाने अब ये और क्या करना चाहते हैं! इन्हें किसी

बात का सोच तो है ही नहीं। ये निधड़क होके अत्याचार करने के आदी हैं इनके उल्टे ढङ्गों को जरा देखो ये प्रेम में रँगे हुओं को ज्ञान का उपदेश दे रहे हैं। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हम बिना श्याम के कैसे जी सकती हैं ? क्या मेघों के नष्ट हो जाने से चातक जीवन धारण कर सकता है ! अर्थात् नहीं।

इस पद में रूपक एव निदर्शना अलङ्कार है।

६४१ निर्गुण का उपदेश सुनके गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि व्रज में निर्गुण (भक्ति) का दीपक प्रज्वलित होके अपना प्रकाश फैला रहा है। हे उद्धव ! सुनो हम लोगों की भृकुटी की तिपाई पर रातदिन इसी का प्रकाश चमकता है। यहाँ सबके हृदय रूपी शरावों (सकोरों) मे स्नेह रूपी तिली का सुगन्धित तेल भरा है। प्रियतम के अनेक गुण इस दीप की बत्ती के समान हैं जिसके जलने से बारहों महीने (सदा) कपूर की सी सुगन्धि चारों ओर फैल रही है। यह भाग्य की बात है कि अब सबके अङ्गों में विरह की आग ऐसी लगी कि चातुर्मास्य (वर्षाकाल) के आने पर भी नहीं बुझती। इस आग को फूँक-फूँक के तीव्र करने वाले तुम तीन हो—एक महाराज कृष्ण स्वय, एक आप तथा तीसरे कामदेव जी महाराज। भला जब ऐसे २ दिग्गज फुँकैया हैं तो फिर इसके बुझने की आशा करना भी व्यर्थ ही है। अन्य सब भजनों को तिनके के समान तुच्छ समझके उनका हमने परित्याग कर दिया था इसी सगुण दीप की ज्योति की ही उपासना की। हमने निर्लिप्त (अनासक्त) भोगों के साधन से अन्तस् के अन्धतम को नष्ट कर दिया। जिस दिन आपने यहाँ पधार के अपने उपहासास्पद प्रवचन का आरम्भ किया है उस दिन से यह ज्योति और भी तीव्र होगई ! क्योंकि निर्गुण के लिए प्रेरणा देने वाले आप उस दीप के लिए सींक बन गए जिससे वह दीपक की बत्ती और ऊपर को उकस गई। इससे इसकी इतनी लौ बढ़ी कि शिर तक पहुँच गई जिससे मस्तिष्क का ज्ञानगढ़ भस्मसात् होगया। इसकी प्रचण्ड लौ ने आकाश में छाए हुए जितने दुर्वासना रूपी शलभ (पतंगे) थे वे नष्ट हो गए। भावार्थ यह है कि आज तुम्हारे उपदेश ने हमारे प्रेम को वासनाओं से

मुक्त करके शुद्ध कर दिया है। आप तो उनके बिलकुल निकट के रहने वाले हैं। सुना है कि उनके (कृष्ण के) आप मन्त्रियों में से हैं फिर भी आश्चर्य है आपने गोकुल की प्रेम पद्धति के मर्म को न पहिचान पाया। इस कौतुक को नहीं देखते। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव ! तुम भाग्य के बड़े ओछे हो। हाय न जाने किन पुण्यों से तुम्हें खीर परसी मिली पर तुम बार २ जवासे चरने के लिये ही बार २ लपकते रहते। भाग्य से कृष्ण का सान्निध्य और गोकुलवासियों का सपर्क मिला। चाहते तो आनंददायिनी भक्ति को अपनाकर अपना जन्म सुफल कर सकते थे। परन्तु तुम बार बार फीके निर्गुण पर ही मुग्ध हो रहे हो।

इस पद में रूपक तथा विभावना अलकार है।

३४२ उद्धव की निर्गुण की चर्चा सुनके गोपियाँ कहती हैं कि विरह के कसालों के भय से अनुराग को तिलांजलि देना कायरता है। हम प्रेम के पथ का परित्याग करके प्रेम के देवता का अपमान नहीं करेंगी। देखो चातक अपने प्रेम की एकांत भावना के कारण सब जलों को तिलांजलि दे देता है फिर भी वह स्वाति के लिए मरता ही रहता है। इसीलिए वह रात दिन उसी को पुकारता है। प्रियतम के निर्मोही होने पर भी प्रेमी अपने प्रेम में दृढ ही रहा करता है। मछली पानी की उदासीनता को जानती हुई भी उस पर जी जान से कुर्बान रहती है। उसके बिछोह में प्राण परित्याग कर देती है। हिरण बाद्यों की स्वर माधुरी से प्लावित हो जाता है यद्यपि उसी दशा में व्याध उसे बाणों से मारता है। सच्चे प्रेम म प्रियतम के गुण दोषों की आलोचना व्यर्थ होती है। चन्द्र के प्यार में युगों से चकोर एकटक उसकी ओर देखता चला आरहा है यद्यपि प्रियतम (चन्द्र) ने उसके प्रेम की कदर आज तक नहीं की। करोड़ों (असख्य) पतगों ने दीपक के प्रेम मे अपने आप को बलिवेदी पर चढा दिया। आज भी उनके प्रेम वैसे ही भरे हुए हैं वे घट आजतक रित्त नहीं हुए। प्रियतमकी कठोरता उनके प्रेम को शिथिल करने म असफल रही। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! श्रीकृष्ण ने यहाँ रहके जो बातें हमसे की थीं वे आजतक हमें भूली नहीं। श्याम को किस लिए त्याग दें। आखिर क्या हम उपर्युक्त कीट पतगों से भी

बदतर है जो विरह के सकटों तथा प्रियतम की निष्ठुरता से अपने प्रेम का परित्याग कर दें !

इस पद में तुल्ययोगिता अलकार है ।

३४३ निराश होकर गोपियाँ अपने प्रेम की व्यथाओं को अकथनीय बताती हुई उद्धव से कहती हैं कि उद्धव ! हम तुमसे क्या कहें (आज निराशा की व्यथा किसी से कहने की चीज नहीं है, क्योंकि आप जानते हैं कि मन की व्यथा गोपनीय ही है । देखिए 'रहिमन की व्यथा मन ही राखो गोय सुनि अठिलैहें लोग सब बाटि न लैहें कोय') हमारी व्यथा मन की मन में ही रह रही है । यद्यपि यह व्यथा सहन नहीं की जाती (असह्य) है तथापि बताओ उद्धव ! हम किससे जाके कहें ? उनके (प्रियतम के) आने की अवधि के आसरे से ही हम इन दैहिक और मानसिक सन्तापों को सहती रही हैं । और उसमें भी कोढ में खाज वाली बात यह हुई कि जहाँ से हम रक्षा की आशा करती थीं वहीं से सकट की धारा बह निकली । उद्धव ! आज तुम अपनी आखों से यहाँ की दशा देख रहे हो कि व्यथा ने उमड़ के सभी सीमाओं को ढा दिया है और अब यह असीम हो गई है । आज सूर के स्वामी कृष्ण के बिछुड़ने से हम लोग दु.सह वियोग में जल रही हैं ।

३४४ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हमें श्याम का यही सोच आता है कि कहाँ तो यहाँ रहके हमसे इतना प्रेम किया कि अपने हाथों हमारे पाँवों में महावर लगाते थे और कहाँ अब कुब्जा ऐसी मन भाई कि हमें बिल्कुल भुला दिया । गोवर्धन गिरि को धारण करके इस ब्रज को न जाने उन्होंने क्यों बचाया था जब कि आज ब्रजनाथ नामको छुड़ा रहे हैं । यदि ब्रजनाथ उपाधि से इतनी घृणा थी तो इसे मिट जाने देते न रहता बाँस न बजती बाँसुरी । तब मुरली अधरों पर रखके बजा बजाके नाम ले लेके क्यों पुकारा करते थे ? उस समय यहा रहते हुए इतने लाड़-प्यार से हमारा आलिंगन किया और आज अपना अद्भुत रूप तक हमें इन नयनों को दिखाने की कृपा नहीं करते । रातदिन जिस मुखसे प्रेम की बातें की उसी मुखसे आज योग का उपदेश दे रहे हैं । जिस मुख ने हमारी रसनाओं को अमृत का आस्वादन कराया वही आज विष कैसे पिला रहा है ? सूर कहते हैं कि इस प्रकार वियोगिनी गोपिया हाथ

मल मल के पछताती हैं और शनै शनै अपने मन को समझाने का प्रयत्न करती हैं परन्तु इससे वे वियोग से और भी अधिक सतप्त होती हैं।

इस पद म प्रतिवस्तूपमा अलकार है।

३४५ कोइ गोपी उद्धव के निर्गुणोपदेश की खिल्ली उड़ाती हुई अपनी सखी से कहती है कि अरी सखी ! मेरा मन यों ही धाखे से (अनजाने से) उस मथुरा का ओर चला जाता है जहाँ पर उद्धव के कथनानुसार श्रीकृष्ण निवास करते हैं। यहा से फिर शीघ्र ही इधर आ जाता है और यह मन इधर उधर की आवाजाइ करते थकता नहीं। परन्तु इधर उधर जाते हुए इस मन को एक बड़ी अद्भुत चीज दीख पड़ती है। इधर आके देखती हूँ तो ये मधुकर महाशय पागल की भाति बड़बड़ाते हैं। इधर जब मन मथुरा जाता है तो देखती हूँ कि प्रियतम (कृष्ण) इनके इस भाषण को सुनके मुसकरा रहे हैं। वास्तविक बात तो यह है कि केवल हरि ही सत्य है और निर्गुण के यशो गान करने वाले सब झूठे हैं। इसी आशय से इनकी व्यर्थ की अहम्मन्यता पर श्रीकृष्ण मुसकराते हैं। यह सब जानकर भी उद्धव को बनाने के लिए उन्होंने निर्गुण की चर्चा करने के लिए यहाँ भेजा है। ये बेचारे उनकी बातों में आके झूठ को ही सच मानके साटाप व्याख्यान देने लगे। सूर कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि जिस मायावी ने ससार को ठगा वही इन्हें भी बहका रहा है।

३४६ गोपियाँ अपनी वियोग दशा वर्णन करती हुई उद्धव के सम्मुख आपस में कह रही हैं। कोई गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखी ! और हुआ सो हुआ परन्तु इस व्रज से श्री कृष्णजी के चले जाने से दो ऋतुओं ने ऐसा अड्डा जमाया है कि जाने का नाम नहीं लेतीं। एक तो ग्रीष्म और दूसरी वर्षा ऋतु हरि के बिना बड़ा प्रचण्डरूप धारण किए रहती हैं। लम्बी लम्बी सासों का झझावात तथा नयनों के घनों का उमड़ना ये सभी वर्षा के योग जुड़ गए हैं। इन्होंने बरस बरस के अनेक दुःख रूपी मेंढकों को जो कहीं दूर छिपे थे लाके प्रकट कर दिया। यह तो हुई वर्षा की प्रचण्डता अब देखिए ग्रीष्म की तीव्रता। प्रचण्ड दिनकर के समान सतापदायी असह्य वियोग दिन प्रति दिन उदय होता है। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं कि बाधा यह है कि शीतांशु

श्रीकृष्ण के विमुख हो जाने पर अब हमारे शारीरिक सन्ताप को कौन मिटा सकता है ?

इस पद में रूपक अलकार है।

३४७ नितान्त निर्मोही होने पर भी यदि प्रियतम अपने प्रेमी का स्मरण करके उधर चलने की बात भी चलादे तो भी प्रेमी अपना अहोभाग्य समझता है। इसीलिए गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं कि हे मधुकर! तुम्हें कृष्ण की शपथ है। सच बताना वे कभी यहाँ के लिए भी मन करते हैं या चित्त से बिलकुल सुध भुलादी है ! हमतो गरीब अहीरन हैं। मना करते हुए भी जबरदस्ती उनसे प्रेम करने के लिए विवश हो जाती हैं। परन्तु वे मथुरा के रहने वाले शहरी आदमी ठहरे। वे तो आठों गाठ कुम्मैत हैं। (उनके रोम-रोम में कपट और चालाकी है)। उद्धव ! तुम सच बताओ हमारे मन की बात कहके हमारे प्राणों को सुख दो ! बहुत हो चुका अब अपने दिल की कुटिलता और शठता दूर करो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ व्यथित होके कहती हैं कि स्वामिन् अपनी कीर्ति की लज्जा रखके यहाँ जो हमारी लोक हँसाई हो रही है उसे मिटादो। भावार्थ यह है कि आप भक्त-जन वत्सल प्रसिद्ध हैं। इस विरह का ख्याल कर हम दीनों को दर्शन दे के हमें कृतार्थ करो ताकि उन लोगों का मुँह बन्द हो जो आज हमारे प्रेम की मजाक बना रहे हैं।

३४८ गोपियाँ कृष्ण राम या भगवान के विरही की असाध्य दशा का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं कि भगवान के विरही भला अपने को कैसे सभाल सकते हैं ? जबकि साधारण मनुष्यों का विरह भी सच्चे प्रेमियों के लिये असह्य हो जाता है तब फिर महा विभूतिशाली समस्त सौन्दर्य के केन्द्र भगवान् के विरह में प्रेमी कैसे सभल सकता है ! जब से गगा श्रीकृष्ण (विष्णु) के चरणों से पृथक हुई तब से बही २ फिरती है आज भी उसके टिकने का ठिकाना नहीं। भगवान् की नेत्र ज्योति से बिछुड़ के सूर्य और चन्द्र जैसे प्रतापशाली भी अपनी स्थिति को नहीं सभाल सके। सूर्य नित्य-प्रति भटकता रहता है और चन्द्रमा अपने शरीर को क्षीण करता रहता है। हरि की नाभि से वियुक्त होके कमल कटकित हो गए तथा उनके वियोग मे समुद्र भी (बड़वानल से) जल कर खारे हो गए। उसकी वाणी से बिछुड़ी हुई

थी शारदा भी ऐसी दीवानी होगई कि विधि के विरुद्ध अपने पिता ब्रह्मा की स्त्री बनी। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव। जब एक एक अङ्ग से बिछुड़ने वालों की यह हालत हुई तो उनके सर्वाङ्गीण आलिङ्गन से विरहित होने वालों की क्या औषध हो सकती है अर्थात् उनका सन्ताप तो बेइलाज है।

'मिलाइए'–राम वियोगी ना जिए, जिएँ तो बौरा होहि। कबीर

इस पद की कल्पनाएं वैदिक वचनों और पौराणिक गाथाओं पर आश्रित हैं। वेद के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा ईश्वर के नेत्र हैं। गगा का विष्णु पदसे प्रवाहित होना, विष्णु की नाभि से कमल की उत्पत्ति के कारण ही उनका नाम पद्मनाभ है। समुद्र में विष्णु का शयन तथा सरस्वती का मूल रूप मे ईश्वर की वाणी मे निवास तथा ब्रह्मा से उसकी उत्पत्ति एव विवाह आदि पौराणिक गाथाएँ प्रसिद्ध है। जिनके आधार पर इस पद की कल्पनाएँ युक्ति-सगत ठहरती है।

इस पद में अर्थान्तरन्यास और हेतूत्प्रेक्षा अलंकार है।

३४६ गोपिया श्रीकृष्ण की चलचित्तता का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं हे उद्धव! तथा गोकुलवासी गोपाल तुम्हारे ऐसे लच्छनों को सुन २ के लोग यहाँ मजाक बनाते हैं। तुमने पहले समय मे सागर को मथन करके अमृत निकाल के सुरों का पालन किया। बेचारे भोले बाबा को जहर दिया (और लक्ष्मी स्वय हथियाली)। इसी प्रकार अब की बार भी कस को मारके राज्य तो औरों को दिया और खुद दासी (कुब्जा) को रख लिया। सूर कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हमें तो आपकी (श्रीकृष्ण) की बेढँगी बातें सुन सुन कर अपना विरह दुःख भी भूल जाता है और इन चालाकियों पर हँसी आती है।

३५० उद्धव के निर्गुणोपदेश से चिढ़कर गोपियों ने ईंट का जबाब पत्थर से दिया। इसीलिए वे उद्धव से कहती हैं कि लो भाई अपनी चीज के बदले में हमारी चीज भी लिए जाओ। उनकी ओर से तुम एक (निर्गुणोपदेश) लाए थे। हमने उसके बदले में इतनी सुनाई हैं सो जाकर मय सूद के उन्हें दे देना। तुम तो खूब समझदार हो सब जानते हो। हमें भोला समझकर तुमने

तो अपनी चाल चलने में कोई कसर रक्खी नहीं। अब जब हमारी बारी आई तब क्यों मना करके तीव्र गति से भाग रहे हो। (यह कल्पना खेल के आधार पर आश्रित है। यदि कोई खिलाड़ी दूसरी पार्टी को खूब छकाए और जब दाव देने की बारी आए तो 'हम नहीं खेलते' कहकर भागने लगता है। यही उद्धव की अवस्था है। निर्गुणोपदेश दे देकर गोपियों को खूब व्यथित किया। पर जब उन्होंने खरी खोटी सुनानी शुरू की तो मैदान छोड़ कर भागने के लिए उद्यत हो गए) अब तुम हमारी ओर से ये बदले की चीजें लेकर जल्दी ही अपने मित्र को जाकर दे दो। वे सोच रहे होंगे कि हमारी चीज यों ही चली गई। सो यह बात नहीं एक के बदले अनेक देकर उनकी छाती ठंडी कर दो। सूरदास कहते हैं कि गोपिया उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! यह व्यवहार है और हमारे आपके बीच यह जो व्यौहरत हुई है उसमें हम तुम दोनों साहु हैं किसी का किसी पर कुछ नहीं चाहिये। तुमने एक बात दी और हमने अनेक बातें बदले में देकर मय सूद के उसे चुका दिया। तुमने निर्गुण की एक बात कही हमने अनेक खोटी खरी सुना कर अपने दिल से गुब्बार निकाल लिए।

३५१ गोपियों की व्यंग्योक्तियों से झेंपकर उद्धव ने सिर नीचा कर लिया उनकी प्रौढ़ोक्तियों को सुनकर उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा। वे बगलें झाँकने लग गए। इसी अवसर पर गोपियों ने उन्हें ताना देते हुए कहा कि उद्धव! झेंपते क्यों हो? जरा हमसे आँखें मिलाकर बातें करो। आप हम अबलाओं को ज्ञान की पट्टी पढ़ाने आए यही सुनकर हमने आपके ज्ञान का अन्दाजा लगा लिया। आपने यहाँ निर्गुण पर भाषण दिया! क्या कहना है! आप बड़े भारी निर्गुणोपासक हैं! पर हमने तो सगुण श्याम सुन्दर की सेवा करते हुए चारों प्रकार की मुक्ति अर्थात् सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य तथा सामीप्य प्राप्त कर ली है। इतने पर भी आप सगुण चर्चा छोड़कर और की और बातें कह रहे हो। अरे मधुकर! तुम बड़े दुष्ट हो। इतने पर भी भाई! चलते का नाम गाडी है। हम मूर्ख और आप बड़े बुद्धिमान हैं। अब अधिक क्या कहें! आप तो निःस्वार्थ भाव से इधर उधर भटकते रहते हैं, पर खैर बहुत हो लिया। अब अपने घर का रास्ता पकड़ें। हाय! इससे बड़ा और अज्ञान क्या हो

सकता है कि ज्ञान की चरम सीमा पर पहुँची हुई हमें आप ज्ञान की बारह खड़ी सिखाने आए है (ज्ञान का उपदेश दे रहे है) उद्धव ! हम तो ज्ञान की उस दशा पर पहुँच चुकी है जिसके बारे म 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति' कहा जाता है। इसलिए हम जिधर देखती हैं उधर उसी सूर क स्वामी श्याम की मूर्ति देखती हैं। हमारे लिए सब कुछ श्याममय है। (जिस प्रकार ज्ञान की चरमावस्था में ज्ञाता और ज्ञेय का भेद नहीं रहता वैसे ही प्रेम या भक्ति की चरमावस्था म उपास्य और उपासक का भेद मिट जाता है। गोपियो का अभिप्राय यह है कि हम तो स्वय कृष्ण रूप हो रही हैं—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल। ज्ञानी की अवस्था क लिए देखिए सर्व खल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन, अह ब्रह्मास्मि आदि उपनिषद्)

३५२ गापियाँ श्रीकृष्ण की बेरुखाई पर व्यग्य करती हुइ भौंरे को सम्बोधन करके कह रही हैं कि—अरे भौंरे जा दूर हट यहाँ से। तेरा रग रूप और आकार उन्हीं के समान है। तूने मेरा मन तोड़कर चूर २ कर दिया। जब तक मतलब रहता है तब तक तो पास रहते हो और मतलब निकल जाने पर ऊपर को उड़ जाते हो। सूर कहते हैं कि गोपियाँ भ्रमर से कहती हैं कि हे भ्रमर ! तुम अपने मतलब से कलियों का रस लेने के लिए चक्कर काटते हो। (हम तुम्हें खूब समझती हैं)।

इस पद में अन्योक्ति अलकार है।

३५३ गोपियाँ उद्धव की अनिरीतिपूर्ण करतूत (सगुण भक्ति को उखाड़ के निर्गुण की स्थापना) पर व्यग्य करती हुई उनसे कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम्हारा व्यवहार धन्य है। तुम्हारे स्वामी तथा सेवक धन्य हैं। तुम जैसे जो उनकी नीतियों को कार्य रूप देते हैं वे ध य है। आप आम को कटवा के तथा चन्दन के पेड़ों को खुदवा के उनकी जगह बबूर लगाने का उपक्रम कर रहे हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपिया इस अनरीति को देखके उद्धव से कहती है कि आखिर यह निरकुश राज्य (अन्धेर नगरी का शासन) कब तक चलेगा ?

इस पद में अन्योक्ति अलङ्कार है।

३५४ उद्धव के निर्गुण पर व्यग्य करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव !

जाइये पधारिये यहाँ से । हम तुम्हें खूब जानती हैं। जैसे श्रीकृष्ण हैं वैसे ही तुम उनके नौकर हो। दोनों खूब छलबल कौशल से परिपूर्ण हैं। तुम्हें यह निर्गुण ज्ञान कहाँ से मिला? तुम इसे किसके सिखाने से यहाँ ले आए? इस उपदेश को तुम कुब्जा को जाके क्यों नहीं दे देते जिसके रूप पर तुम्हारे स्वामी निछावर हो रहे हैं। हम योग की बातें कहा तक करें? योग का सदेश पढते पढ़ते तो हमारी आखे दुखने लगी हैं। (सूर कहते हैं कि गोपिया कहती हैं) इतने पर भी हम बुरी हैं। पर खैर कुछ हर्ज नहीं तुम तो चोखे खरे हो।

३५५ बिना पूछे ही योग का उपदेश देने वाले उद्धव पर व्यग्य करती हुई गोपिया कहती हैं कि भाई! मथुरा में सभी धर्मात्मा और कृतज्ञ हैं। वे सबके सब बड़े दयालु हैं। पराए हित में इधर-उधर भटकते फिरते हैं और बड़े सुशील वचन कहते हैं। पहले सुफलक के पुत्र अक्रूर गोकुल पधारे और कृपा करके उन्हें लेके मथुरा सिधारे। वहा जाकर उधर कस का और इधर हमारा दोनों का काम तमाम कर दिया। अब हरि की सिखवन लेकर हमें योग सिखाने के लिए महाराज उद्धवजी यहा पधारे। वे वहा कुब्जा के प्रेम की ख्याति का अवसर देकर यहा योग का प्रचार कर रहे हैं। अब हम नहीं (जुती) हुई विरह के समुद्र में निरवलम्ब डूबना ही चाह रही हैं। आज दिन तक तो हे भ्रमर! हम लोगों के लिए सगुण की लीला रूप नाव थी। उसके सहारे इस समुद्र को तरती रहीं, पर आज तुम उसे छुड़ाकर युवतिजनों को निर्गुण थमा रहे हो। भला बताओ कि इस समुद्र के पार हममें से कौन पहुँच सकेगा? सूर कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि हाय अक्रूर और इन षट्पद (भ्रमर) महाशय को दैव का भय भी तो नहीं है। खुदा का भी तो खौफ नहीं करते मनमानी अनीतिया करते रहते हैं।

इस पद में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि एव रूपक अलकार है।

३५६ ज्ञान का उपदेश देने के कारण उद्धव को बनाती हुई गोपिया उनसे कहती हैं कि उद्धव! तुम भी खूब भूलभुलैयों में भटक रहे हो। उन प्रियतम ने यों ही किसी प्रसगवश कुछ बात कहदी परतुम उसी मे उलझ रहे। (उसी से चिपक कर रह गए अर्थात् उसी को सच समझ कर उसी को पकड़कर

रह गए)। तुम्हारी चतुरता भी हमने देखली। हम जब विवेक से तुम्हारी चतुरता की जाच करती ह तो वह हमे कुछ जँचती नहीं है। जब कृष्ण ने तुम्हें यहा आके योग सिखाने को कहा तब तुम इतना भी नहीं समझ पाए कि उन्होने तुम्हें तो दमपट्टी देने इधर भगा दिया और स्वय कुब्जा से उलझ रहे हें। यह है आपकी चातुरी। खैर जो हुआ सो हुँआ अब अपना यह योग सँभालो और ताजे ताजे घर पधारो। सूर कहते हैं कि गोपिया कहती है कि यहा श्याम को त्याग कर इस कडुए योग को कोई नहीं लेगा।

३५७ योग और ज्ञान के उपदेश को अपने लिए निरर्थक बताती हुई गोपियां उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! तुम योग का सदेश ब्रज में लाया करते हो। बार २ दौड़ने से तुम्हारे पैर भी तो थक गए होंगे। तुम जो बड़े हैरान होके गढ २ के बातें बनाते हो सो तुम्हारे निर्गुण की कथा कौन सुनेगा? यहा तो सुमेरु पर्वत सा सगुण प्रत्यक्ष दिखाई देता है पर तुम उसे तिनके की ओट में छिपाना चाहते हो। भावार्थ यह है कि कृष्ण रूप मे जब सगुण हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है तब हम तुम्हारी लचर दलीलों के आधार पर उसके अभाव को कैसे स्वीकार कर सकती हें। हमें श्याम के सब दाव पेंच मालूम है। वे यों ही बातों मे बहलाया करते हैं। हमने आज तक कभी पानी को मथकर नव नीति निकालने की बात न देखी और न सुनी है। योगी लोगों के द्वारा योग के अथाह समुद्र में बैठकर आजन्म ढूँढते रहने पर भी जिसे नहीं पाया सकता वही इस सगुणोपासना से तुष्ट होकर यशोदा के प्रेम के वशीभूत होके अपने को ऊखल मे बँधवाता है। इसलिए अब चुप रहो अपने ज्ञान को ढक रक्खो क्यों इसका उद्घाटन करके हमारी विरह वेदना को बढा रहे हो? तुम्हीं बताओ कमलनयन नन्दलाल किसे नहीं भाते? फिर तुम उल्टी बातें कह-कह के क्यों हम सबको मारे डालते हो। सूरदास कहते हं कि गोपिया उद्धव से कहती ह कि ज़रा सोचो तो जिसे उपनिषदादि शास्त्र नेति कहकर वर्णन करते हैं वह अबलाओं के लिए कैसे उपयुक्त हो सकता है।

इस पद मे रूपक और निदर्शना अलकार है।

३५८ श्रीकृष्ण और कुब्जा के प्रेम पर कटाक्ष करती हुई गोपिया उद्धव से कहती ह कि कृष्ण ने मथुरा जाके क्या फायदा कर लिया। हे मधुकर! अब

तो दो शरीरों का एक साथ निर्वाह करना पड़ता है। अत उन्हें क्या सुख मिलता होगा। यहाँ के पुराने प्रेम की उलझन होगी ही और वहाँ का नया प्रेम, दोनो का निर्वाह कितना कठिन है। फिर वहाँ सुनते हैं कि वे राजवेष में रहते हैं और यहाँ हम उन्हें प्रति दिन वेणु लिए देखती हैं। न जाने ठगई का प्रपंच रचने से उस अक्रूर को क्या मिल गया? अब भला वे कृष्ण बिना योग सिखा लिए गोकुल म क्यों रहेंगे? सूर कहते हैं कि गोपियाँ निराश होके श्रीकृष्ण के लिए शुभ कामनाएँ करती हुई कहती हैं कि वे राजा हैं अपने घर सिर पर छत्र धारण करके राज्य करें। परन्तु हमारे नन्दसुत ही यहाँ चिरंजीवी हों जिनका मुँह देख के हम जी रही हैं।

३५६ श्रीकृष्ण के वियोग में उद्धव से उपालम्भ देती हुई गोपियाँ कहती हैं कि उद्धव! कृष्ण से हमारा प्रेम होना पूर्व जन्म का संस्कार है परन्तु अब तो वे हमारे प्राणों के ग्राहक हो रहे हैं। हाय! वे जाके बहुत दिनों से वहीं बिलम रहे, हमारा संग छोड़ के चले गये और हमें वहाँ चलने के लिए मना कर दिया। इतना होने पर भी जिस दिन से उन्होंने प्रेम किया है वह प्रेम घटता नहीं बढ़ता ही जाता है। न मानों तो गज लेके नाप कर देख लो। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ वियोग व्यथित होके कृष्ण को पुकार कर कह रही हैं कि हे स्वामिन्! तुम्हारे विरह म यह शरीर एक ब्योंत (माप) बन गया है और विरह दर्जी बनके उसकी काट छाँट करता रहता है।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

३६० विरहातुर होके गोपियाँ उद्धव से कृष्ण को लिवा लाने की प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव! तुम गोपाल को मना के लिवा लाओ। अबकी बार किसी न किसी तरह उन्हें दमपट्टी देके लिवा लाओ। हे उद्धव! तुम उन्हें खूब समझा समझा कर हमारा उलाहना उन्हें देना कि हे कृष्ण! तुम जिन्हें विरह की बाढ़ में छोड़ आये थे वे गोपियाँ आज व्याकुल होगई हैं। हे उद्धव! हम बातें बना बनाकर अधिक और तुम से क्या कहें बस तुम सूर के भगवान कृष्ण का हाथ पकड़ कर और नन्द की सौगन्ध दिलाकर यहाँ ले आना!

३६१ गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश से परेशानी अनुभव करके

कहती हैं कि हे उद्धव ! इस समय हम तुमसे या तो लड़कर या तुम्हारे सामने मौन धारण करके छुट्टी पा सकती हैं! हे उद्धव ! हम गोपियाँ तो वैसे ही कृष्ण के विरह में जल रही हैं उस पर तुम ब्रह्म का उपदेश दे देकर हमें और जलाते हो, तो बतलाओ तुम बुरा बोलने वाले हुये या हम । तुम दोनों (कृष्ण और उद्धव) काले हो और तुम्हारे अगों म भी समानता है, बताओ हमारा मन किसका विश्वास करे । हम में से जो तुम्हारी जैसी हो वह तुम से बात करें। अरे ! जो ये तुम जोग लेकर आये हो वह वही समझे जो तुम्हारे जैसा हो । जिस किसी को योग अच्छा लगेगा वह अपने शरीर मे भस्म लगायेगा, परन्तु जिनके हृदय में श्रीकृष्ण बसे हुए हैं उन्हें निर्गुण ब्रह्म की उपासना क्योंकर अच्छी लगेगी । सूरदास के प्रभु से जाकर यह सदेशा कह देना कि यह निर्गुण ब्रह्म कोरा अन्धकारमय है, इससे अज्ञान दूर नहीं हो सकता इसलिए अपना बोया हुआ अब तुम आप ही काटो और इस उलझन को अपने आप ही सुलझाओ।

३६२ कोई गोपी अपनी सखी को सम्बोधन करके कह रही हैं कि हे सखी ! एक ओर का प्रेम इस प्रकार का है जिस प्रकार से कि बस्त्र कुसुमी (केसर) के रँग में रँगते समय थोड़े ही में चटक और थोड़े ही मे सफेद हो जाता है और जिस प्रकार बिचारा किसान बड़े परिश्रम से कई-कई बार अपने खेत को, इस आशा में कि उसकी इस करनी से कुछ उत्पन्न होगा, जोतता है । परन्तु इतने पर भी जल की घोर वृष्टि निष्ठुरता से उमग-उमग कर उसके सब करे-धरे पर पानी फेर देती है। सब गोपिया उद्धव से इस प्रकार कह रही हैं कि हे उद्धव ! जरा सावधानी से इस बात को समझो कि सूरदास के प्रभु से बिछुड़ कर भी मनुष्य अपने मन को उनसे ठीक उसी प्रकार अलग नहीं कर पाता जिस प्रकार कि रेत में मिली हुई राई को कोई अलग नहीं कर पाता । भगवान बिछुड़ जायें पर उनमे उलझा हुआ हमारा मन अलग हो ही नहीं सकता ।

३६३ चतुर गोपियाँ उद्धव की निर्गुणभक्ति को तर्क की कसौटी पर रखती हुई उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम्हारा योग सुनकर हमें मन में डर लगता है। माना कि तुम अत्यन्त ही चतुर एव विद्वान कहलाते हो परन्तु हमारी समझ में कुछ बात नहीं आती है । जितने अन्यान्य भाति २ के सुगन्धित फूल हैं, जो शीतलता उत्पन्न करने वाले हैं उनको तथा अन्य सभी को छोड़ छोड़कर

कमल के बन में ही हे भ्रमर! तू क्यों जाता है? जितने भी ज्योति के श्रेष्ठ समूह हैं उनमें सूर्य सर्वश्रेष्ठ ज्योतिर्मान है। अन्य सब के तेज को हरने वाला है परन्तु यह क्या बात है कि चकोर चन्द्रमा को छोड़कर उसका ध्यान नहीं करता है। हे उद्धव! तुम सबको उलटा उपदेश देते फिर रहे हो जिसे सुन सुन कर हमारा हृदय जल उठता है। हे धूर्त भ्रमर! बतला कि जामुन के वृक्ष में किस प्रकार आम का श्रेष्ठ फल लग सकता है और कृष्ण की उपासना करने वाली गोपियों को किस प्रकार योग का नीरस उपदेश भा सकता है। जब तक हंस के प्राण रहते हैं तब तक वह मोतियों को ही चुगा करता है अन्यथा वह मृत्यु ही पसन्द करता है। इसी प्रकार सूरदास जी कहते हैं कि गोपिया अपने प्रेम की तुलना करती हुई कहती हैं कि मछली भी निष्ठुर जल के समाप्त हो जाने पर व्याकुल होकर प्राण त्याग देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि गोपियों का प्रेम हंस और मीन के प्रेम के समान प्रगाढ़ है। जिस प्रकार मीन जल के बिना और मराल मोतियों के बिना प्राण त्याग देना पसन्द करेगा उसी प्रकार गोपिया कृष्ण के प्रेम के बिना मर जाना ही पसन्द करेंगी।

इस पद में निदर्शना अलंकार है।

३६४ थोड़े से काल के लिए भी निर्गुण को अपनाकर कृष्ण से मन हट के और अन्त में वहाँ निराश होकर फिर उनसे प्रेम जोड़ने में मजा नहीं है। इसी आशय को प्रकट करती हुई गोपिया उद्धव से कहती हैं कि एकबार विरक्त होकर फिर मन के अनुरक्त होने मे कुछ मजा नहीं रहता। टूटी हुई रज्जु बहुत परिश्रम करने से जुड़ तो अवश्य जाती है पर जुड़कर गाँठ गटीली ही रहती है। उसका वह दोष मिटता नहीं है! कपट पूर्ण स्नेह और रस्सी का पैंड देके दुही हुई गाय या खटाई से फटे हुए दूध को खाने में किसे स्वाद आता है! अर्थात् किसी को इन चीजों में मजा नहीं आता। उद्धव! तुम्हारा सान्निध्य तो हमें इसी प्रकार दुःखदायी है जिस प्रकार बेर का सान्निध्य केले के लिए दुःखदायी होता है। बेर तो बार २ हिलकर मजा लेती है परन्तु केले के अङ्ग जीर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार तुम भी बार २ निर्गुण का उपदेश दे देकर मजा ले रहे हो पर हमारा जी जल रहा है। तुम सोचते होगे कि तुम भली

बात कहते हो यह भी हमें बुरी लगती है, साप के मुँह में स्वाति का बूँद डालो तो भी वह जहर हो जाता है। इसी प्रकार तुम्हारे सुधा सम वचन भी हमारे अन्तस् में जाके घातक बन जाते हैं। ऐसी कितनी ही बातें जो तुम कृष्ण के विषय में बना बना कर कह रहे हो, वे सब निरर्थक हैं। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि जरा सोचो तो नागों की नगरी में धोबी का धन्धा कैसे चल सकता है। इसी प्रकार सगुण पर अनुरक्त हुई गोपियों के सामने निर्गुण का उपदेश क्या मूल्य रखता है?

इस पद में समुच्चय प्रतिवस्तूपमा तथा विषम अलंकार है।

३६५ गोपिया निराश होकर उद्धव से कहती हैं कि तुम हमसे उस परदेशी (श्री कृष्ण) की बातें क्यों कर रहे हो? वे हमारे कौन होते हैं? देखो न! उन्होंने जाते समय एक पाख (मदिर अरध) की लौटने की अवधि बताई थी पर मास (हरि=सिंह का आहार भोजन=मास) से बीतते चले जाते हैं हमारे लिए दिन (ससि रिपु = चन्द्रमा शत्रु = दिन) वर्ष के समान और रात्रियाँ (सुर=सूर्य, रिपु=शत्रु, अर्थात् रात्रि) युगों के समान हो रही है। काम (हर = महादेव का रिपु) हमारा घात करने की फिक्र में घूम रहा है। हमारा चित्त (मघा नक्षत्र से पाचवाँ मघा पूर्वा उत्तरा हस्ति चित्रा या चीता) तो घनश्याम अपने साथ ले गए हैं। इसलिए आज यह नौबत आ गई कि हम नक्षत्र (२७) वेद (४) ग्रह (६) छोड़कर (चालीस बनाकर) उन्हें आधा करके अर्थात् विष (चालीस का आधा बीस उसके साथ विष की समता उच्चारण की समता के कारण है) खाने को प्रस्तुत हैं देखें हमें कौन रोकता है? ऐसी दशा कल्पना के चक्षुओं से प्रत्यक्ष करके सूरदास कहते हैं कि हे स्वामिन! तुमसे मिलने के लिए गोपियाँ हाथ मल मलकर पछता रही हैं।

यह सूर का दृष्टकूट पद है। जहा पर सीधेसादे ढगसे अर्थ न निकलकर इधर-उधरकी द्राविड़ी प्राणायाम पद्धति से पहेली के ढगसे वाच्यार्थ प्रकट हो वह कूट कहलाता है। यह चित्र काव्य के अन्तर्गत अधम काव्यों में गिना जाता है।

३६६ गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम्हें योग भाता है और हमें सगुण रूप तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' और 'भिन्न-

रुचिर्हिलोकः' का आशय मन में विचार करो और अपनी रुचि की बात हम से मनवाने का निष्फल प्रयत्न न करो। वे कहती हैं कि अरे भाई उद्धव! यह तो अपने मनमाने की बात है। देखो जहर का कीड़ा दाख छुहारे आदि अमृत फलों (अमृत से मीठे फलों) को छोड़कर जहर ही खाता है। (अमृत फल का अर्थ अमरूद भी है परन्तु यहाँ वह अधिक अच्छा नहीं जँचता)। यदि कोई चकोर को कपूर खिलाए तो उससे उसकी तृप्ति नहीं होती वह इन सब चीजों को छोड़कर अगार खाकर ही सन्तुष्ट होता है। भौंरा काठ को कुरेद के अपना घर बनाता है परन्तु कमल के पत्तों में बँध जाता है। पतगा अपनी भलाई दीपक से आलिङ्गन करने में ही समझता है। सूरदास कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि भाई उद्धव! जिसका मन जिससे लगा होता है उसे वही सुहाता है और कोई चीज नहीं। इसलिए तुम्हें निर्गुण अच्छा लगता है और हमें सगुन भाता है यह अपनी अपनी रुचि की बात है। यदि हम तुम्हारे निर्गुण को नहीं अपनाती तो तुम्हें बुरा मानने की आवश्यकता नहीं है।

इस पद में एक ही बात के अनेक साधक होने से समुच्चय अलकार है।

३६७ कोई गोपी अपनी विरह कृशता का वर्णन करती हुई उद्धव से निवेदन करती हैं कि हे उद्धव! हम विरह के कारण इतनी दुर्बल हो गई हैं कि हाथ का ककण बाँहों के लिए टाड़ (बरा) का काम देता है। मथुरा चलते हुए मनमोहन ने आने की अवधि निकट (पास) की ही दी थी परन्तु इतना लबा समय बीत गया उन्होंने आने का नाम नहीं लिया। मैं प्रतिदिन उनकी बाट जोहती हूँ, शकर की मनौती मनाती और रातदिन गिनती गिनते हुए बिताती हूँ। यदि कभी चिट्ठी लिखने बैठी तो विरह से इतनी अधीर हो जाती हूँ कि कागज आँसुओं के पानी में भीग जाता है। इसलिए उद्धव! मैं तुम्हें लिखित सदेश देने में असमर्थ हूँ। तुम मेरा मौखिक सदेश ही श्रीकृष्ण से कह देना कि हमे यहाँ नित्यप्रति नयी व्यथा भोगनी पड़ती है। हे सूर के स्वामिन् श्याम! तुम्हारे दर्शनों के लिए यह आपकी विरह वियोगिनी अत्यत व्याकुल है।

इस पद में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

३६८ राधा अपनी सखी से वियोगदशा वर्णन करती हुई कहती हैं कि अरी सखी ! मैं फूल बीनने कैसे जाऊँ कृष्ण के बिना मैं फूल कैसे बीन सकती हूँ। सखी ! मैं राम की शपथ खाके कहती हूँ कि मुझे फूल त्रिशूल की तरह दु:ख दायी लगते हैं। ये जो सामने लाल लाल फूल डालियों पर दिखाई पड़ते हैं वे हरि के वियोग में मुझे अग्नि की ज्वालाओं से लगते हैं तथा गिरते हुए फूल अङ्गार से गिरते प्रतीत होते हैं। अरी सखी ! मैं उनके वियोग में पनघट पर कैसे जाऊँ यदि मैं नदी के किनारे घूमने जाती हूँ तो इन नेत्रों के आँसुओं से यमुना में बाढ़ आ जाती है। और तो और सखी ! इन नेत्रों के अश्रु प्रवाह में मेरी शय्या भी घड़नई (व्रज के ग्रामों में घन्नई) बन जाती है। उस समय मेरी इच्छा होती है कि मैं इसी पर चढ़कर श्याम से मिलने जाऊँ। प्यारे हरि के वियोग में मेरे प्राण ओठों पर आगए हैं, परन्तु हे सखी ! इस मेरी असाध्य अवस्था को सूर के प्रभु हरि से कौन समझा के कहे।

इस पद में उपमा और अतिशयोक्ति अलंकार हैं।

३६६ राधा व्यथित एवं निराश होकर बड़ी दीनता से उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती है कि उद्धव जी ! हम आपके पाँव छूती हैं। कोई उपाय करो कि प्रियतम व्रज में एक चक्कर अवश्य लगा दें। हमें रात को नींद नहीं आती और दिन में भोजन नहीं भाता उनका मार्ग देखते २ हमारी दृष्टि धुंधला गई। यद्यपि आज भी वृन्दावन वही काले घने बन से युक्त है तथा श्यामल कालिन्दी भी वही है। परन्तु एक श्याम के बिना कोई श्याम चीज अच्छी नहीं लगती। यों ही उन्मत्त होकर जहाँ तहाँ बकती फिरती हूँ। मैं लज्जा को त्याग करके उधर ही चल देती पर क्या करूँ विरह के कारण चलने में असमर्थ हूँ ! हे सूर के स्वामिन् ! आप शीघ्र ही दर्शन दो इससे हमारे प्राण बचाने की कीर्ति आपको संसार में मिलेगी।

३७० राधा उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि उद्धव ! जब तुम जाओ तो गोकुलमणि गोपाल से मेरा चरण-स्पर्श कह देना। फिर कहना कि अब तुम्हारे दर्शन के बिना मेरे ऊपर बड़ा संकट पड़ा है। मेरा शरीर इस कठोर ताप को सहन करने में असमर्थ है। शरत्कालीन चन्द्रमा मेरा बैरी हो रहा है और (शीतल) वायु का स्पर्श भी सहन नहीं होता फिर बताओ कैसे

रहा जाय । सूर के श्याम के बिना घर वन सब सूना है मोहन के वियोग में किसका मुँह देख कर जिऊँ ।

इस पद में अतिशयोक्ति अलकार है ।

३७१ राधा सभोग के दिनों की याद कर करके आज वियोग के दिन पश्चाताप करती हुई कहती है कि मेरे मनमें एक बात का दुःख बड़ा भारी है । जो नन्दलाल श्रीकृष्ण ने बातें कही थीं वे आज दिन तक मेरे हृदय पटल पर अङ्कित हैं । एक दिन की बात है कि वे मेरे घर आए और मैं दही बिलो रही थी । उन्हें देखकर मैं रूठ गई बस श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो गए । आज वियोग के दिन उस बात को स्मरण करके राधा मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ी । सूरदास के प्रभु श्याम के वियोग की व्यथा असह्य होती है इसलिए उससे सहन नहीं होती ।

३७२ कृष्ण की बेदर्दाई का उपालभ देती हुई गोपियाँ कहती हैं कि माधव की मित्रता तो देखो । वह स्नेह वास्तव में दिखावटी था उसकी सोने सी चमकदार कलाई आज खुल गई । जब यहाँ थे तब स्नेह वास्तविक और उच्च प्रतीत होता था परन्तु यहाँ से प्रवासी होते ही सुधबुध भुला दी । हम तो हरिजू के उस प्रेम को देखकर उन्हें अपना सच्चा प्रेमी समझती थीं । परन्तु आज पता चला कि उनके चित्त में कपट था । उन्होंने हमसे अलग होकर सब ब्रजवासियों की सुध भुलादी । निठुर लोगों ने उन्हें बिलमा लिया । वास्तव में बात यह है कि वे प्रेम निबाहना क्या जाने ! वे तो यथार्थ में अहीर के अहीर ही रहे । सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार विरहिणी गोपियाँ हाथ मल मल कर पछता रही हैं ।

३७३ श्रीराधा श्रीकृष्ण के प्रेम का उपालम्भ देती हुई जीवन के प्रति निराशा प्रकट करती हुई कहती हैं कि मैंने समझा था कि श्रीकृष्ण ने मुझसे प्यार किया है । परन्तु उन्होंने तो जैसे भ्रमर कमल का मधु पीकर उसे छोड़ देता है उसी प्रकार मेरे मुख मकरन्द का पान करके छोड़ दिया । इस वियोग-व्यथा से तो यही अच्छा था कि यह जीवन उसी आनन्द का अनुभव करते-करते समाप्त हो जाता । वह पूतना ही भली थी जिसके स्तन्य पान के साथ-साथ उन्होंने प्राणों को भी पी लिया था । परन्तु उन्होंने हमारे मन रूपी

मधु का पान करके यह शून्य शरीर छोड़ दिया यह और भी अधिक दुःखदायी हो गया। बिछुड़ते समय हमें अचेत देखकर तुमने अपनी अमृतरूपी दृष्टि से जो हमारे हृदय को सिक्त किया था उसी आधार के कारण हे श्याम! यह जीवन अब भी चल रहा है।

इस पद में उपमा रूपक तथा काव्यलिङ्ग अलकार हैं।

विशेष—पूतना नामक राक्षसी को कंस ने कृष्ण को मारने के लिए भेजा था। उसने ब्रज मे आकर कृष्ण को अङ्क लेकर स्तन्य पान कराया। श्रीकृष्ण ने स्तन्य पान के साथ उसके प्राण भी पी लिए थे। स्तन्य पान के कारण मरणोपरान्त उसे माता के नाते सद्गति दी।

३७४ श्रीकृष्ण के वियोग की असह्य व्यथा से तप्त होकर राधा मन ही मन सोचती हुई अपनी सखी से कहती हैं कि अब इस शरीर को रखके क्या किया जाय अरी सखी! सुनो श्रीकृष्ण के वियोग से सन्तप्त होकर ऐसा जीमें आता है कि जहर बटकर पी जाऊँ। अथवा पहाड़ से गिरकर प्राणान्त कर डालूँ। अथवा हे सखी! अपना सिर अपने हाथों काट के शिवजी पर चढा दूँ। अथवा कठोर दावाग्नि में जलके भस्म हो जाऊँ या जमुना के जल में डूब मरूँ! माधव के दुस्सह वियोग में दिन २ क्षीण होके मरण प्राप्त करना तो बड़ा दुखदायी है। सब दिन की व्यथा एक ही बार क्यों न सह ली जावे! सूरदास कहते हैं कि प्रियतम के वियोग में राधा अपने मन ही मन यही बातें सोच सोचकर खीजती रहती हैं।

३७५ यशोदा देवकी के लिये सन्देश भेजती हुई उद्धव से कहती हैं कि उद्धव! तुम देवकी से मेरा यह सन्देश कह देना कि मैं तो तुम्हारे बेटे की धाय हूँ मुझ पर सदा कृपा दृष्टि रखना। उनकी (तुम्हारे बेटे की) आदत है कि वे उबटन और तेल और गरम पानी देखते ही नहाने के डरसे भाग जाते थे। फिर वे जो २ माँगते वही देकर उन्हें धीरे धीरे नहलाने के लिए तयार करती थी तब कहीं वे नहाते थे। आप मा होने के नाते उनकी आदतों से अवश्य ही परिचित होंगी तो भी मेरा हृदय ये बातें कहने में सन्तुष्ट होता है। सवेरे उठते ही मेरे प्यारे पुत्र को मक्खन रोटी खाना अच्छा लगता है। सूर कहते हैं कि यशोदा उद्धव से कहती है कि मेरे मन में अब रात दिन यही चिन्ता

रहती है कि अब मेरे दुलारे लाल को वहाँ ये चीजें माँगने में सकोच होता होगा।
३७६ यशोदा उद्धव से कहती हैं कि यद्यपि सभी लोग मेरे मनको समझाते हैं परन्तु मैं दही बिलोकर जब मक्खन निकालती हूँ तो उसे मोहन के मुँह के लायक समझ के मेरे मन में दुःख होता है। हाय ! सवेरे ही उठके बिना मागे न जाने उन्हें कोई मक्खन और रोटी देता होगा कि नहीं। कौन अब मेरे बेटे कुवर कन्हैया की क्षण २ में सेवा करता होगा। अरे पथिक ! उद्धव तुम जाके कह देना कि बलराम और श्याम दोनों भाई घर चले आवें। सूर-दास कहते हैं कि यशोदा उद्धव से कहती है कि जब मुझ जैसी माँ अभी जीवित है तो वे वहाँ दुखी क्यों हो रहे हैं।
३७७ यशोदा देवकी के लिए सन्देश देती हुई उद्धव से कहती है कि उनसे कह देना कि यदि वे मेरे और अपने परिचय को सुरक्षित रखना चाहती हैं। तो केवल एक बार मेरे मोहन को मुझे दिखा ले जाए आप श्री वसुदेव जी की गृहलक्ष्मी हैं और हम लोग व्रज के रहने वाले अहीर ठहरे ! हम आप से विग्रह या आग्रह करने के योग्य नहीं हैं। परन्तु अब आप मेरे दुलारे कुँवर को भेज दो। हमारे प्राणों पर आ बनी है और तुम्हें मजाक सूझ रही है। चूल्हे में जाय ऐसी हँसी। उन्होंने (कृष्ण) कस को मारा बड़ा अच्छा कार्य किया। यह कार्य समयानुरूप होने से ठीक है। परन्तु अब वहाँ रहने का क्या काम ? यहाँ इन गौओं को कौन चरायेगा ? ये गायें भी तो उनके वियोग में हृदय भर लेती हैं। इसलिए दूसरों के हाथ की बात नहीं कि इन्हें चरा सकें।
सूर कहते हैं कि यशोदा कहती है कि यह ठीक है कि वहाँ किसी चीज की कमी नहीं है; सर्वसुख हैं। परन्तु उनकी तो आदत ही विचित्र है। चाहे जितना भी उन्हें खाने पीने तथा पहिरने को क्यों न दिया जाय और चाहे जितना राज वैभव के सुख मिलें, लाड़ और प्यार मिले पर मेरा बेटा मक्खन से ही सन्तोष और चैन पाता है। सब उपकरणों के साथ सभवतः मक्खन उन्हें वहाँ न मिलता हो। क्योंकि 'आढ्याना मास परमं मध्याना गो रसोत्त-रम्। तैलोत्तर दरिद्राणाम आदि के अनुसार दूध दही नवनीत आदि मध्यवर्ग का भोजन है।
३७८ उद्धव कुब्जा का सदेश देते हुए गोपियों से कहते हैं कि कुब्जा ने कहा है कि व्रजबालाएँ मुझसे काहे को चिढ़ती या जलती हैं। किसी का किसी

के भाग्य मे बटवारा नहीं होता"। जैसे पत्तों म कड़ुई तूमरी घूरे पर पड़ी रहती है कोई उसे नहीं पूछता। परन्तु यदि किसी गुणी पुरुष के हाथ पड़ जाती है। तो वही प्यारा मनोमोहक राग बजाने लगती है। उद्धव ने कहा कि कुब्जा ने यह सन्देश कहला भेजा है और बड़ा अनुनय विनय किया कि यह सभी जानते हैं कि मैं शरीर से टेढ़ी मेढ़ी हूँ (थी) परन्तु श्रीकृष्ण के पावन स्पर्श से इस योग्य हुई हूँ। तुम स्वय सोचो कि मैं तो राजा कस की दासी थी परन्तु सूर स्वामी दयालु श्रीकृष्ण ने स्वय मेरा सुधार करके उद्धार किया है। अतएव मे आपके लिए कोपभाजन बनने योग्य नहीं हूँ।

३७६ उद्धव ब्रज मे आके गोपियों के सम्मुख ज्ञानोपदेश करते हुए कहते हैं कि हे गोपियो ! मुझे ब्रजनाथ श्रीकृष्ण ने तुम्हारे पास भेजा है मैं तुम्हें आत्म ज्ञान का उपदेश देने आया हूँ। सारे ससार मे ब्रह्म ही व्याप्त है। वही पुरुष और वही स्त्री है। वही वानप्रस्थ व्रत को धारण करने वाला है। वही ब्रह्म पिता है, वही माता है, वही बहिन है और वही भाई है। वही विद्वान् है और वही ज्ञानी है। ब्रह्म ही राजा है और वही रानी है। पृथ्वी और आकाश वही है। स्वामी और सेवक दोनों वही हैं। गाय भी वही है और ग्वाला भी वही है। इस प्रकार वही अपने को ही चराता है। वही भ्रमर है और वही पुष्प है। सारा ससार इस रहस्य को आत्म-ज्ञान के अभाव में भूला हुआ है। वास्तव में निर्धन और धनी मे अन्तर नहीं है। वह कोई अन्य नहीं है, केवल निरजन (ब्रह्म) है। जो इस रहस्य को समझ लेता है, उसके हृदय से वृद्धावस्था और मृत्यु आदि का भ्रम दूर हो जाता है।

उद्धव की इन बातों को सुनकर गोपियाँ कहने लगीं कि हे उद्धव। सुनो, यहाँ बुद्धिमती एव चतुर कौन है ? अर्थात् कोई नही है और तुम महान ज्ञानी पुरुष हो। योग को तो वही जान सकता है जो योगी होता है। हमारा मन तो नवधा भक्ति को ही सदा स्वीकार करता है। भगवान का भक्त तो भक्ति की भावना को अनेक हृदय मे धारण कर लेता है और शिवजी तथा सनक सनदन आदि को ज्योतिः स्वरूप समझता है। आप अत्यन्त कुशलता के साथ बना बनाकर ज्ञान की बातें करते हो, लेकिन हम अबलाएँ तो भगवान कृष्ण के सुन्दर रूप पर आसक्त होकर पगली बनी हुई हैं। जो वन्ध्या होती है, वह

प्रसव की पीड़ा को नहीं जान सकती। इसी प्रकार जो ब्रह्म दिखाई ही नहीं देता उससे प्रेम कैसे किया जा सकता है ? बार-बार तुम ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देते हो तो हमें उन्हीं का स्मरण हो आता है और बिना कृष्ण के रूप के हमें कोई अच्छा नहीं लगाता। तुम कहते हो कि जो योग-समाधि लगाकर ब्रह्म की ज्योति से ध्यान लगता है, वह परम आनन्द प्रदान करने वाले परमपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है। लेकिन जब हम नवीन किशोरावस्था वाले कृष्ण को देखती हैं, तो ब्रह्म की करोड़ो ज्योतियों को उनके सौंदर्य पर न्यौछावर कर देतीं हैं। उनका शरीर जल से पूर्ण बादलों के समान श्याम है। बलराम के भाई श्रीकृष्ण के उस सौन्दर्य को देखकर ठगी सी रह जाती हैं। उनके मस्तक पर चन्दन है, कानों में कुण्डल हैं और गले में बनमाला है तथा उनके नेत्र अत्यन्त विशाल हैं, उनको कैसे भुलाया जा सकता है ? वे कस्तूरी का तिलक लगाते हैं और उनके बाल घुघराले हैं। उन्होंने हमारे मनों को हरण कर लिया है। उनकी भौंहे बंकिम हैं, नासिका सुन्दर है, उनके अधर लाल हैं जिन पर सुन्दर मुरली बजती है। उनके अनार के दानों के समान चमकते हुए दाँत शोभित होते हैं और उनकी मन्द एवं कोमल मुस्कराहट कामदेव के मन को भी मोहित करती है। उनकी ठोड़ी सुन्दर और हृदय पर गजमुक्ताओं की माला धारण करते हैं जो नक्षत्रों की कांति को भी पराजित कर देती है। उनके हाथों में कंकण और कटि में मेखला तथा पैरों में नूपुर शोभित हैं। जिस समय चलते हैं तो नूपुर अत्यन्त सुन्दर शब्द करते है। वे अपने शरीर को गेरू से चिन्हित किए रहते हैं। उनका वह सौन्दर्य हमारे हृदय में चुभा हुआ है। वे पीला वस्त्र पहिनते हैं, जिसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जासकता। इस प्रकार कृष्ण नख से शिख तक अत्यन्त सुन्दर हैं वह सौन्दर्य की राशि कृष्ण ग्वालों का सखा है, उसके त्रिभंगी रूप के हमें दर्शन होंगे ? यदि तुम हमारे हित की बात कर रहे हो तो मदन गोपाल कृष्ण से हमें क्यों नहीं मिल मिला देते हो ?

गोपियों की इन बातों को सुनकर उद्धव पुनः कहने लगे कि हे चतुर गोपियो ! तुम उसका स्मरण क्यों नहीं करती हो, जिसको महान् ज्ञानी मुनीश्वर खोजते हैं। उस ब्रह्म की कोई रूप रेखा नहीं है। उसे नेत्र बन्द करके

अपने हृदय मे ही देखो । उस ब्रह्म की ज्योति हृदय कमल में विराजमान रहती है और निरंतर अनहद नाद होता रहता है । इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों की साधना करके शून्य स्थान में बस हुये मुरारी अर्थात् ब्रह्म को प्राप्त करो । उस ब्रह्म की न तो कोई माता है और न पिता । उसके कोई स्त्री भी नहीं है । वह तो जल और थल प्रत्येक स्थान पर हर प्राणी में व्याप्त है । तुम क्रम क्रम से योग मार्ग का अनुसरण करो इस प्रकार अत्यन्त जटिल संसार सागर से पार हो जाओगी ।

उद्धव के उपदेशों का उत्तर देते हुये गोपियाँ कहने लगीं कि हे उद्धव ! आप अब मुँह बन्द रखिये । हमारे हृदय मे तो यदुराज कृष्ण ही सबसे बड़े धन हैं । हम ब्रजवासिनी तो गोपाल की ही उपासिका हैं और ब्रह्म ज्ञान की बातें सुनकर हमें हँसी आती है । अब तक तो कभी योग नहीं आया अब ऐसा लगता है मानो कुब्जा से उन्हें योग प्राप्त हो गया है और हमें सुन्दर ग्राहक समझ कर उसे खोलकर दिखलाया है और उसे (योग सन्देश को) कृष्ण ने मधुकर (उद्धव) के द्वारा भेजा है । आश्चर्य तो यह है कि जिस ठग ने केवल कटाक्ष-मात्र से सम्पूर्ण ब्रज की अबलाओं को ठग लिया था, उसको कंस की दासी ने ठग लिया । यदुराज कृष्ण ने रामावतार में तपस्वी का रूप धारण किया था । अतः उसी के फल स्वरूप उन्होंने कुबड़ी वधू को प्राप्त किया है । उस समय उन्होंने सीता के विरह में महान् कष्ट उठाया था किन्तु अब कुब्जा से मिलकर उनका हृदय शीतल हो गया है । हम निराशा से पूर्ण ज्ञान लेकर क्या करेंगी ? इस योग के भार को तो आप दासी कुब्जा के सिर पर पटक दीजिए ।

गोपियों के प्रेम बचनों को सुनकर उद्धव पुनः कहने लगे कि वह ब्रह्म अच्युत है, उसकी दशा जानी नहीं जा सकती, वह नाश रहित है । उसका शरीर सत रज तम तीनों गुणों से रहित है, उसे दासी ग्रहण नहीं कर सकती । वह शून्य रूप है । अतः हे गोपियो ! हे ब्रज नारियो ! हमारी बात सुनो । न तो कोई दासी है और न स्वामिनी । जहाँ देखो, वहाँ ब्रह्म ही ब्रह्म है । स्वयं ब्रह्म ही (जीव) ब्रह्म को और को जानता है । लेकिन ब्रह्म के बिना और दूसरा कोई नहीं है ।

गोपियाँ कहने लगीं कि हे उद्धव ! बार बार जो ये बातें कह रहे हो। उनको बन्द करो क्योंकि तुम्हारा ज्ञान भक्ति का विरोधी है। तुम्हारे उपदेशों से क्या हो सकता है ? क्योंकि हमारे नेत्र ही हमारे वश में नहीं हैं। वे कृष्ण के वियोग में रात दिन जगे रहते हैं। हम तो नन्द के पुत्र कृष्ण को देखकर ही जीवित रह सकती हैं और उन्हीं के रूप से हमें प्रेम है। हम पवन का पान (प्राणायाम) नहीं कर सकती। जब कृष्ण आवेंगे, तभी हमें सुख प्राप्त हो सकता है और उनकी सुन्दर मूर्ति को देखकर ही शांति प्राप्त हो सकती है। हे उद्धव ! आपके असत्य वचन हमें अच्छे नहीं लगते आपकी इस योग की कथा को हम ओढ़ें या बिछायें, उसका क्या करें ? व्यर्थ है।

गोपियों के इस प्रेम को देखकर उद्धव कहने लगे कि हे ब्रजबालाओ, तुम्हें धन्य है कि तुम्हारे मदनगोपाल कृष्ण ही सर्वस्व हैं। अब मेरी समझ में भी यह बात आगई है कि उस मत को (ज्ञानमार्ग को) त्याग देना चाहिए। मैंने तुम्हारे दर्शनों से भक्ति प्राप्त की है। तुम मेरी गुरु हो और मैं तुम्हारा सेवक हूँ। तुमने भक्ति का सदेश सुनाकर मुझे भवसागर से बचा लिया। जो व्यक्ति इस भ्रमर-गीत को सुनेंगे तथा दूसरों को सुनावेंगे वे प्रेमभक्ति प्राप्त करेंगे। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियाँ अत्यन्त सौभाग्यशालिनी हैं जिनको भगवान कृष्ण के दर्शनों का जादू लगा हुआ है।

३८० गोपियों की प्रेम भक्ति से प्रभावित होकर उद्धव मथुरा आकर कृष्ण से कहते हैं कि हे कृष्ण! गोकुल जाकर मुझे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। आपने मुझे अपना समझकर सदेश देने के बहाने ब्रजवासियों से मिलने भेजा था। यदि आप क्षमा करें तो मैंने जो वहाँ देखा है उसे निवेदन करूँ। आपने अपने श्रीमुख से जिस ज्ञानमार्ग का उपदेश किया था उसका उन पर किंचित्-मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। सम्पूर्ण जीवनभर परिश्रम करने के बाद वेद का जो सिद्धान्त समझा जा सकता है उसको (भक्ति) राधा ने सहज ही सुना दिया तथा जिस आनन्द को वेद वर्णन नहीं कर सकते, शेषनाग, शिव तथा ब्रह्मा प्राप्त नहीं कर पाते, गोपियाँ उसका गान कर रही हैं। मैं उस आनन्द-सागर में डूब गया और उसके समक्ष मुझे अपनी कथा (ज्ञानोपदेश) कटु प्रतीत हुआ। मैंने वहाँ जाकर आपका अन्य स्वरूप ही देखा और मेरी सारी

ज्ञान पिपासा शान्त हो गई। हे भगवन्! आपकी कथा अकथनीय है। उसे आप ही जान सकते हैं। हम जैसे व्यक्ति नहीं जान सकते। सूरदास जी कहते हैं कि यह कहते कहते भगवान के सुन्दर चरणों को देखते ही उद्धव के नेत्रों से जल बरसने लगा।

३८१ उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि हे गोपाल! दस दिन के लिए घोष (ग्वालों के गांव) चलिए। वहाँ चलकर गायों के कष्ट को दूर कीजिए और ग्वालों से भुजा फैलाकर मिलिए। जिस दिन से आप आये हो, उस दिन से वर्षा आने पर भी मयूर नृत्य नहीं करते और आपके दर्श दर्शनों के बिना मृग भी दुर्बल होगए हैं तथा वे वंशी की मधुर ध्वनि भी नहीं सुनते। हे तमाल के समान श्याम अङ्ग वाले कृष्ण! आप अपने प्रिय वृन्दावन को चलके देखिए। सूरदास जी कहते हैं कि हे यशोदा-नन्दन! आप पुनः व्रज को लौट चलिए।

३८२ गोपियों के प्रेम से प्रभावित उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि हे भगवान्! मेरा मन अब पंगु हो गया है। अर्थात् वह अब कहीं इधर उधर नहीं भटकता, वह शान्त एवं निश्चल हो गया है। मैं वहाँ निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए गया था, लेकिन सगुण भगवान का सेवक बन गया। अपनी मूर्खता के कारण कहने को तो उन गोपियों से ज्ञान गाथा कह आया; क्योंकि मैं उसी ज्ञान सन्देश का तो सन्देश हर था। भावार्थ यह है कि गोपियों की प्रेम दशा इतनी प्रभावशालिनी थी कि उसे देख कर किसी भी बुद्धिमान् को चुप ही रहना चाहिए था। पर हम (उद्धव) इतने बुद्धिमान कहाँ थे? किंतु कुछ भी हो मैंने उन्हें अपना ही समझकर यत्नपूर्वक उनसे अपार स्नेह किया। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार सोचते हुए ज्ञान का बेड़ा गर्क करके उद्धव मथुरा पुरी की ओर चल दिए।

अस्तु मैंने जो कुछ ज्ञान चर्चा की भी उसे उन्होंने पास नहीं फटकने दिया। वे उससे सर्वथा अछूती रहीं।

३८३ मथुरा लौटने पर उद्धव ने कृष्ण को गोपियों का सम्वाद सुनाया। कृष्ण को सम्बोधित करके वे कह रहे हैं कि हे कृष्ण! सुनो, मैंने व्रज के नियम को देखा है और पूँछ ताछ करके छः महीने गोपियों के प्रेम को समझने का प्रयत्न किया है। व्रज गोपिकाओं के हृदय से बलराम और कृष्ण

की याद नहीं मिटती। इस याद को हरा रखने के लिए वे अपने हृदय पर आँसुओं का जल प्रवाहित करती रहती हैं उस पर उनके सजल नेत्र अर्घ्य चढ़ाया करते हैं। विरह वेदना में हाथों से दिल को मसोसने के कारण यह कल्पना की है। अचल ने चीर, कुचों के कलश और हाथों के कमल उस हृदय में स्थित स्मृति की मङ्गल कामनायें करती रहती हैं। व्यथा में विभोर वे कृष्ण की लीलाओं को प्रगट रूप में भी देखती हैं और तब कृष्ण के कार्यों का ध्यान कर करके वे उनका कीर्ति गान कर उठती हैं। अपने कमलरूपी नेत्रों में कृष्ण! तुम्हारा ध्यान करके वे अपना शरीर और घरबार सभी कुछ निछावर कर देती हैं। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण उन गोपिकाओं के कृष्ण भजन के सम्मुख हमें ब्रह्म ज्ञान की चर्चा फीकी और तुच्छ जान पड़ती है।

अलकार—उत्प्रेक्षा एव वाचक लुप्तोपमा अलकार है।

३८४ उद्धव जी व्रज से लौटने के बाद कृष्ण को व्रज और गोपिकाओं की दशा का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि हे कृष्ण! मैं तुमसे व्रज का कहाँ तक वर्णन करूँ। हे श्याम! सुनो, तुम्हारे बिना उनके दिन बड़ी कठिनता से कटते हैं। व्रज में गोपियाँ, ग्वाले, गाये और बछड़े सभी तुम्हारे बिना मलिन मुख और क्षीण शरीर हो गए हैं। उनकी इस परम दीनता को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कमलों के सुन्दर समूह पर शिशिर ऋतु में पाला पड़गया है और वे अब बिना पत्तों के रह गए हैं। जो कोई व्रज की ओर आता जाता है वे गोपियाँ उसकी ओर बड़ी उत्सुकता से देखती हैं और सभी मिलकर उससे हे कृष्ण! तुम्हारी कुशल-मङ्गल पूछती हैं। गोपिकाएँ हृदय में प्रेम के वशीभूत होकर उस आने जाने वाले राहगीर को रास्ता नहीं चलने देतीं वे उसके पैरों को अपने हाथों मे जकड़ लेती हैं। कोयल और चातक अब व्रजमें भली प्रकार से नहीं रहते हैं और कौआ बलि को नहीं खाता है। सूरदास जी पद वर्णन करते हुए कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण! गोपियों के इस प्रकार प्रेमातुर होकर बारबार तुम्हारे सदेशों को पूछने के भय से अब राहगीर व्रज के रास्ते पर नहीं जाते।

अलकार—इस पद में उत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति अलकार है।

३८५ उद्धव जी कृष्ण से गोपिकाओं का सदेश सुनाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण! यदि व्रज की गोपिकाओं के साथ पाच दिन भी रह लिया जावे तो हे नाथ! तुम्हारी सौगध खाकर कहता हूँ कि हृदय आनद में विभोर हो जाता है और उनके बीच म अपनापन (भिन्नता) नष्ट हो जाता है। गोपिकाओं की नाना प्रकार की लीलायें तथा मनोविनोद देखते ही बनते हैं। उनका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। मुझे दुबारा ऐसा सुख अब नहीं मिल सकता क्योंकि यह तो उनको ही मिल सकता है जो बड़े भाग्यशाली होते हैं। मन, वचन, और कर्म से अब मैं सत्य ही कहूँगा और कुछ छिपाकर नहीं रखूँगा। सूरदास कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण! वास्तविकता तो यह है कि व्रजवासियों ने मुझे व्रज से इस प्रकार निकाल दिया जैसे दूध में पड़ी हुई मक्खी निकाल कर फेंक दी जाती है। मिलाइये 'भामिनि! भयउ दूध की माखी' तुलसी।

इस पद में उपमा अलकार है।

३८६ उद्धवजी श्रीकृष्ण को सबोधित करके कह रहे हैं कि हे चतुर कृष्ण! अब तुम अपने विरह से व्यथित राधा की क्षीण दशा सुनो। जब सुन्दरी राध तुम्हारे लिए मेरे पास अपना सन्देश लेकर आई तो उनकी करधनी छूट गई और हड़बड़ी में पैर उलझ गये तथा वह शक्तिहीन होकर गिर पड़ी। उन्होंने अपनी इस अस्तव्यस्त दशा को ठीक उसी तरह सभालने का प्रयत्न किया जिस प्रकार कि कोई योद्धा रण में थक कर फिर लड़ने का साहस एकत्रित करता है। सूर कह रहे हैं कि उद्धव कहते हैं कि हे कृष्ण! तुमने उन्हें अपने सुन्दर मुख के दर्शन नहीं दिए बाकी अन्य सभी सुख उन्हें दिए हैं इसीलिए वे केवल हरि के चरण रूपी कमलों के दर्शन पाने की आशा मे तल्लीन हैं।

इस पद मे रूपक, उपमा एव अतिशयोक्ति अलकार है।

३८७ उद्धव जी कृष्ण से व्रजवासियों की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे कृष्ण! व्रज में मेरे साथ बड़ा ही विचित्र व्यवहार हुआ। जो कुछ उपदेश आदि मैंने उनसे कहे वे पवन में उड़ते हुए भूसे के समान अर्थात् बिल्कुल व्यर्थ हो गए और सभी गोपिकायें नन्दकुमार की गाथा गाती

रहीं। एक ग्वालिनी को मैंने दही हाथ में लेकर रेंगते हुए (धीरे २ चलते हुए) देखा और एक को हाथ में लाठी लेते हुए। किसी ग्वालिनी को अन्य सभी को एक घेरे में बैठा कर छाक की रोटी बाट बाट कर देते हुए देखा। किसी किसी ग्वालिनी को मैंने हे कृष्ण ! तुम्हारी नाना प्रकार की लीलाओं को करते हुए देखा और किसी को तुम्हारे गुण कर्मों को गाते हुए सुना। उन्हें भांति २ से समझाकर मैं हार गया परन्तु उनके हृदय में तनिक भी बात समझ में न आई। व्रजबालाओं का हे कृष्ण ! रात दिन यही व्रत है कि उन्हें तुम से रोज नई नई प्रीत हो। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण! उन गोपिकाओं की प्रेम भरी लीलाओं तथा रस सिक्त व्यवहारों को देखकर ससार में अन्य सभी कुछ फीका फीका लगता है।

इस पद मे लोकोक्ति अलकार है ।

३८८ उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि हे कृष्ण ! मैंने गोपिकाओं से अपनी सी कहने में कुछ कमी नहीं रखी। उनसे मैंने अपनी बुद्धि ज्ञान तथा अनुमान के अनुसार जैसी मुँह में आई वैसी खूब कही। मैं उनसे थक-थक कर एक प्रहर में कुछ कह पाता था तो वे एक क्षण में कितनी ही बातें कह जाती थीं। अन्त म उनके इस व्यग्यात्मक व्यवहार से परेशान और दीन हो तथा अपने हठ को त्याग, हार मानकर उनके बीच से उठकर मैं चला आया। तब मेरे गले से कोई बात नहीं निकली और मेरा हृदय उनके वश में होगया। जब वे मेरे सम्मुख अपनी आँखों में आँसू भर भर कर इस प्रकार रोने लगीं जैसे बड़ी भारी आपत्ति मे फसकर कोई दीन रोता है। हे कृष्ण ! तुम्हारे द्वारा सिखाई हुई सपूर्ण शिक्षा तथा ग्रन्थो के कथन उनके सम्मुख एक कहानी हो गये। सूरदास कहते हैं कि उद्धवजी कृष्ण से इस प्रकार कह रहे हैं कि हेकृष्ण! वहाँ पर कोई एक हो तो उसे उत्तर दिया जाता वहाँ तो तमाम थीं जो कि एक साथ बोल पड़ती थी और मुझे ऐसा लगता था मानो प्रेत चढ़ गया हो।

३८८ उद्धव जी श्रीकृष्ण से व्यग्य रूप में अपनी बीती सुनाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! अगर आप कहें तो मैं अपने सुख का वर्णन करूँ ? सच पूछा जाय तो व्रज की नारियों के सम्मुख मैंने जो योग की चर्चा करने का साहस किया उसकी इतनी सजा इतना दुःख तो मुझे मिलना ही चाहिए था। कहने

का तात्पर्य यह है कि उद्धव यह व्यग्य से कह रहे हैं कि उन्हें गोपियों से ज्ञान चर्चा करने के उपलक्ष में सुख मिला। यदि वास्तव में देखा जाय तो उन्हें इस ज्ञान चर्चा से कष्ट ही मिला। उद्धव कहते हैं कि निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए जब मैं एक बात बतलाने ही म अटका रह जाता था तो वे समुद्र की लहरों जैसी उमड़कर मेरे पास आती थीं जिससे कि मैं उनके हृदय की थाह नहीं पा सकता था। ऐसी दशा म में किस २ की बात का उत्तर देता इसलिए मैं आगे ही भाग खड़ा हुआ। वे तो मेरे सिर में वेणी बाँधने लगती थीं। फिर भला मैं गुदडी किसे उढाता अर्थात् वैराग्य किसे सिखाता। जब चेले ही उलटा पढ़ाने लगें तो बेचारे गुरु को चुप्पी ही साधनी चाहिए। हे कृष्ण ! मैं अपनी बीती क्या कहूँ ? मूर्खता की हद थी। भला आँख की अधी सोई मूर्खा खड़ाऊँ पहन के टोड़ने का उपक्रम करे तो उसकी मूर्खता का भी कोई ठिकाना है। यही दशा मेरी थी जो उन्हें ज्ञान सिखाने गया। अर्थात् सत्य बात तो यह है कि मैं इनके सम्मुख वज्र मूर्ख था। सूर कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि तुम्हीं कहो कि मुझसे अधिक कौन मूर्ख हो सकता है जो उन्हें छहों दर्शनों का ज्ञान होते हुए भी बारह खड़ी अर्थात् मात्रा ज्ञान सिखलाने गया था।

इस पद म उपमा अलङ्कार है।

३६० उद्धव जी कृष्ण से विरह पीड़ित ब्रज का वर्णन करके व्यथित राधा का सन्देश कह रहे हैं। कि हे कृष्ण ! राधा को तुम्हारा सन्देश मिला तब से सुनके जूड़ी सी चढ गई। उनके इस प्रकार से मलीन होने से उनके पराजित उपमानों का बड़ा सन्तोष हुआ है। सर्प जो राधा की वेणी को देखकर लज्जा से छिप गए थे वे अब अपने छिपे हुए स्थानों से निकल आये और खूब प्रसन्न हुए उन्होंने खूब पेट भर भर कर हवा का भोजन किया है। वे हिरन जो कि राधा के नेत्रों को देखकर लज्जा से अपने आपको भूल गये थे और अपने नेत्रों को उनसे हेय समझने लगे थे आज फिर अपने हृदय की सभी बातों को भुला कर पैरों के पास आकर बैठने लगे हैं। राधा की मीठी वाणी को सुनकर किसी समय जो कोयल छिप गई थी अब वह पक्षियों की सभा म ऊँचे स्थान पर बैठकर अपने सुन्दर कठ से फिर मगल गान करने लगी है। इतना ही

नहीं शेर भी जो कि राधा की कमर की सुन्दरता देखकर लज्जा कर छिप जाता था आज शान से फिर अपनी गुफा से बाहर निकल अपनी पूँछ सतर करने लगा है। अपने घर जगल से आज वह हाथी भी निकल पड़ा है जो कि राधा की मस्तानी चाल को देखकर अपनी चाल को भूल गया था। वह आज फिर अपने अङ्ग अङ्ग पर घमड प्रकट करने लगा है। सूरदासजी कह रहे है कि उद्धव कृष्ण से राधा का सदेशा देते हुए कहते हैं कि राधा ने पूछा है कि हे श्याम तुम अब फिर कब यहाँ आओगे या तुम्हें मेरे इन बैरियों (दुश्मनों) की मनचीती करनी ही अच्छी लगेगी अर्थात् मेरे इन बैरियों की तुम कब तक ओर लेते रहोगे ?

इस पद में हेतूत्प्रेक्षा एव अतिशयोक्ति अलकार है।

३६१ उद्धव जी व्रज से लौट आने पर कृष्ण से व्रज की गोपिकाओं की उन्माद दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे कृष्ण सुनो ! वही तुम्हारी व्रज की स्त्रियाँ आज तुम्हारे वियोग दु ख में पागल सी हो गई है। हे नाथ, जहाँ तक तुम्हारी कथाओं का वर्णन है उन्हें उसको कहने के अतिरिक्त और कुछ कहना ही नहीं आता अर्थात् वे सदा तुम्हारी ही बातें किया करती है और अन्य सभी बातों को भूल गई हैं। तुम्हारी लीलाओं को याद करके वे इस प्रकार (निम्नलिखित प्रकार) से व्यवहार करती हैं। कभी कहती हैं कि अरे कृष्ण ने हमारा सारा माखन खा लिया है तो ऐसे कठिन गाँव मे कौन बसेगा। कभी कोई गोपी दूसरी से कहती है कि चलो सखियो अपने घर से रस्सियाँ ले चलो हरि को ऊखली से बाँध देंगे। कभी कोई गोपी कहती है कि कृष्ण को बन में गये हुए बहुत देर हो गई है और उनका रास्ता देखते २ मेरी दृष्टि धु धली हो चली है और कोई २ यूँ कहती है कि कृष्ण उस मुरली में हमारा नाम ले लेकर हमें पुकार रहे हैं। व्रज वनितायें कभी २ यह भी कहती हैं कि कृष्ण के साथ हमने इस स्थान पर चाँद को निकलते हुए देखा था अर्थात् कृष्ण और राधा को साथ साथ देखा था। सूरदास जी कहते है कि उद्धव कृष्ण से गोपियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि गोपियाँ कहती हैं कि हे प्रभु कृष्ण अब तुम्हारे दर्शनों के बिना वही चन्द्र रूपी राधा की मूर्ति साँवली अर्थात् मलीन हो गई है।

३६२ उद्धव जी कृष्ण से राधा की विरहोन्माद दशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! राधा ने मेरे आगमन को आपका आगमन समझ कर कहा कि कृष्ण जी अब यहाँ आये यह उन्होंने अच्छा ही किया। मुझे देखकर राधा ने इतना कहा और विरह में उन्मादिनी होने के कारण उन्होंने कृष्ण के स्थान पर अलकार का आलिङ्गन किया। विरह के कारण अत्यन्त व्याकुल राधा का शरीर काँप रहा था और हृदय दु ख से परिपूर्ण धड़कनों से भरा हुआ था। मेरे चलते ही वह मेरे पैरों को पकड़कर बैठ गई और अन्त में वह गिर पड़ी तथा पसीने के जल से भीग गई। उसके बालों की लटें छूट गई और भुजाओं में पहिनी हुई चूड़ियाँ टूट गई तथा उसकी जीर्ण चोली फट गई और लट छूट गई। उसकी इस प्रकार की उन्माद दशा को देखकर मैंने अनुमान लगा लिया तथा अच्छी तरह से पढ लिया कि यह एक प्रेम के प्रण म फँसी हुई कपोती के समान विह्वल हो रही है। उसकी इस प्रकार की विह्वल दशा देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी सर्पिणी की पाई हुई मणि को फिर किसी ने छीन लिया हो। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्ण से राधिका से बातें कहते हुये कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! मैं कहाँ तक राधिका की बातों को कहूँ, वह तो बहुत ही अज्ञान और बुद्धि हीन हो चुकी है।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलकार है।

३६३ उद्धव जी कृष्ण से राधिका के विरहोन्माद का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! इस बात को अन्य कोई किस प्रकार से समझाकर बतला सकता है कि प्रेम की विरह वेदना की दो भिन्न भिन्न दशाओं को विरहिणी राधा किस प्रकार सहती है। जब विरह की एक दशा में वह इतने होश में है कि उसे इस बात का ज्ञान है कि वह राधा है तो वह कृष्ण के विरह में कृष्ण२ रटती रहती है और जब वह विरहोन्माद की दूसरी दशा में पहुँच जाती है अर्थात् माधो रटते २ उसे इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि वह राधा है बल्कि वह कृष्णमय हो जाती है तो इस प्रकार कृष्ण होने पर उसका सारा शरीर फिर राधा के विरह में जलने लगता है। उसकी दशा ठीक उस प्रकार से है जैसे किसी लकड़ी के दोनों छोरों में आग लग जाने पर उसके

अन्दर बैठा हुआ कोई काष्ठ-कीट शीतलता प्राप्त करने के लिए इधर उधर भड़भड़ाता है। सूरदासजी कहते हैं कि उद्धव श्रीकृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! विरहणी राधिका को इस प्रकार से विरह की दोनों ही दशाओं में किसी प्रकार भी सुख नहीं प्राप्त होता। मिलाइए—राधा सयँ जब पुनतहि माधव माधव सयँ जब राधा दारुन प्रेम तबहिं नहिं टूटत बाढत विरहक बाधा दुहि दिस दारु-दहन जैसे दगधई आकुल कीट पराग। विद्यापति

इस पद मे उपमा अलकार है।

३६४ उद्धव जी कृष्ण को सबोधित करके कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हारे सदेश को सुनकर तथा तुम्हारे गुणों का स्मरण करके राधिका की दशा अत्यन्त ही अधीर हो गई और उनके दोनों विशाल नेत्रों से जल की धारा उमड़ चली जिस समय मैंने उनसे तुम्हारा सदेश कहा उसी समय तत्क्षण उनका मुख, शरीर और उरोज नेत्रों की जलधारा से भींग गये और वे ऐसे मालूम पड़ने लगे मानो दो कमल सुमेरु पर्वत की चोटी के ऊपर खिले हुए हैं जो चन्द्रमा से उन कमलों के सुन्दर नाल द्वारा जुड़े हुए हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पर्वत रूपी कुचों पर दो कमल रूपी नेत्र हैं जिनमे से अश्रुधारा बह रही है और यही अश्रुधार सुन्दर नाल है जो कि मुख रूपी चन्द्रमा से कुच रूपी पर्वत के ऊपर दो कमल रूपी नेत्रों को मिला रही है। आँचल में ये दोनों स्तन अश्रुधारा से भीग गये जिन पर कि श्रेष्ठ मोतियों की माला सुशोभित हो रही थी इस प्रकार से आँसुओं से भींगा हुआ वक्षःस्थल इस प्रकार लग रहा है मानो चन्द्रमा (मुख) के उदित होने पर उसके द्वारा टपके अमृत (आँसू) से मुदे कमल (स्तन) ओसकणों को धारण किये शोभित हो रहे हों। कहाँ तो राधा से वह प्रीति की रीति और कहाँ हे कृष्ण तुम्हारा यह निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने का आदेश, वास्तव में तुम्हारी बातें उलटी ही है। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हीं बताओ तुम्हारे इन कठिन सदेशों से विरह से व्याकुल गोपियाँ किस प्रकार जीवित रह सकती हैं।

इस पद में उत्प्रेक्षा अलकार है।

३६५ उद्धव जी श्रीकृष्ण से व्रज से लौट कर राधिका की विरहोन्माद

दशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण। राधिका ने घड़े के समान नेत्र जल से सदा भरे ही रहते हैं उनमें एक घड़ी भी पानी कम नहीं होता। इसका कारण यह है कि ब्रज में सदा ही वर्षाकाल बना रहता है और वहाँ हमेशा पानी बरसता रहा है। तात्पर्य यह है कि राधिका की आँखों में सदा ही कृष्ण के वियोग के कारण आँसू भरे रहते हैं जिसे कवि ने पावस ऋतुकी झड़ी से उपमा दी है। विरह के कारण उनकी आँखों से आँसू जो सावन भादों के बादलों की भाँति हैं रात दिन बरसते ही रहते हैं। इस बरसने की इन्होंने अधिकता कर दी है। राधिका की जो गहरी साँसें हैं वह पवन का तीव्र वेग है और इस प्रकार की तीव्र वायु के साथ आंसुओं का जल हृदय रूपी भूमि पर उमग उमग कर बह रहा है जिससे चारों ओर जल ही जल दिखाई पड़ता है। आँसुओं की इस जल वृष्टि से शाखा रूपी भुजाएँ, भीगे वृक्षों के समान रोये तथा ऊंचे स्थान की तरह कुच आदि सभी डूब गये। इस प्रकार के आँसुओं की भीषण वर्षा के कारण शरीर के सभी अङ्ग रूपी पथिक थक गये और वे उस कीचड़ के कारण जो कि संयोग के समय लगाये हुए चन्दन के साथ आँसुओं से मिलकर बन गई थी अब मार्ग पर नहीं चल पाते। ब्रह्मा के विधान को ब्रज ने उलटा कर दिया है कि ब्रज में सभी ऋतुओं को छोड़ कर केवल एक पावस ऋतु ही रह गई है। सूरदास जी कहते हैं उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण तुम्हारे ही वियोग के कारण ब्रह्मा की यह मर्यादा ब्रज में मिट गई कि वहाँ चार ऋतुओं के स्थान पर केवल एक ही ऋतु पावस ऋतु रहती है।

इस पद में सांग रूपक अलङ्कार है।

२६६ उद्धवजी श्रीकृष्ण को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण मैंने राधा को भरसक अर्थात् जहाँ तक मैं समझा सकता था समझा हारा फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ और वे सब इसे स्वप्न समझकर सुनती रहीं। हे कृष्ण। उनके समक्ष मैंने सब कुछ तुम्हारी बातें कहीं और साथ ही मैं खूब बढ़ा चढ़ा कर अपनी भी कहीं परन्तु जिस प्रकार कोई घड़े में बोले तो घड़े से आवाज निकल कर बोलने वाले के ही कानों में पड़ती है और घड़ा शून्य रह जाता है उसी प्रकार मेरी बातें राधा के कानों में पड़ीं और व्यर्थ ही गई। कोई उन

गोपियों से चाहे हजारों बातें कहे और भाति २ से समझायेंपरन्तु है वे ब्रज की नारियाँ कि उनकी तो बस एक ही टेक है कि कृष्ण एक बार दर्शन दे द उसके बाद हम सब बातें मान लेगी अन्यथा नहीं। हे कृष्ण उन गोपिओं की इसे प्रेम रीति को देखकर मेरे हृदय में प्रेम उमड़ आया और मैं मथुरा की राजनीति तथा अपने निर्गुणब्रह्म के उपदेश के लिये खूब पछताया। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! मैं तो अपनी ही इस चर्चा से ऐसा चकित होकर रह गया जैसे कोई धोखे में पड़ा हुआ मृग अपने को धोखे में पड़ा हुआ समझ कर चौंक पड़ता है।

३६७ उद्धवजी ब्रज से अपने उद्देश्य में असफल लौट आये हैं। वे अब दुबारा वहाँ जाने को तैयार नहीं हैं। वे कृष्ण को सबोधित करके कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! अब तो उन्हीं का (गोपियों का) ही कहना मान लिया जाय तो अच्छा है और मैं अपनी चाल को अब अपने मन में ही समझ बूझ कर रख लूं तथा उनसे इस प्रकार भी समझदारी से इन चालों को छोड़ कर अलग हो जाऊ वही अधिक अच्छा है। जिस मनुष्य को अपनी बात अबला नारियों से खूब अच्छी तरह से एक एक कड़ी में जोड़ २ कर अर्थात् बात मे हर रहस्य को खोलकर समझाना आता हो अब उस मनुष्य को वहा भेजिए, क्योंकि जहाँ मैंने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया वहा उन्होंने मुझे बिना किसी बात का उत्तर दिए ही बहुत दिनों के लिए मुझे चुप रहने के लिए वापिस भेज दिया। हे कृष्ण तुमने मुझ जैसे अज्ञानी, पागल एवँ दुष्ट मनुष्य को जान बूझ कर वहाँ क्यों भेजा, क्योंकि वहा तो किसी बड़े भारी विद्वान की आवश्यक्ता है। और मैं तो यह कहूँगा कि तुम मुझसे वहा की बहुत सी बातें पूछ रहे हो मेरी आलोचना कर रहे हो, तो अच्छा यही हा कि तुम स्वयं वहां चले जाओ तो तुम्हें पता चलेगा कि यह कार्य कितना दुष्कर है। परन्तु वास्तविकता यह है कि मैं किसी प्रकार भी आपकी आज्ञा भग नहीं कर सकता था इसीलिए आपके बहुत ठेलने पर ब्रजयुवतियों को ज्ञान को उपदेश देने गया था। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हें तो मुझे ब्रज भेजने की ही अड़ हो गई थी ठीक उसी तरह से जैसे किसी हाथी ... मुँह की चीज को अपने पेट में ठेलने ही की धुन होती है।

दशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण। राधिका के घड़े के समान नैन जल से सदा भरे ही रहते हैं उनमें एक घड़ी भी पानी कम नहीं होता। इसका कारण यह है कि ब्रज में सदा ही वर्षाकाल बना रहता है और यहाँ हमेशा पानी बरसता रहा है। तात्पर्य यह है कि राधिका की आँखों में सदा ही कृष्ण के वियोग के कारण आँसू भरे रहते हैं जिसे कवि ने पावस ऋतुकी झड़ी से उपमा दी है। विरह के कारण उनकी आँखों से आँसू जो सावन भादों के बादलों की भाँति हैं रात दिन बरसते ही रहते हैं। इस बरसने की इन्होंने अधिकता कर दी है। राधिका की जो गहरी साँसें हैं वह पवन का तीव्र वेग है और इस प्रकार की तीव्र वायु के साथ आँसुओं का जल हृदय रूपी भूमि पर उमग उमग कर बह रहा है जिससे चारों ओर जल ही जल दिखाई पड़ता है। आँसुओं की इस जल वृष्टि से शाखा रूपी भुजाएँ, भीगे वृक्षों के समान रोयें तथा ऊँचे स्थान की तरह कुच आदि सभी डूब गये। इस प्रकार के आँसुओं की भीषण वर्षा के कारण शरीर के सभी अङ्ग रूपी पथिक थक गये और वे उस कीचड़ के कारण जो कि संयोग के समय लगाये हुए चन्दन के साथ आँसुओं से मिलकर बन गई थी अब मार्ग पर नहीं चल पाते। ब्रह्मा के विधान को ब्रज ने उलटा कर दिया है कि ब्रज में सभी ऋतुओं को छोड़ कर केवल एक पावस ऋतु ही रह गई है। सूरदास जी कहते हैं उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण तुम्हारे ही वियोग के कारण ब्रह्मा की यह मर्यादा ब्रज में मिट गई कि यहाँ चार ऋतुओं के स्थान पर केवल एक ही ऋतु पावस ऋतु रहती है।

इस पद में साँग रूपक अलङ्कार है।

२६६ उद्धवजी श्रीकृष्ण को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण मैंने राधा को भरसक अर्थात् जहाँ तक मैं समझा सकता था समझा हारा फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ और वे सब इसे स्वप्न समझकर सुनती रहीं। हे कृष्ण। उनके समक्ष मैंने सब कुछ तुम्हारी बातें कहीं और साथ ही मैं खूब बढ़ा चढ़ा कर अपनी भी कहीं परन्तु जिस प्रकार कोई घड़े में बोले तो घड़े से आवाज निकल कर बोलने वाले के ही कानों में पड़ती है और घड़ा शून्य रह जाता है उसी प्रकार मेरी बातें राधा के कानों में पड़ीं और व्यर्थ हो गईं। कोई उन

गोपियों से चाहे हजारों बातें कहे और भाँति २ से समझायें परन्तु है वे ब्रज की नारियाँ कि उनकी तो बस एक ही टेक है कि कृष्ण एक बार दर्शन दे दें उसके बाद हम सब बातें मान लेंगी अन्यथा नहीं। हे कृष्ण उन गोपिकाओं की इसे प्रेम रीति को देखकर मेरे हृदय में प्रेम उमड़ आया और मैं मथुरा की राजनीति तथा अपने निर्गुणब्रह्म के उपदेश के लिये खूब पछताया। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! मैं तो अपनी ही इस चर्चा से ऐसा चकित होकर रह गया जैसे कोई धोखे में पड़ा हुआ मृग अपने को धोखे मे पड़ा हुआ समझ कर चौंक पड़ता है।

३६७ उद्धवजी ब्रज से अपने उद्देश्य में असफल लौट आये हैं। वे अब दुबारा वहाँ जाने को तैयार नहीं हैं। वे कृष्ण को सबोधित करके कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! अब तो उन्हीं का (गोपियों का) ही कहना मान लिया जाय तो अच्छा है और मैं अपनी चाल को अब अपने मन में ही समझ बूझ कर रख लूं तथा उनसे इस प्रकार भी समझदारी से इन चालों को छोड़ कर अलग हो जाऊ वही अधिक अच्छा है। जिस मनुष्य को अपनी बात अबला नारियों से खूब अच्छी तरह से एक एक कड़ी में तोड़ २ कर अर्थात् बात मे हर रहस्य को खोलकर समझाना आता हो अब उस मनुष्य को वहा भेजिए, क्योंकि जहाँ मैंने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया वहा उन्होंने मुझे बिना किसी बात का उत्तर दिए ही बहुत दिनों के लिए मुझे चुप रहने के लिए वापिस भेज दिया। हे कृष्ण तुमने मुझ जैसे अज्ञानी, पागल एवं दुष्ट मनुष्य को जान, बूझ कर वहाँ क्यों भेजा, क्योंकि वहा तो किसी बड़े भारी विद्वान की आवश्यकता है। और मैं तो यह कहूँगा कि तुम मुझसे वहा की बहुत सी बातें पूछ रहे हो मेरी आलोचना कर रहे हो, तो अच्छा यही हा कि तुम स्वयं वहा चले जाओ तो तुम्हें पता चलेगा कि यह कार्य कितना दुष्कर है। परन्तु वास्तविकता यह है कि मैं किसी प्रकार भी आपकी आज्ञा भग नहीं कर सकता था इसीलिए आपके बहुत ठेलने पर ब्रजयुवतियों को ज्ञान को उपदेश देने गया था। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हें तो मुझे ब्रज भेजने की ही अड़ हो गई थी ठीक उसी तरह से जैसे किसी हाथी को अपने मुँह की चीज को अपने पेट में ठेलने ही की धुन होती है।

दशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! राधिका के घड़े के समान नेत्र जल से सदा भरे ही रहते हैं उनमें एक घड़ी भी पानी कम नहीं होता। इसका कारण यह है कि ब्रज में सदा ही वर्षाकाल बना रहता है और वहां हमेशा पानी बरसता रहा है। तात्पर्य यह है कि राधिका की आँखों में सदा ही कृष्ण के वियोग के कारण आँसू भरे रहते हैं जिसे कवि ने पावस ऋतु की झड़ी से उपमा दी है। विरह के कारण उनकी आँखों से आँसू जो सावन भादों के बादलों की भाँति दिन रात बरसते ही रहते हैं। इस बरसने की इन्होंने अधिकता कर दी है। राधिका की जो गहरी साँसें हैं वह पवन का तीव्र वेग है और इस प्रकार की तीव्र वायु के साथ आँसुओं का जल हृदय रूपी भूमि पर उमग उमग कर बह रहा है जिससे चारों ओर जल ही जल दिखाई पड़ता है। आँसुओं की इस जल वृष्टि से शाखा रूपी भुजाएँ, भीगे वृक्षों के समान रोयें तथा ऊँचे स्थान की तरह कुच आदि सभी डूब गये। इस प्रकार के आँसुओं की भीषण वर्षा के कारण शरीर के सभी अङ्ग रूपी पथिक थक गये और वे उस कीचड़ के कारण जो कि संयोग के समय लगाये हुए चन्दन के साथ आँसुओं से मिलकर बन गई थी अब मार्ग पर नहीं चल पाते। ब्रह्मा के विधान को ब्रज ने उलटा कर दिया है कि ब्रज में सभी ऋतुओं को छोड़ कर केवल एक पावस ऋतु ही रह गई है। सूरदास जी कहते हैं उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण तुम्हारे ही वियोग के कारण ब्रह्मा की यह मर्यादा ब्रज में मिट गई कि वहाँ चार ऋतुओं के स्थान पर केवल एक ही ऋतु पावस ऋतु रहती है।

इस पद में साँग रूपक अलङ्कार है।

२६६ उद्धवजी श्रीकृष्ण को समझाते हुए कह रहे हैं कि हे कृष्ण मैंने राधा को भरसक अर्थात् जहाँ तक मैं समझा सकता था समझा हारा फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ और वे सब इसे स्वप्न समझकर सुनती रहीं। हे कृष्ण! उनके समक्ष मैंने सब कुछ तुम्हारी बातें कहीं और साथ ही मैं खूब बढ़ा चढ़ा कर अपनी भी कहीं परन्तु जिस प्रकार कोई घड़े में बोले तो घड़े से आवाज निकल कर बोलने वाले के ही कानों में पड़ती है और घड़ा शून्य रह जाता है उसी प्रकार मेरी बातें राधा के कानों में पड़ीं और व्यर्थ ही गईं। कोई उन

गोपियों से चाहे हजारों बातें कहे और भांति २ से समझायें परन्तु है वे ब्रज की नारियों कि उनको तो बस एक ही टेक है कि कृष्ण एक बार दर्शन दे दें उसके बाद हम सब बातें मान लेंगी अन्यथा नहीं। हे कृष्ण उन गोपिकाओं की इसे प्रेम रीति को देखकर मेरे हृदय में प्रेम उमड़ आया और मैं मथुरा की राजनीति तथा अपने निर्गुणब्रह्म के उपदेश के लिये खूब पछताया। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! मैं तो अपनी ही इस चर्चा से ऐसा चकित होकर रह गया जैसे कोई धोखे में पड़ा हुआ मृग अपने को धोखे में पड़ा हुआ समझ कर चौंक पड़ता है।

३६७ उद्धवजी ब्रज से अपने उद्देश्य में असफल लौट आये हैं। वे अब दुबारा वहाँ जाने को तैयार नहीं हैं। वे कृष्ण को सबोधित करते कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! अब तो उन्हीं का (गोपियों का) ही कहना मान लिया जाय तो अच्छा है और मैं अपनी चाल को अब अपने मन में ही समझ बूझ कर रख लूं तथा उनसे इस प्रकार भी समझदारी से इन चालों को छोड़ कर अलग हो जाऊ यही अधिक अच्छा है। जिस मनुष्य को अपनी बात अबला नारियों से खूब अच्छी तरह से एक एक कड़ी में तोड़ २ कर अर्थात् बात मे हर रहस्य को खोलकर समझाना आता हो अब उस मनुष्य को वहा भेजिए, क्योंकि जहाँ मैंने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया वहा उन्होंने मुझे बिना किसी बात का उत्तर दिए ही बहुत दिनो के लिए मुझे चुप रहने के लिए वापिस भेज दिया। हे कृष्ण तुमने मुझ जैसे अज्ञानी, पागल एवँ दुष्ट मनुष्य को जान बूझ कर वहाँ क्यों भेजा, क्योंकि वहा तो किसी बड़े भारी विद्वान की आवश्यकता है। और मैं तो यह कहूँगा कि तुम मुझसे वहा की बहुत सी बातें पूछ रहे हो मेरी आलोचना कर रहे हो, तो अच्छा यही हो कि तुम स्वय वहा चले जाओ तो तुम्हें पता चलेगा कि यह कार्य कितना दुष्कर है। परन्तु वास्तविकता यह है कि मैं किसी प्रकार भी आपकी आज्ञा भग नहीं कर सकता था इसीलिए आपके बहुत ठेलने पर ब्रजयुवतियों को ज्ञान को उपदेश देने गया था। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव जी कृष्ण से कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! तुम्हें तो मुझे ब्रज भेजने की ही अड़ हो गई थी ठीक उसी तरह से जैसे किसी हाथी को अपने मुँह की चीज को अपने पेट में ठेलने ही की धुन होती है।

३९८ उद्धव जी कृष्ण को सबोधित करते कह रहे हैं कि हे कृष्ण ! यदि आप दया क घर हैं तो आप अपने मन म गोपियों के प्रति इतने कठोर क्यों हो रहे हैं जो कि मेरे हृदय का भी दु खित करता है। हे कृष्ण ! अब तुम अपने बड़प्पन की लाज की (दीनानाथ कहलाने की) रक्षा करो और उनकी ओर दया की दृष्टि करो। अरे कृष्ण ! मेरी इन बातों को सुनकर अब तुम मेरी ओर मुँह क्यों नहीं करते सिर झुकाकर पृथ्वी की ओर क्यों ताक रहे हो। वह यह कहते हैं कि हे प्रभु तुम भक्ति से भक्त के वश में हो जाया करते हो वह भक्ति भी उन बेचारी गोपिकाओं ने की है। सूरदास जी कहते हैं कि उद्धव कृष्णसे इतना कहते २ लम्बी लम्बी सास छोड़ने लगे, आखों में जल भर लाए तथा हा हा ब्रज ! कह कर विलाप करने लगे।

३९९ उद्धव जी के ब्रज से इस प्रकार असफल लौटने पर कृष्ण ने उन्हें फिर वहां जाने के लिये कहा तो उद्धव कृष्णसे इस प्रकार कहने लगे कि हे कृष्ण! अब मुझे ही ब्रज में बार बार भेजकर क्यों दु खी होते हो (क्योंकि मैं वहाँ जाता हूँ और असफल लौटता हूँ तो तुम्हें दु ख होता है) ! मेरी समझ में तो यह अधिक उत्तम होगा कि अब की किसी चतुर पुरुष को वहाँ भेजा जाय। तब तुम्हें ज्ञ त होगा कि उसे वहाँ से वापिस लौटने में मुझ से भी अधिक कम समय लगता है कि नहीं। अर्थात् मैं तो वहाँ काफी टिक सका अन्य कोई तो थोड़ी ही देर में वहाँ से चल देगा। मैंने गोपिकाओं का हर प्रकार के स्वार्थ और परमार्थ की बात समझाइ लेकिन उन्हें हर बार क्रोध ही आया। अब तो मेरी समझ म अक्रूर को ही क्यों न आप दुबारा भेजें जिसम कि प्रसन्न होकर गोपियाँ उनका कहना मानेंगी तथा आरती भी उतारेंगी (अक्रूर के प्रति व्यग्य है)। उद्धव जी की इतनी बात सुनकर कमल पुष्प के समान सुन्दर नेत्र वाले कृष्ण ने उ हें अपन बाहों में समेट लिया। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार कृष्ण ने अपने सखा उद्धव के हृदय की बात को अपने मन में समझ कर तथा उनके कर्म को समझ कर मुस्करा दिया।

इस पद में वाचक लुप्तोपमा अलकार है।

४०० कृष्ण उद्धव से ब्रज की सुन्दर स्मृति का उल्लेख करते हुए कह रहे हैं कि हे उद्धव ! मुझे ब्रज भूलता नहीं तथा उसकी याद मेरे हृदय से हटती नहीं

ब्रज में सूर्य की कन्या यमुना की सुन्दर कछारें है और घने-घने कुंजों की छाया भी है। ब्रज की वे गायें, वे बछड़े और दुहनियां! जब कि हम गोशाला में (गायों के बँधने का स्थान खरिक कहलाता है) दूध दुहाने जाते थे तथा मेरे साथी वे सभी ग्वाले जो गाते हुल्लड़ मनाते हुए हाथ में हाथ डाल कर नाचते गाते थे, मुझे भूलते नहीं। हे उद्धव! यह मथुरा सोने की नगरी है और यहाँ मोती और मणियों की खान अवश्य है; परन्तु जब मुझे ब्रज में भोगे हुए सुख का स्मरण होता है तो मेरा हृदय वहाँ पहुँचने के लिये बेताब हो उठता है और शरीर नहीं रह जाता अर्थात् उसकी सुधबुध भूल जाती है। मैंने वहाँ अनेकों प्रकार की लीलायें की थीं जिन्हें यशोदा और नन्द ने हँस २ कर निभाया था। सूरदास जी कहते हैं कि कृष्ण उद्धव से इतना कहते-कहते चुप हो गये और ब्रज की याद कर-कर के पश्चात्ताप करने लगे।